बुन्देली गाथा

बुन्देली गाथाओं का अनुशीलन

डॉ. दुर्गेश दीक्षित

बुन्देली गाथाओं का अनुशीलन

बुन्देली गाथा

डॉ. दुर्गेश दीक्षित

प्रधान सम्पादक
वन्दना पाण्डेय

सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल का प्रकाशन

प्रकाशक – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स, भोपाल–462002
फोन – 0755–2661948, 2661640
E-mail : mplokkala@rediffmail.com
mptribalmuseum13@gmail.com
web. : www.mptribalmuseum.com

प्रकाशन वर्ष – वर्ष 2017 प्रथम संस्करण

स्वत्वाधिकार – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

मुद्रण – मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल

मूल्य – 300/– रुपये (तीन सौ केवल)

■ पुस्तक से सम्बन्धित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्य क्षेत्र भोपाल होगा।

■ पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री लेखक की है, आवश्यक नहीं कि प्रकाशक इससे सहमत हों।

ISBN - 978-93-83899-23-4

आख्यान अपने जनपद के भूगोल, वहाँ के निवासियों का स्वभाव, व्यक्तित्त्व और तमाम तरह के जीवनानुभव को अपने में संरक्षित किये हुए होता है। जनपदीयता में इन आख्यानों के उत्स और प्रचलन का यही मूल कारण भी रहा है। सभी जनपद के आख्यान अपनी कथावस्तु में पृथक होते हैं। आख्यान का गान एक-दूसरे जनपद में तो हो सकता है, लेकिन उनमें व्यक्त विचार का संश्लेष तो उसी जनपद में पाया जायेगा, जहाँ वह पैदा हुआ है। इन अर्थों में एक आख्यान की भूमि निश्चित होती है। आख्यानों में केन्द्रीय रूप से मनुष्य की इच्छाओं, प्रवृत्तियों, गुण-अवगुण आदि मनोजगत की समस्त आकांक्षाओं को अभिव्यक्त किया जाता है। जनपद के एक आख्यान में यदि उत्सर्ग की कथा केन्द्रीय है, तो उस जनपद के दूसरे आख्यान भी उत्सर्ग, त्याग या बलिदान की प्रवृत्तियों को ही व्यक्त करते प्रायः मिलते हैं। ऐसा नहीं होता कि जनपद का एक आख्यान तो उत्सर्ग की बात करे और दूसरा मोह को व्यक्त करता हो। इसी प्रकार से एक तथ्य की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए कि आख्यान में व्यक्त मूल प्रवृत्तियों और नायक-नायिकाओं के कथा चरित अनुसार ही उस जनपद के मूल निवासियों का स्वभाव पाया जाता है। आख्यान एक तरह से उस जनपद के निवासियों की प्रवृत्तियों का गान है।

मानव की अच्छी प्रवृत्तियों का गान तो समझा जा सकता है, लेकिन बुरी प्रवृत्तियाँ गान का हिस्सा क्यों हुई होगी? इस पर भी विचार की आवश्यकता है। हमारी समग्र स्वीकृति ही सम्भवतः इसका मूल कारण रही हो। अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य, मोह-त्याग, संलिप्तता-निर्लिप्तता आदि सभी पक्ष जीवन के लिए आवश्यक हैं। दोनों ही प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे से पुष्ट होती हैं। हमारी सम्वेदनाओं-मनोभावों को गान में अधिक निकट तक प्रस्तुत किया जा सकता है। अभिव्यक्ति के अन्य पक्ष उतने कारगर सिद्ध नहीं होते।

मध्यप्रदेश पाँच सांस्कृतिक जनपदों में विभक्त है- जो क्रमशः बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड, चम्बल, निमाड़ और मालवा के नाम से जाने जाते हैं। यह जनपदीय विभाजन सांस्कृतिक और भौगोलिक वैविध्य के कारण है, जिसमें बोली-भाषा, रहन-सहन, पहनावा और खान-पान केन्द्रीय है। इन्हीं कारणों से जनजीवन और उससे निर्मित परम्पराओं में भेद भी है।

बुन्देलखण्ड जनपद में पाये जाने वाले आख्यानों की मूल प्रवृत्ति में उत्सर्ग की अभिव्यक्ति प्रमुखता से पायी जाती है। बुन्देली भाषा के लोकाख्यानों, राछरौ और पंवारे के संकलन और समीक्षात्मक टिप्पणी का कार्य अकादमी के अनुरोध पर बुन्देली के विद् और लोक अध्येता डॉ. दुर्गेश दीक्षित ने किया है।

आशा है लोक साहित्य में उत्सुक पाठकों-अध्येताओं को यह प्रयास रूचिकर लगेगा। और वे अपनी प्रतिक्रिया से अवगत भी करायेंगे।

- अशोक मिश्र

अनुक्रम

गाथा साहित्य का अर्थ, स्वरूप एवं लक्षण	—	9
लोकगाथाओं की उत्पत्ति	—	11
लोक साहित्य	—	24
बुंदेली राछरे	—	76
साके	—	133
पंवारे की परंपरा	—	172
हिन्दी साहित्य में चरित्र काव्य	—	231

गाथा साहित्य का अर्थ, स्वरूप एवं लक्षण

यह मानव समाज का आदिम साहित्य रूप है। सामूहिक नृत्य–गीतों के साथ आगे जाकर पौराणिक पात्रों या देवी–देवताओं से संबंधित अनेक गाथाएँ प्रचलित हो गईं। इस प्रकार नृत्य–गीतों में समाविष्ट पौराणिक इतिवृत्त युक्त स्वरूप लोक गाथाओं के निर्माण का मूल कारण कहा जा सकता है। भारत के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में नाराशंसी गाथाओं, कुछ संवादों और सूक्तों में गाथाओं का प्राचीनतम रूप दिखाई देता है। ये गाथाएँ मौखिक रूप में होने के कारण कुछ विकृत और परिवर्तित होकर आज भी प्रचलित हैं। इनमें गेय–तत्त्व का प्राधान्य है। इसी कारण से इनमें लोक संगीत और लोक नृत्य का भी समावेश हो गया है। धीरे–धीरे वही वैदिक और पौराणिक गाथाएँ लोक संगीत और लोक भाषा का बाना पहिनकर आज हमारे समक्ष विद्यमान है। इनमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण है, किन्तु इनकी मूलाधार भित्ति इतिहास, वेद और पुराण ही हैं। ये प्रायः गेय और पद्यबद्ध ही होती हैं। इनके रचनाकारों का पता नहीं है। क्योंकि रचनाकारों ने इनमें अपना नाम नहीं जोड़ा है। ये प्रायः मौखिक रूप में ही एक कंठ से दूसरे कंठ तक पहुँचकर आज तक जीवित हैं। ये लिखित रूप में प्राप्त नहीं होतीं। एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति से सुनकर इन्हें याद करता रहता है और इस प्रकार से पीढ़ी–दर–पीढ़ी सुरक्षित बनी रहीं। अनुकरण करते समय इनमें कुछ न कुछ परिवर्तन भी होता रहा। इन्हें ईश्वर रचित मानकर लोग श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखते रहे। कुछ लोग गाथाओं की रचना स्थानीय देवी–देवताओं के आधार पर मानते हैं।

गाथाओं की उत्पत्ति एवं नामकरण के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने अपने ग्रंथ 'लोक साहित्य की भूमिका' पृष्ठ 37 पर लिखा है– 'वैदिक साहित्य में 'गायिन' शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति के लिये किया जाता है, जो

किसी प्राचीन आख्यान या कथा का कहने वाला हो। अतः 'गाथा' शब्द का अर्थ है कोई आख्यान या कथा। इसलिए ऐसे प्रबंधात्मक गीतों के लिए, जिनमें कथानक की प्रधानता के साथ ही गेयता भी विद्यमान हो, उसे 'लोक–गाथा' की संज्ञा दी जाती है। अंग्रेजी में लोक गाथा का अर्थ है 'बैलेंड'। 'बैलेंड' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन के 'बैलारे' शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ है 'नाचना'। राबर्ट ग्रेम्स ने लिखा है कि इसका सम्बन्ध 'बैलेट' शब्द से है। इसका मूल अर्थ उस गीत से है, जो नृत्य के साथ गाया भी जाता है। कुछ समय बाद 'बैलेड' का प्रयोग संगीतात्मक गीतों के लिए होने लगा, जिसे जनता के एक दल ने सामूहिक रूप से गाया है। विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से इसकी परिभाषा प्रस्तुत की है। प्रो. क्रोटिज ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है –'Balled is a song that tells a story to take that other point of view a story told in long. अर्थात् 'बैलेड' वह गीत है, जो किसी कथा को कहता है अथवा 'बैलेड' वह कथा है जो गीतों में कही गई हो। इसका अर्थ यह हुआ कि गाथाएँ गीतात्मक, कथात्मक और पद्यात्मक होती हैं। इनमें संगीत की प्रधानता होती है। पाश्चात्य विद्वान 'प्रो. सिजविक' ने गाथा की परिभाषा देते हुए लिखा है – 'The difficulty is Qualty is to define the balled for it has some of the qualities of an abstract thing it is essentially fluia novrigia nor static. अर्थात् मैं गाथा की परिभाषा करने में असमर्थ हूँ। किन्तु मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि 'बैलेड' एक अमूर्त पदार्थ है।

न्यू इंगलिश डिक्शनरी के प्रधान संपादक डॉ. मरे ने 'बैलेड' की परिभाषा देते हुए लिखा है– 'Balled is simple spuited poem in sheet stenges in which some populer. पाश्चात्य विद्वान राबर्ट ग्रेम्स ने लिखा है– 'It is connected with the word ballet and originally meant a song or refrain unended accompaniment to dancing but letter covered any song in which in a group of people socially joined. अर्थात् गाथाएँ नृत्य और वाद्यों के साथ ही गाईं जातीं थीं। लोग एक साथ मिलकर लय के सहित इनका गायन किया करते थे। इनमें लोक वाद्यों और लोक संगीत को ही विशेष स्थान दिया गया है।

लोकगाथाओं की उत्पत्ति

लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में लोक साहित्य मनीषियों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किये हैं। इस क्षेत्र में पाश्चात्य विद्वानों का कार्य विशेष उल्लेखनीय है। डॉ. श्रीराम शर्मा ने अपने ग्रंथ 'लोक साहित्य सिद्धांत और प्रयोग' में उत्पत्ति पर आधारित निम्नलिखित छह सिद्धांतों की चर्चा की है– लोक नियतिवाद या समुदायवाद, व्यक्तिवाद, जातिवाद, चारणवाद, व्यक्तिहीन–व्यक्तिवाद और समन्वयवाद।

लोक नियतिवाद या समुदायवाद

इस सिद्धांत के मानने वाले पाश्चात्य विद्वानों में ग्रिम और बिल्हेम–ग्रिम का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन विद्वानों का मत है कि लोक गाथाओं की रचना जन समुदाय के द्वारा ही हुई है, इसलिए उन्हें अपौरुष भी माना गया है। कुछ विद्वानों ने आलोचना करते हुए लिखा है कि सभी गाथाएँ जन समुदाय के द्वारा निर्मित नहीं मानी जा सकतीं। क्योंकि कुछ गाथाओं की रचना व्यक्ति विशेष के द्वारा हुई है। जनसमुदाय उनमें कोई परिवर्तन नहीं कर पाया है। वे यथावत बनी रहती हैं, अतः इनकी रचना जन समुदाय के द्वारा मानना उचित नहीं है।

व्यक्तिवाद

यह सिद्धांत ग्रिम बंधुओं के सिद्धांत से विपरीत है। ग्रिम बंधुओं के सिद्धांत का खंडन करते हुए इस सिद्धांत की स्थापना की गई है। इस मत की परिकल्पना 'श्लोगल' महोदय ने की थी। आपका मत था कि लोकगाथाओं की रचना जन समुदाय नहीं करता है, बल्कि ये कवि विशेष की काव्य–कृतियाँ हैं। श्लोगल का यह सिद्धांत सत्यता के अधिक समीप है। कविवर 'मदनेश' ने लक्ष्मीबाई रायछे, श्री नंदकिशोर ने 'हिन्दूपति' साके और लक्ष्मी प्रसाद शुक्ल 'वत्स' ने 'पिसनारी' लोकगाथा की रचना की थी। कुछ

लोग कहा करते हैं कि जनसमाज के कार्य–कलापों और परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही गाथाकार लोकगाथाओं की रचना किया करते हैं। भले ही उनका सृजनकर्ता कोई एक हो, किन्तु उनकी सृजन–सामग्री जन समुदाय से ही प्राप्त होती है। इनका रचनाकार कवि–विशेष ही होता है।

जातिवाद

इस सिद्धांत की परिकल्पना अंग्रेज विद्वान 'स्टेन्थल' ने की थी। आपने लोकगाथाओं को जाति विशेष की रचनाएँ माना है। उनका मत था कि प्रत्येक लोकगाथा किसी न किसी जाति विशेष से संबंधित होती है। किसी न किसी विशेष अवसर पर जाति विशेष का जनसमुदाय एकत्रित होकर गाथाओं के सृजन की प्रेरणा देता है। ये सिद्धांत ग्रिम के समुदायवाद से मेल खाता है। 'स्टेन्थल' ने समुदाय के स्थान पर जाति को स्थान दिया है। भारत के विभिन्न अंचलों में इस प्रकार की अनेक लोकगाथाएँ प्रचलित हैं, जो प्रायः त्योहारों, मेलों और उत्सवों के अवसर पर गाईं जातीं हैं। उदाहरण स्वरूप बुन्देलखण्ड में कार्तिक के महीने में कन्हैया की गाथाएँ, चैत्र और क्वाँर की नवरात्रि में 'जगदेव कौ पवारौ,' भाद्रपद में 'कारसदेव की गाथा' और सावन में प्रायः 'चंद्रावली की लोक गाथा' गाई जाती हैं। इसी प्रकार इन्हीं अवसरों पर ब्रज में भर्तृहरि 'सरमन' ओर गोपीचंद्र नाम की गाथाएँ गाईं जाती हैं। राजस्थान में 'ढोला–मारू' गाथा बड़े उत्साह और उमंग के साथ गाई जाती है। बुन्देलखण्ड में 'धनसिंह' लोकगाथा 'जोगी और भाट' इकतारे की धुन पर गाते हुए द्वार–द्वार पर घूम–घूमकर भीख मांगा करते हैं। कहीं–कहीं हरबोले, खंजड़ी और मंजीरों की धुन पर द्वार–द्वार पर अलख जगाया करते हैं, जिन पर जातिवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखाई देता है।

चारणवाद

इस सिद्धांत के मानने वाले मुख्य रूप से 'विसप–पर्सी' हैं। इस सिद्धांत का सर्वाधिक समर्थन जोसिफ रिहर्सन और अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार सर बाल्टर स्काट ने किया है। नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि गाथाओं की रचना चारण और भाट ही करते आये हैं। इस मत की पुष्टि हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखक 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' ने की है। आदिकाल के 'वीरगाथा' काल की समस्त लोकगाथाओं की रचना चारण और भाटों ने की थी। तत्कालीन राजाओं के दरबार में उपस्थित होकर अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में रासो नाम की लोक गाथाओं की रचना करते थे। प्रायः ये गाथाएँ शौर्य और वीर रस से भरी रहतीं थी। इसी कारण से 'आदि काल' का

दूसरा नाम 'वीरगाथा काल' है। इस काल में चन्द्रबरदाई चारण ने 'पृथ्वीराज रासो', नरपतिनाल्ह चारण ने 'वीसलदेव रासो', दलपति विजय चारण ने 'खुमान रासो' और जगनिक चारण ने 'आल्हा खण्ड' की रचना की थी। इन गाथाओं में इतिहास और कल्पना का मिश्रण है। ये अप्रमाणिक हैं, किन्तु चित्रण बड़ा ही सजीव और रोचक है।

व्यक्तिहीन–व्यक्तिवाद

इस सिद्धांत को प्रो. चाइल्ड ने प्रस्तुत किया था और उनका समर्थन प्रो. स्ट्रीन स्ट्रेप ने किया था। उनकी दृष्टि में व्यक्तिवाद और समुदायवाद लोक गाथाओं की रचना के लिए महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों का ही लोक गाथाओं की रचना में योगदान है। व्यक्ति साहित्य का सृजन करता है और वह समाज के मध्य निवास करता है। इसी कारण उस रचना पर व्यक्ति और समाज की छाप पड़ती है, तभी तो साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। साहित्यकार स्वयं को समाज से अलग नहीं कर सकता। इसी कारण से लोक गाथाओं की रचना में इन दोनों का योगदान माना गया है। इस सिद्धांत की पुष्टि करते हुए भोजपुरी लोक साहित्य के अध्येता डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है – लोक गाथाओं की रचना में कवि के व्यक्तित्व का अभाव होता है। कुछ तो ऐसी भी लोक गाथाएँ हैं, जिनमें रचनाकार का नामोल्लेख भी नहीं होता है। प्रायः इनके रचनाकार अनाम ही होते हैं और जिनमें रचनाकार का नाम भी है, उनमें सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन भी होते रहते हैं। अतः इनकी रचना में व्यक्ति और समाज का सामूहिक योगदान है।

समन्वयवाद

भोजपुरी लोक साहित्य के सुप्रसिद्ध अध्येता डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने इस मत को प्रस्तुत किया था। डॉ. उपाध्याय ने पूर्व वर्णित पाँचों सिद्धांतों के समन्वित रूप को स्वीकार किया है। उनका विचार था कि गाथाओं की उत्पत्ति में पाँचों सिद्धांतों का थोड़ा–बहुत योगदान अवश्य है। कुछ गाथाएँ समुदाय के द्वारा रची गईं हैं। अतः इनकी रचना में समन्वयवाद का योगदान मानना ही उचित है। यदि सच पूछा जाय तो लोक गाथाओं की रचना लोक कवियों ने ही की है और वे सभी अलिखित और मौखिक रूप में रही हैं। लोग उन्हें कंठस्थ करके सुनाते रहे हैं। इसी कारण से उनमें थोड़ा–बहुत परिवर्तन भी होता रहा है। आज अधिकांश लोक गाथाओं की स्थिति कुछ इसी प्रकार की है। उनके मूल रूप को ज्ञात करना कठिन है।

लोकगाथा–स्वरूप, प्रमुख भेद एवं वर्गीकरण

लोक साहित्य के मर्मज्ञ एवं जिज्ञासु अध्येताओं ने गाथाओं के स्वरूप को देखते हुए गाथा साहित्य के विभिन्न भेदों का परिचय दिया है। इस क्षेत्र में सर्वाधिक कार्य पाश्चात्य विद्वानों का है। गाथाओं का वर्गीकरण करते हुए पाश्चात्य–विद्वान प्रो. क्रीटिज ने सर्वप्रथम लोक गाथा को दो वर्गों में विभक्त किया है, जिसका उल्लेख एन्साइक्लिोपीडिया ब्रिटेनिका के पृष्ठ 27 पर है– चारण गाथाएँ और परंपरागत गाथाएँ। ये वर्गीकरण भारतीय एवं यूरोपीय लोक गाथाओं को दृष्टि में रखते हुए किया गया है।

चारण गाथाएँ

यूरोप के मध्यकाल में अनेक राजा राज्य करते थे। उनके दरबारों में उनकी प्रशंसा और यशगान करने वाले चारण और भाट रहते थे, जो समय–समय पर अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा करने के लिए यश गाथाएँ बना–बना कर गाया करते थे, जो लोक गाथाओं के रूप में आज भी विद्यमान हैं। इस प्रकार की गाथाओं की संख्या अधिक है। इसी प्रकार की गाथाएँ भारत में वीर गाथा काल में लिखी गईं हैं, जिन्हें 'रासो' की संज्ञा दी गई है। पृथ्वीराज रासो, वीसलदेव रासो, खुमानरासो और परमाल रासो चारणों के द्वारा रचित लोक गाथाएँ ही हैं। ये गाथाएँ अधिक रोचक और प्रभावकारिणी हैं। इस प्रकार की गाथाएँ देश के साधन संपन्न व्यवसायी प्रकाशित कराकर आनंद लेते रहे हैं। भारत और यूरोप की सामाजिक परिस्थितियों में समानता और एकरूपता दिखाई दे रही है। लगता है कि यूरोप और भारत के चिंतकों के चिंतन और मनन में समानता दिखाई दे रही है। दोनों देशों के गाथा साहित्य में एकरूपता है। भारतीय लोकगाथाएँ सामाजिक प्रदेय की दृष्टि से अनुकरणीय हैं।

परंपरागत गाथाएँ

कुछ गाथाएँ प्राचीनकाल से ही प्रचलित हैं। प्रसार–प्रचार और लोकप्रियता के कारण वे आज भी विद्यमान हैं। प्राचीन और परंपरागत होने के कारण ही आज उनका अस्तित्व है। भारत की पालि, प्राकृत, अपभ्रंश की अनेक गाथाएँ हिन्दी का बाना पहिनकर आज भी सुरक्षित हैं। बौद्ध और जैन साहित्य में इस प्रकार की गाथाओं की संख्या अधिक है। 17 वीं शताब्दी में इन गाथाओं को पढ़ने और सुनने की इच्छा लोगों के मन में अधिक रहा करती थी। कुछ लोग तो इन गाथाओं के बल पर अपना व्यवसाय भी संचालित करते थे। वे गाथाएँ थोड़े–बहुत परिवर्तन के बाद आज भी प्रचलित हैं।

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से लोक गाथाओं का वर्गीकरण किया है। कुछ प्रमुख विद्वानों के वर्गीकरण प्रस्तुत हैं–

प्रो. गूमर का वर्गीकरण

पाश्चात्य विद्वान प्रो. गूमर ने लोक गाथाओं को निम्नलिखित छह वर्गों में विभक्त किया है– प्राचीनतम, कौटुम्बिक, अलौकिक, पौराणिक, सीमांत और आरण्यक गाथाएँ।

प्राचीनतम गाथाएँ – नाम से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि ये गाथाएँ बहुत प्राचीन हैं, इन्हें समस्या–मूलक गाथाओं की भी संज्ञा दी जा सकती है। प्रो. गूमर ने इस प्रकार की गाथाओं का जन्मस्थान ग्रीस देश को ही माना है। भारत के वैदिक–काल में इस प्रकार की गाथाएँ प्रचलित थीं। ये लोक संगीतबद्ध और प्रश्नोत्तर के रूप में थी। कुछ गाथाओं में साहसी और वीर नारियों का वर्णन है। बुन्देलखण्ड और ब्रज में प्रचलित मथुरावली और चंद्रावली नाम की इसी प्रकार की प्राचीनतम गाथाएँ हैं।

कौटुम्बिक गाथाएँ – इनमें पारिवारिक विघटन के दृश्य दिखाई देते हैं। कुछ गाथाओं में पारस्परिक प्रेम सौहार्द्र और पारिवारिक सुख–शांति का चित्रण होता है और कुछ में ईर्ष्या, द्वेष और अनबन के घिनौने चित्र होते हैं, जिनमें भाई–भाई, भाई–बहिन, पिता–पुत्र, ननद–भाभी, देवर–भाभी, सास–बहू की नोंक–झोंक, कटुता और पारस्परिक प्रेम के चित्र उभरे हुए दिखाई देते हैं। सास–बहू की नोंक–झोंक से सम्बन्धित 'पपइयाँ' नाम की लोकगाथाएँ भी राजस्थान में प्रचलित हैं। इसी प्रकार की एक 'दीठी' नाम की लोक गाथा गुजरात में पाई जाती है। विशप पर्सी के लोकगीतों में इस प्रकार की लोकगाथाओं के चित्र भरे पड़े हैं, जिनमें बलात्कार और व्यभिचार के दृश्य दिखाई देते हैं, जो भारतीय मर्यादा के विपरीत हैं। बुन्देलखण्ड की आदर्श लोक गाथा 'लाला हरदौल' है।

अलौकिक गाथाएँ– इन गाथाओं में अधिकांश अतिमानवीय दृश्य दिखाई देते हैं। इनमें असंभव और आश्चर्यजनक कार्य कलापों का वर्णन होता है, जिन पर आज का शिक्षित और सभ्यसमाज विश्वास नहीं कर सकता। दानवों की परम सुंदर बेटियाँ, आदमी को पत्थर अथवा कुत्ता और कुतिया के रूप में बदल देना, आदमी गायब और प्रकट कर देना। बकरी का सोने की लेंड़ी करना, कढ़ाही से छप्पन व्यंजन निकालना आदि आश्चर्यजनक घटनाओं पर आज कौन विश्वास करेगा? यूरोप में इस प्रकार की अनेक गाथाएँ प्रचलित हैं। प्रो. क्रीटिज कृत 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में इस प्रकार की लोक गाथाएँ संग्रहीत हैं। भारत की वैदिक और अपभ्रंश गाथाओं में अतिमानवीय

दृश्य भरे पड़े हैं। यूरोप में 'बोनी–जेम्स कैम्पबेल और टामस् राइमर नाम की गाथाएँ इसी प्रकार की हैं। राजस्थान, ब्रज और बुंदेलखण्ड की लोकप्रिय गाथा 'ढोला–मारू में अलौकिकता की अधिकता है, जिसमें अति मानवीय कार्य–कलाप भरे पड़े हैं। छत्तीसगढ़ में मारू के स्थान पर रेवा का नामांकन किया गया है। इसमें ऐन्द्रजालिक क्रियाओं और दानवी कन्याओं के चमत्कार पूर्ण कार्य कलाप वर्णित हैं।

पौराणिक गाथाएँ– इन गाथाओं में पुराण पुरुषों के जन कल्याणकारी कार्य कलापों का यथार्थ चित्रण होता है। इन पौराणिक महापुरुषों के कार्य धर्म–प्रधान आध्यात्मिक और जनकल्याणकारी होते हैं। परोपकार, करुणा, प्रेम और सहानुभूति की सजीव प्रतिमा के रूप में चित्रित किये जाते हैं। सत्य हरिश्चंद्र, शिवि, दधीचि, मोरध्वज, ध्रुव और प्रहलाद जैसे आदर्श और अनुकरणीय चरित्रों का आधिक्य इन गाथाओं में है। यूरोप में 'अवर गुड मेंन' (अपना अच्छा आदमी) और 'हेप्पी बैगर' (प्रसन्न भिखमंगा) नाम की गाथाएँ प्रचलित हैं।

सीमान्त गाथाएँ– सीमान्त शब्द से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि शासक अपने राज्य की सीमाओं पर विवाद करते रहे और सीमा को लेकर आये दिन घमासान युद्ध होते रहे। इसी कारण से हिन्दी साहित्य के आदिकाल का नाम 'वीरगाथा काल' रखा गया है। उनके आश्रित चारण और भाटों ने रासो नाम की लोक गाथाओं की रचना की थी। इन दिनों राजे–महाराजे अपने राज्य की सीमा बढ़ाने या सुंदर राजकुमारियों के अपहरण हेतु पड़ोसी राजाओं से युद्ध किया करते थे। उन दिनों सारा वातावरण संघर्षमय था। इसी कारण से इन दिनों रची गई गाथाओं को सीमांत कहा गया है।

आरण्यक गाथाएँ – आरण्यक का अर्थ है 'जंगली' अर्थात् जंगल में निवास करने वाले लोगों के कार्य–कलापों से संबंधित गाथाएँ। जंगलों में प्रायः लुटेरे और डाकू निवास करते हैं। उनका मुख्य काम जनता को लूट खसोंटकर परेशान करना होता है हर क्षेत्र में इस प्रकार के डाकुओं के क्रिया–कलापों की कहानियाँ प्रचलित होती हैं। और धीरे–धीरे वे गाथाओं का रूप धारण कर लेती हैं। विश्व के हर देश में इस प्रकार के डाकू भरे पड़े हैं। प्राचीन काल में इंग्लैण्ड में 'राबिन हुड' नाम का एक लुटेरा घने जंगलों में रहता था, जिसका मुख्य कार्य धनियों को लूटकर गरीबों की सहायता करना था। आम–जनता सदा उसकी प्रशंसा किया करती थी। उसके विभिन्न जन कल्याणकारी कार्यों पर आधारित अनेक लोकगाथाएँ निर्मित हो गई। चूँकि वह हरे–भरे घने जंगलों में निवास करता था, इसलिए उन गाथाओं में नाम Green wood ballades आरण्यक गाथाएँ पड़ गया। इस प्रकार की गाथाएँ हर क्षेत्र में पाईं जाती हैं। चम्बल क्षेत्र में डाकू

मोहरसिंह, बुन्देलखण्ड में मूरत सिंह, देवी सिंह और पूजा बब्बा का भारी आतंक रहा है। बुन्देलखण्ड की महिला डकैत 'हसीना बेगम' पर लोक कवियों ने अनेक लोकगीतों की रचना की है, जिन्हें लोग आज भी बड़े चाव से गाते हैं। राजस्थान में 'जोरावर सिंह' बघेलखण्ड में 'ददुवा' का बहुत आतंक रहा है। पाश्चात्य विद्वान 'किनकेड' ने अपने ग्रंथ में काठियावाड़ के डाकुओं का विस्तृत वर्णन किया है। डाकुओं की लोकप्रियता और उनके उदार चरित्र पर अनेक विद्वानों ने प्रकाश डाला है। उनकी अधिकांश गाथाएँ लोक–मुख में सुरक्षित हैं।

श्री आर.सी.टैम्पुल का वर्गीकरण

पाश्चात्य विद्वान श्री आर. सी. टैम्पुल ने पंजाब की लोक गाथाओं का संकलन किया था, तदनुसार उन्होंने लोकगाथाओं को निम्नलिखित छह प्रकार के चक्रों में विभक्त किया है – रसालू, पाण्डव, गूँगा, सिद्धचक्र, सखी सरवर चक्र और स्थानीय प्रवीर चक्र।

रसालू चक्र– इस चक्र के अन्तर्गत वीरता, शौर्यपूर्ण और साहसिक गाथाएँ आती हैं। इनमें वर्णित नायक वीर और योद्धा के रूप में दिखाई देते हैं। ब्रज और बुन्देलखण्ड में इस प्रकार की गाथाओं की संख्या अधिक है। रासो, राछरे और पंवारे इसी प्रकार की लोक–गाथाओं के अन्तर्गत आते हैं। इनमें युद्ध का सजीव चित्रण होता है।

पाण्डव चक्र– इस वर्ग के अन्तर्गत पौराणिक और ऐतिहासिक गाथाएँ आती हैं। इनमें महाभारत और पुराणों में वर्णित धर्म–प्रधान और आदर्श चरित्रों को ही स्थान है। ब्रज और बुन्देलखण्ड में प्रचलित सत्य हरिश्चन्द्र मोरध्वज, भर्तृहरि, श्रवणकुमार और ढोला–मारू गाथाएँ पौराणिक गाथाओं के उत्तम उदाहरण हैं। इन सबको प्रागैतिहासिक कहा जा सकता है।

गूँगा चक्र– इनमें शौर्य और सिद्धि का मिश्रण होता है। इनमें अधिकांशतः सिद्धों, नाथों और योगियों के चमत्कारिक कार्यों का चित्रण होता है। कुछ गाथाओं में देश–प्रेम की भावना, त्याग और बलिदान का चित्रण होता है। महारानी लक्ष्मीबाई, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीरों पर आधारित गाथाओं को इस चक्र के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है।

सिद्ध चक्र– इस चक्र के अन्तर्गत संतों और भक्तों से संबंधित गाथाओं को स्थान दिया गया है। इनमें भक्तों की भक्ति भावना की प्रधानता रहती है। भक्त

पूरनमल, धन्ना, पीपा और रैदास आदि इस चक्र की प्रमुख गाथाएँ हैं। इनमें धार्मिक भावना और आध्यात्म चिंतन के दर्शन होते हैं।

सखी सरवर चक्र– इन गाथाओं में प्रेम की प्रधानता होती है। इनमें श्रृँगारिकता और मांसल प्रेम दिखाई देता है। प्रेमी–प्रेमिकाओं के हाव–भाव और संयोग–वियोग, विरह–व्यथा को प्रमुख स्थान दिया गया है। सारा का सारा सूफी प्रेमाख्यानक काव्य इसी आधार भूमि पर रचा गया है। अवध प्रांत में प्रचलित अवधी लोक गाथाओं के आधार पर पद्मावत, मधुमालती, मृगावती और अनुराग–बाँसुरी जैसे सूफी काव्य–ग्रंथों की रचना की गई थी, जिनमें प्रेम का वास्तविक स्वरूप समाया हुआ है।

स्थानीय प्रवीर चक्र–इस वर्ग के अन्तर्गत स्थानीय वीरों और साहसी व्यक्तियों की गाथाओं को स्थान दिया जाता है। भारत ही नहीं संसार भर में साहसी व्यक्ति अवतरित हुए हैं और आज भी हो रहे हैं। उनकी वीरता और साहस का वर्णन इन गाथाओं में किया जाता है।

डॉ. शंकरलाल यादव का वर्गीकरण

डॉ. शंकरलाल यादव लोक साहित्य के मर्मज्ञ हैं। आपने समस्त लोक गाथाओं को तीन वर्गों में विभक्त किया है– प्रेम, वीर और अद्भुत गाथाएँ।

प्रेम गाथाएँ– इनमें प्रधान कथानकों को स्थान दिया जाता है। उदाहरण स्वरूप ढोला–मारू, हीर–राँझा, सारंगा–सदावृक्ष नाम की गाथाओं को इस वर्ग में मान्यता दी जा सकती है। इनमें प्रेमी–प्रेमिकाओं के संयोग–वियोग के सजीव और मार्मिक प्रसंग भरे पड़े हैं। इनमें से ढोला–मारू और सारंगा–सदा वृक्ष नाम की लोक गाथाएँ अधिक लोकप्रिय और प्रभावकारी हैं। ये गाथाएँ थोड़े–बहुत परिवर्तन के बाद उत्तर भारत के हर–अंचल में प्रचलित हैं। ब्रज और बुन्देलखण्ड के कथानकों में समानता दिखाई देती है। अवध प्रांत की प्रेम गाथाओं के आधार पर सूफी प्रेमाख्यानक महाकाव्यों की रचना हो चुकी है।

वीर गाथाएँ–भारत ही नहीं, बल्कि संसार के सारे देशों में वीर–गाथाओं की संख्या अधिक है। रासो, राछरे, साके और पंवारे वीर गाथाओं के ही रूप हैं। बुंदेलखण्ड और ब्रज में इन सबका आधिक्य है। ये सारी की सारी स्थानीय लोक–भाषा में लिखी गईं हैं।

अद्‌भुत गाथाएँ–इनमें विभिन्न प्रकार की चमत्कार प्रधान घटनाओं का समावेश होता है। जादू–टोना और परियों की विचित्र क्रियाएँ इनमें वर्णित होती हैं। पशु–पक्षियों के द्वारा भावी आपदाओं की सूचना, रूप परिवर्तन, किसी आदमी के प्राण पक्षी में, वृक्षों या किसी एक हथियार में होना। दानव और नाग कन्याओं का राजकुमारों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध। किसी बावड़ी या तालाब में परियों का निवास। मणिहारे सर्प की मणि से जलराशि में मार्ग बन जाना आदि अद्‌भुत घटनाओं का उनमें समावेश होता है, जो कोरी कल्पना सी प्रतीत होती है, इन पर आज का शिक्षित समुदाय विश्वास नहीं कर सकता है। आल्हा खण्ड की लड़ाइयों में ऊदल का विवाह, इंदल का विवाह और बलख–बुखारे की लड़ाई में जादू–टोना और चमत्कार की प्रधानता है। ढोला–मारू गाथा में भी एन्द्रजालिक क्रियाओं का चित्रण है।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का वर्गीकरण

भोजपुरी लोक साहित्य के प्रमुख अध्येता डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक गाथाओं को तीन वर्गों में विभक्त किया है– प्रेम कथात्मक, वीर कथात्मक और रोमांचक कथात्मक गाथाएँ।

प्रेम कथात्मक गाथाएँ– प्रेम मानव जीवन का प्राण है। इसी कारण से प्रेम प्रधान गाथाएँ अधिक लोकप्रिय होती हैं। प्रेम की उत्पत्ति किसी एक विशेष परिस्थिति में होती है। भक्ति काल के समस्त सूफी महाकाव्य, प्रेम की ही आधार भूमि पर रचे गये हैं, जिन्हें प्रेमाख्यानक महाकाव्य की संज्ञा दी गई है। भोजपुरी की कृष्णादेवी, कुसुमादेवी और भागवती देवी नाम की गाथाएँ प्रेम के प्रभाव से भरी–पूरी हैं। 'बिहुला' की कथा प्रेम का प्रबंध काव्य है। इसी प्रकार शोभा नायक और बनजारा दूसरा प्रणय आख्यान है, जिसमें पति–पत्नी का प्रेम, संयोग–वियोग का वर्णन बड़ा ही रोचक और मार्मिक है। भरथरी चरित्र में राजा भर्तृहरि का अपने गुरु के आदेश से अपना घर छोड़कर जंगल में जाने का वर्णन है। उनके विरह में विरह–व्यथिता पत्नी की दीन–दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है। यह गाथा भारत के विभिन्न अंचलों में प्रचलित है, केवल भाषा और शैली का ही अंतर है। राजस्थान, ब्रज और बुंदेलखण्ड में प्रचलित ढोला–मारू गाथा प्रेम का वह अजस्त्र स्रोत है, जिसका अवगाहन कर पाठकों को अत्याधिक आनंद प्राप्त होता है। मोहनी का प्रेम अनन्य और अलौकिक है। उसी प्रकार मारू भी सच्ची प्रेमिका सिद्ध होती है। पंजाब की सुप्रसिद्ध गाथा 'हीर–राँझा की प्रेम कहानी श्रोताओं को आनंद रस में निमग्न कर देती है। अँग्रेजी साहित्य में भी प्रेम गाथाओं की प्रचुरता है। पाश्चात्य देशों में प्रेम की प्रधानता दिखाई देती है।

वीर कथात्मक गाथाएँ– इनमें वीरों के शौर्य और साहसपूर्ण कार्यों का ही चित्रण होता है। इनमें वीरों का अलौकिक शौर्य प्रदर्शित किया जाता है। प्रायः सुंदर कन्याओं की प्राप्ति हेतु वीर संग्राम करते हुए दिखाये गये हैं। आल्हा के वीर बाँकुरे आल्हा–ऊदल, ब्रह्मा, मलखान और सुलखान एक ओर तो महानवीर, पराक्रमी योद्धा थे तो दूसरी ओर वही वीर योद्धा श्रृँगार की साक्षात् मूर्ति थे। वे किसी सुन्दर राजकुमारी का सौन्दर्य वृत्त सुनकर पागल हो जाते थे और उसे प्राप्त करने हेतु पौरुष और पराक्रम का प्रदर्शन करते थे। 'लोरिकायन' नामक गाथा में 'लोरिक' की जीवन–कथा उसका विवाह और वीरता का सजीव चित्रण है। 'विजयमल' नामक वीर गाथा भोजपुरी अंचल की सुप्रसिद्ध गाथा है। विजय मल एक महावीर था, जिसने शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये थे।

रोमांच कथात्मक गाथाएँ– इनमें रोमांचकारी घटनाओं का समावेश होता है। इसके अन्तर्गत भोजपुरी की 'सोरठी' नामक लोक गाथा को स्थान दिया गया है। 'सोरठी' एक साधारण घर की लड़की थी। विवाह के पहले पैदा हो जाने के कारण लोक–लाज के भय से माता–पिता ने उसका परित्याग कर दिया था। माता–पिता ने उसे पालने पर लिटाकर नदी में बहा दिया था, किन्तु उसे एक मल्लाह ने पकड़ लिया और अपने घर ले जाकर पालन–पोषण किया और वहीं उसका विवाह हो गया। यह उस क्षेत्र की रोमांचकारी गाथा है।

गाथा साहित्य–उद्‌भव और विकास

लोक गाथाएँ मानव जीवन की मर्मस्पर्शी झाँकियाँ हैं, जिनका लोक साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये मानव के प्रत्येक अंग का स्पर्श करती हैं और एक विशाल भंडार के रूप में हमारे समक्ष उपलब्ध हैं। इनमें लोक जीवन की साधारण–असाधारण घटनाओं का अपनी ही भाषा में स्वाभाविक चित्रण होता है। यही कारण है कि गाथा साहित्य में मानव जाति के आचार–विचार, रीति–रिवाज, धार्मिक विश्वास, आशा–निराशा और सुख–दुःख की सजीव झाँकी दिखाई देती है। यदि यह प्रश्न उभरता है कि गाथा क्या है? और वह कहाँ से अवतरित हुई है, तो यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि गाथाएँ मानव–हृदय के सीधे–सादे उद्‌गार हैं। जो गाथा साहित्य के रूप में मानव–मुख से निःसृत हैं। जिस स्वाभाविक और अकृत्रिम प्रेरणा से इनका सृजन हुआ है, उसी प्रेम से ये सुनी भी जाती हैं। यही कारण है कि उन्हें डॉ. शकुन्तला वर्मा ने अपने ग्रंथ– 'छत्तीसगढ़ का लोक–साहित्य' में लिखा है कि लोक साहित्य के गीत जहाँ रस की वर्षा करते हैं और हृदय को आप्लावित करते हैं, वहाँ गाथाएँ और कहानियाँ मनोरंजन के उत्कृष्ट साधन हैं। मानसिक तृप्ति कथा रस से होती है। गाथा

मानव–जीवन का उत्स है और एक कौतुहल भी। जीवन स्वयं सत्य है और गाथा उसका प्रतिबिम्ब है। कहानी और गाथा का आविर्भाव मानव जीवन के साथ ही हो गया था। जन–जीवन का सहज प्रेम, करूणा, कौतूहल, अनुभव एवं विचार लोक गाथाओं के रूप में नैसर्गिक अभिव्यक्ति पाते हैं। सच पूछा जाये तो लोक–मानस स्वमेव अपने मनोनुकूल एवं अपनी आवश्यकतानुकूल विविध गाथाएँ और कथाएँ गढ़ता रहता है। कभी उनमें ठोस यथार्थ दिखाई देता है, तो कभी कल्पना का बाहुल्य। कहीं धर्म प्रबलता है, तो कहीं घोर सांसारिकता। ये मानव–समाज की अमूल्य निधि हैं। इन्हें अपने हृदय–स्थल में रखे हुए सृष्टि से लेकर आज तक मनुष्य गाता चला आ रहा है। यही मानव जीवन का शाश्वत सत्य है। गाथाएँ कल्पना और इतिहास का सम्मिश्रित स्वरूप हैं। इनका लिपिबद्ध रूप प्राप्त नहीं होता है। लोक मुख की परंपरा के कारण उनमें समय–समय पर परिवर्तन होते रहते हैं और कभी–कभी तो यह भी स्थिति आ जाती है कि उनके वास्तविक पात्र और घटनाओं के नाम तक विलुप्त हो जाते हैं।

ऐसा लगता है कि समस्त लोक कथाएँ प्रारंभ में गाथाओं के ही रूप में थी, किन्तु समय परिवर्तन के कारण पात्रों के वास्तविक नाम और घटनाएँ कही जाने लगीं। जैसे एक नगर में एक राजा रहता था, उसकी तीन रानियाँ थीं। कौन नगर है? राजा का क्या नाम है? रानियों के क्या नाम हैं? कालान्तर में ये सब लुप्त हो गये। ये सब बातें बीच में ही मिट गईं और वे केवल कपोल–कल्पित लोक कथाएँ बनकर रह गईं। बुंदेली कहानियों के प्रमुख संकलनकर्ता पं. शिवसहाय जी के विचार दृष्टव्य हैं– 'कहानियों का समय भी ज्ञात नहीं, देश भी कभी कोई और कभी कोई हो जाता है। जिस देश के कथाकार होते हैं, उन्हीं के समान पात्र और स्थान हो जाते हैं। उदाहरण स्वरूप कहीं बादाम देश, कहीं पाताल देश जिनका इतिहास में नाम भी नहीं है। कथा कहाँ पैदा हुई? क्यों प्रारंभ हुई, कैसे और कब उनका प्रसार हुआ? इन प्रश्नों का कोई उत्तर और समाधान नहीं है। यदि सच पूछा जाये तो कथा मानव–मन की एक सुन्दर सृष्टि है। जो कुछ देखा और सुना उसका प्रभाव मन पर पड़ा और वही एक कथा बन गई। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि एक मुख से दूसरे मुख तथा तीसरे मुख तक जाने में कथा का रूप बदल जाता है। और इस प्रकार जब कथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है तो पात्रों के नाम या तो उड़ जाते हैं या बदल जाते हैं। स्थान परिवर्तन के कारण नईं–नईं घटनाओं का समावेश हो जाता है। यही कारण है कि उनके मूल का पता लगाना कठिन है। कुछ आदिम–जातियों को कथाओं की खोज तथा निरीक्षण करने पर पता चलता है कि प्राचीन कथाएँ गाथाओं के ही विकृत रूप हैं। धीरे–धीरे उनके पात्रों के नाम विलुप्त होते गये और उनका रूप अब कथा की भाँति हो गया। उदाहरण स्वरूप वैदिक गाथाओं से लेकर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की गाथाएँ अब

विकृत रूप में कथाओं के रूप में प्रचलित हैं। हमारे समस्त धर्म–ग्रंथ, गाथा साहित्य की आधार–भित्ति हैं। वेदों, पुराणों, उपनिषदों और जैन धर्म ग्रंथों में गाथाएँ भरी पड़ी हैं। गाथा साहित्य का बीज–रूप हमें वेदों में दिखाई देता है। वेद, पुराण, महाभारत से लेकर आज तक वे किसी न किसी रूप में हमारे समक्ष विद्यमान हैं।

हिन्दी साहित्य में लोक गाथाओं की स्थिति

समस्त हिन्दी साहित्य लोक साहित्य से प्रभावित है। हिन्दी साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव लोक–गाथाओं का ही है। वैसे कहानी या गाथा, महाकाव्य या खण्डकाव्य की आधार भूमि है। काव्य की सारी विधाओं पर किसी न किसी रूप में गाथा का प्रभाव होता है। दसवीं शताब्दी से लेकर आज तक जितना साहित्य लिखा गया, वह सब का सब गाथा साहित्य की भित्ति पर खड़ा हुआ है। उदाहरण स्वरूप 'आल्हा खण्ड' को ही लीजिए। उसमें वर्णित 52 लड़ाइयाँ लोक गाथाओं के ही विकसित रूप हैं। हिन्दी साहित्य के आदिकाल का नाम 'वीरगाथा काल' है। नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि इस काल में केवल वीरों की ही गाथाएँ लिखी गईं थीं और उन ग्रंथों को 'रासो' की संज्ञा दी गई थी। उन दिनों राज्याश्रित चारण और भाट कवियों ने अपने आश्रय दाताओं की प्रशंसा में वीर रस प्रधान रासो ग्रंथों की रचना की थी। चंद्रबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो', नरपतिनाल्ह ने 'वीसलदेव रासो', दलपति विजय ने 'खुमान रासो', भट्टकेदार ने 'जयचंद प्रकाश', जगनिक ने 'परमाल रासो' की रचना की थी और ये समस्त रासो ग्रंथ लोक गाथाओं के ही रूप थे। हिन्दी साहित्य के भक्ति–काल में प्रेमाख्यानक सूफी महाकाव्यों की रचना की गई थी। ये समस्त अवधी महाकाव्य अवध में प्रचलित लोक गाथाओं के आधार पर लिखे गये हैं। सूफी कवियों ने इन प्रेम गाथाओं के आधार पर सूफी प्रेमाख्यानक काव्य का भव्य भवन तैयार किया है। ये अवधी लोक गाथाओं के विकसित रूप हैं। मलिक मुहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत', उसमान कृत 'चित्रावली', शेख नबी कृत 'ज्ञान–अनुराग–बाँसुरी', कुतुबन कृत 'मृगावती', मंझन कृत 'मधु मालती' नाम के महाकाव्यों की रचना की गई थी। रीतिकाल में लिखे गये आचार्य केशव के समस्त ग्रंथों की मूलाधार लोक गाथाएँ ही हैं। महाकवि जयशंकर प्रसाद का 'कामायनी' महाकाव्य और 'चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, जनमेजय का नागयज्ञ, अजातशत्रु और ध्रुव स्वामिनी नाम के नाटक कंकाल और तितली नाम के उपन्यासों की आधार भूमि लोक गाथाएँ ही हैं। कहानीकार और उपन्यासकार यशपाल जैन, जैनेन्द्र कुमार को अपने ग्रंथों की सामग्री लोक गाथाओं से ही प्राप्त हुई है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी को गोदान, गबन और रंगभूमि नाम के उपन्यासों के लिखने की प्रेरणा, भोजपुरी

लोक–गाथाओं से प्राप्त हुई है। श्रेष्ठ उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा को मृगनयनी, कचनार, अमरबेल, विराटा की पद्मिनी, झाँसी वाली रानी नाम के उपन्यासों को अधिकांश लेखन सामग्री बुंदेली लोक गाथाओं से प्राप्त हुई है। प्रारंभ से लेकर आज तक का समस्त हिन्दी साहित्य लोक गाथाओं के बल पर ही फल–फूल रहा है। इस मान्यता को किसी भी प्रकार नकारा नहीं जा सकता है।

लोक साहित्य

लोक साहित्य तो गाथा साहित्य का भण्डार ही है। संस्कृत, प्राकृत, पालि और अपभ्रंश की गाथाएँ थोड़े बहुत परिवर्तित रूप में भारत के विभिन्न अंचलों में भरी पड़ी हैं। कई गाथाएँ तो ऐसी हैं जो अनेक लोक भाषाओं में प्राप्त होती हैं। भाषा और पात्रों का थोड़ा –बहुत अंतर रहता है। अवध अंचल की अनेक लोकगाथाएँ शिष्ट साहित्य का बाना पहिनकर हिन्दी के अनेक महाकाव्यों के रूप में विद्यमान हैं। हिन्दी में ऐसे अनेक महाकाव्य है, जिनका मूलाधार लोक गाथाएँ हैं। कामायनी, साकेत और प्रिय–प्रवास ऐसे महाकाव्य हैं जो गाथाओं के ही विकसित रूप हैं। लोक साहित्य का सुविकसित रूप ही शिष्ट साहित्य है। अनेक विद्वानों ने लोक भाषा और लोक साहित्य के क्षेत्र में बहुत काम किया है। 'कर्नल टाड' एक सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान थे। उनका सर्वाधिक कार्य राजस्थानी लोक साहित्य पर था। उन्होंने राजस्थान की सुप्रसिद्ध गाथा 'संयोगिता स्वयंवर' को प्रकाशित करके उसे साहित्यिक मान्यता दी थी। हालाँकि इस गाथा को ऐतिहासिक मान्यता प्राप्त नहीं हुई है, किन्तु सामाजिक लोकप्रियता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

कुछ विद्वानों ने भारत की प्राचीन लोक गाथाओं और लोक कथाओं पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। इन प्रमुख विद्वानों में 'तोरूदत्त' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी साहित्य का शुभारंभ लोक–भाषा और लोक साहित्य से ही हुआ है। दशवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक साहित्य में लोक साहित्य को प्रमुख स्थान दिया गया है। यदि लोक साहित्य को शिष्ट–साहित्य का जनक कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह आधार भूमि है। लोककथाओं से प्रेरणा प्राप्त करके साहित्यिक कहानी विधा का जन्म हुआ है। लोकगीतों की विकसित स्थिति ही शिष्ट साहित्य के रूप में दिखाई दे रही है। लोकनाट्य साहित्यिक नाटकों के मूलाधार हैं। ऐसी स्थिति में लोकसाहित्य के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता।

लोक गाथाएँ तो लोक साहित्य की अमूल्य निधि हैं। संस्कृत वांड्मय से लेकर लोक साहित्य तक का सम्पूर्ण साहित्य लोक गाथाओं से प्रभावित है। इनमें धार्मिकता और सामाजिकता के दर्शन होते हैं। बुन्देलखण्ड और ब्रज की अधिकांश गाथाएँ चारणों के द्वारा निर्मित हुई हैं। चन्द्रबरदाई का पृथ्वीराज रासो और जगनिक का 'आल्हाखण्ड' इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। राजस्थान में संयोगिता स्वयंवर और ढोला–मारू गाथाओं को साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया गया है। अधिकांश लोक गाथाओं के रचयिता अज्ञात हैं। लोक गाथाएँ आकार की दृष्टि से दो प्रकार की होती हैं– **लघु और वृहद।** लघु गाथाएँ वे जिनका आकार छोटा होता है। जैसे भोजपुरी अंचल की गाथाओं में 'भगवती देवी और कुसुमादेवी' नाम की गाथाएँ लघु गाथाएँ हैं। वृहद गाथाएँ प्रबंध काव्य के समान हैं, जिन्हें सैकड़ों पृष्ठों में लिपिबद्ध किया जा सकता है। हीर–राँझा, ढोला–मारू और राजारसालू इसी प्रकार की वृहद गाथाएँ हैं। 'नौ दीठी' नामक गुजराती गाथा भी प्रसिद्ध है। कुछ पौराणिक गाथाएँ भी प्रसिद्ध हैं। भोजपुरी की 'राजा ढोलन' गाथा और नल–दमयंती चरित्र विशेष प्रसिद्ध हैं। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित गाथाएँ आज भी प्रचलित हैं। वीर कुंवर सिंह का पंमारा और राजस्थान का 'जगदेव का पंमारा' इस दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण हैं। इंग्लैण्ड में 'राबिन हुड' लुटेरे से संबंधित अनेक गाथाएँ प्रचलित हैं, जिन्हें 'ग्रीन बुड बैलेड्स' कहा जाता है। भारत के अनेक अंचलों के कहीं 'सुल्ताना डाकू, कहीं देवी सिंह, कहीं गब्बर सिंह, कहीं मोहर सिंह, कहीं मोंनी रामसहाय और कहीं मूरत सिंह की लोक गाथाएँ कही–सुनीं जाती हैं। राजस्थान में जोरावर सिंह डाकू बहुत प्रसिद्ध रहा है। समस्त उत्तर भारत में प्रचलित लोक गाथा का मूल उद्गम स्थान राजस्थान माना जाता है और इस गाथा का नाम है– 'ढोला–मारू गाथा'। राजस्थान में यह गाथा–ढोला–मारू रादू हा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका आकार ब्रज–क्षेत्र में एक प्रबंध–काव्य के समान है। इसके रचयिता अज्ञात हैं। यह गाथा श्री रामसिंह, सूर्यनारायण पारीक और नरोत्तम दास स्वामी के द्वारा संपादित है। ढोला–मारू वेणरी चौपाई कुशल–लाभ द्वारा रचित एक दोहे के अनुसार किसी कल्लोल नामक कवि को इसका रचयिता बताया गया है। वह दोहा कुछ इस प्रकार का है।

गाता गूढ़ा गीत गुण, कउतिग कथा कलोल।
चतुर तणा चित रंजवण, कहियई कवि कल्लोल।।

डॉ. मोतीलाल मेनारिया, श्री परशुराम चतुर्वेदी, श्री गोवर्धन शर्मा भी इस मत से सहमत हैं। किसी ग्रंथ में मूल रचयिता का नाम 'हर राज' लिखा गया है। किन्तु डॉ. हरिकांत श्रीवास्तव ने अपने ग्रंथ 'भारतीय प्रेमाख्यान के काव्य में उसके रचयिता को अज्ञात बताया है। सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में इसकी रचना की गई होगी।

ये लोक गाथा दोहा छंद में लिखी गई हैं। कुशल लाभ ने इन दोहों की संख्या 700 बताई है। यह सरल और शुद्ध प्रेम–काव्य है। यह विप्रलंभ श्रृँगार का एक उत्तम उदाहरण है। संयोग श्रृँगार के भी कुछ चित्र खींचे गये हैं। यह एक जातीय काव्य है, जिसमें लोक जीवन की सीधी–सादी और सहज मानवीय भावनाएँ ढोला और मारू की कहानी के रूप में मुखरित हुई हैं। विरह और मिलन की नाना परिस्थितियों–मनोदशाओं और प्रेम–भावनाओं में बड़े ही हृदयग्राही स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक वर्णन मिलते हैं। इसमें स्थानीय रंगत का पुट होने के कारण काव्य में अनूठा निखार आ गया है। इसकी प्रेम भावना हृदय से हृदय की पुकार है। आडम्बर परंपरा रूढ़ि और व्यर्थ की चमक–दमक से दूर है। कहने को तो ढोला नरवर का राजा है और मारवणी राजकुलीन रानी है। किन्तु इसके हृदयोद्‌गार सामान्य नायक–नायिका के अपने हो सकते हैं। इस काव्य के सर्वप्रिय होने का यही रहस्य है। यह सारे उत्तर भारत की आंचलिक बोलियों में पाया जाता है।

किसी समय पिंगल देश में भारी अकाल पड़ा तो वहाँ के राजा सारा परिवार लेकर नरवर पहुँच गये। वहाँ के राजा नल ने उनका यथोचित सत्कार किया और उसी समय पिंगल के राजा ने अपनी पुत्री 'मारवणी का विवाह राजा नल के पुत्र ढोला के साथ कर दिया। उस समय मारू की अवस्था दो वर्ष और ढोला की अवस्था तीन वर्ष थी। कुछ समय बाद राजा पिंगल देश लौट गये। पुत्री की आयु कम होने के कारण उसे अपने साथ लेते गये। उसके युवती होने पर उसे अपना पति ढोला स्वप्न में दिखाई दिया। तभी से वह अपने पति के वियोग में व्याकुल रहने लगी। वह बिजली और बादल को सम्बोधित करती हुई कह रही है –

बीजलिया नीबंचिया, जलहर तूँही लज्ज।
सूनी सेज विदेश प्रिय, मधुरई–मधुरई गज्ज।।

ब्रज में लोकगाथाओं के नाम पर डॉ. सत्येन्द्र ने 'जाहरपीर' और 'हीर–राँझा नाम की लोकगाथाओं का परिचय दिया है। डॉ. कुंदनलाल उप्रेती ने लोक साहित्य के प्रतिमान पुस्तक लिखकर लोक साहित्य का परिचय देते समय इन्हीं दोनों लोक गाथाओं को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। ब्रज–अंचल में इस प्रकार की गाथाओं की संख्या अधिक है, जिनमें गोपीचन्द, भरथरि, सरवर नीर, सरमन, महादेव कौ ब्याहुलो नाम की गाथाएँ प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त गंगा जी कौ ब्याहुलों, सीता कौ ब्याहुलों और जगदेव कौ पंवारौ आदि हैं।

ब्रज लोक गाथाओं में 'जाहरपीर' लोकगाथा विशेष महत्त्वपूर्ण है। जाहरपीर की यात्रा भादों के महीने में की जाती है। ये गुरु गुग्गा के नाम से जाने जाते हैं। गुरु गोरखनाथ के जन्म के साथ गुरु गुग्गा के जन्म की कथा जुड़ी हुई है। श्री के. एम. मुंशी ने विद्यापीठ से श्री 'गुरु–गुग्गा' पुस्तक में इस गाथा का संपादन किया था। जाहर–पीर की गाथा का कुछ अंश डॉ. सत्येन्द्र ने अपने शोध–प्रबंध में प्रस्तुत किया है। इस गाथा में प्रयुक्त छंद का कोई विशेष विधान नहीं है। 'बाग' के विवाह के अवसर पर वृक्षों के नाम कुछ इस प्रकार के हैं –

लगति बेरि मीठौ नोज, गोजा सेजलो कचनार।
सीसो मनोजा, रहे बांस महकाय।

इस गाथा में ब्रज की लोक–संस्कृति के दर्शन होते हैं। दूसरी ब्रज क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण गाथा 'हीर–राँझा की है। जो ब्रज लोगों को अत्यधिक प्रिय है। हालांकि इस गाथा की मूल जन्मभूमि पंजाब है, किन्तु इसका प्रचलन ब्रजभाषा में भी है। इसमें पंजाब के प्रेमी युवक राँझे की प्रेम कहानी है। वह अपनी प्रेमिका हीर को प्राप्त करने के लिए फकीर का रूप–धारण कर लेता है, और फिर गुरु गोरखनाथ जी की कृपा से अपनी प्रेमिका को प्राप्त कर लेता है। ब्रज में ऐसी मान्यता है कि इस गाथा को पशुओं को सुनाने से उनके रोग नष्ट हो जाते हैं। गाथा में ऐसा वर्णन है कि राँझा एक बार पशुओं का रखवाला बन जाता है, तब उसने युद्ध करके पशु रोगों को पराजित कर दिया था। यह एक विस्तृत लोक गाथा है जो अनेक भागों में विभक्त है, जिन्हें 'पहरी' कहा जाता है। संक्षिप्तांश प्रस्तुत हैं –

सुनु हीर के सखनु बचन, राँझे ने फरमायो।
तेरे काजें घर–बार–कुटुम, अपनों छोड़ आयो।।
तज दई घर की आस, तेरे पीछे पटरानी।
मैंने तज दई भूख और प्यास।

समस्त उत्तर भारत में 'सरमन' पितृभक्ति गाथा का प्रचलन है। ब्रज और बुन्देलखण्ड की पुण्य भूमि पर लोग इस गाथा को विशेष महत्त्व देते हैं –

तीन बरस के सरमन भये, तीनों लोकन माने गये।

श्रवण कुमार की पत्नी का व्यवहार सास–ससुर के प्रति अच्छा नहीं था। वह एक कर्कशा और कटु स्वभाव की महिला थीं। उसके कुकृत्य का वर्णन करते हुए गाथाकार लिखता है –

कुमार के तोते देवरू कहूँ कै जेठ।
एक हंडिया तू ऐसी बना एक मुँह दो पेट।
एक हंडिया में खट्टी महेरी, डुवां कौ तेल।
खाय लेउ डुकरा, रेलम पेल।

उसके दुर्व्यवहार को देखकर श्रवण कुमार ने उसे नैहर भेज दिया और अपने माता–पिता को काँवर में बैठाकर तीर्थाटन को चल दिया। गाथा में वर्णन किया जाता है –

नारि अपनें पीहर गई, सरमन काँवरि लै लई।
बेटा! हमतौ तीरथ जाँइ, काँवर उठाइ हम मंगल गाँइ।
एक वन नाख्यो, दूजे वन जाहिं।

चलते–चलते उन्हें मार्ग में प्यास लग आई। श्रवण कुमार ने काँवर धरती पर रख दी और वह लोटा लेकर सरोवर में पानी भरने के लिए चल दिया। वहाँ किनारे पर राजा दशरथ धनुष पर तीर चढ़ाये हिरण का आखेट करने के लिए बैठे थे। मृग के धोखे में राजा दशरथ ने श्रवण कुमार पर तीर चला दिया। राजा दशरथ को जब अपनी भूल का पता लगा तो वे मन ही मन पछताने लगे–

जसरथ अब सुनिकैं पछताँइ,
बुरों भयो रोइ–रोइ चिल्लाइ।
मेरे मरे कूँ मति पछताँइ।
माता–पिता कूँ पानी प्याइ।

दशरथ पानी लेकर अंधों के पास पहुँचे और काँवर उठा कर चल दिये। चाल से ही वे समझ गये कि ये कोई और है। वे कहने लगे–

ना मेरे की चाल–विचाल, ना मेरे के बोलें बोल।
तू तो कोई छलिया यार, तू आयो बेटाऐं मार।

अंत में दशरथ को भेद खोलना पड़ा। सुनते ही श्रवण कुमार के माता–पिता ने प्राण त्याग दिये। राजा दशरथ ने उनकी अन्त्येष्टि की और मन ही मन बहुत दुःखी हुए। ये है वात्सल्य रस का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण। अंधे माता–पिता ने पुत्र शोक में प्राण त्याग दिये थे।

'पंमारौ' भी लोक गाथा का एक प्रकार है। इसमें परमार वंशीय क्षत्रियों के शौर्य और भक्ति भावना का वर्णन किया जाता है। पँवार–वंशीय धारा नगरी के राजा जगदेव आदि शक्ति शारदा भवानी के अनन्य भक्त थे। रात–दिन देवी जी की आराधना में जुटे रहते थे। वे एक अनन्य साधक और भावुक भक्त थे। एक बार आराधना करते–करते उन्होंने माता के चरणों में अपना सिर काटकर चढ़ा दिया था और कुछ समय बाद माता की कृपा से उनके धड़ में से नवीन सिर उत्पन्न हो गया था। यह एक बहुत बड़ी लोकगाथा है, जो चौसठ–दरबारों में विभक्त है। यह किसी भी महाकाव्य से कम नहीं है। भक्त–गण इस गाथा को लोक–वाद्यों के साथ नवरात्रि के अवसर पर गाया करते हैं।

मराठी में 'पवार' शब्द गाथा के लिए प्रयुक्त होता है। कुछ क्षेत्रों में पंवारे का अर्थ युद्ध या संघर्ष भी है। इसी प्रकार इस क्षेत्र में 'अमर सिंह का साकौ' भी गाया जाता है। इसमें उनकी वीरता और भक्ति का वर्णन है। जरा देखिये–

अमरसिंह नें कियो पमारौ, कहौ तो गाइ सुनाऊँ।
कहाँ से उत्पन्न भई, कहाँ ते भई लराई।
दीघ शहर उत्पन्न भई, अगरे ते भई लराई।

गाथाकार ने कचहरी का वर्णन किया था।

जल में खम्म–खम्म में जल, जामें कमल बिराजे।
जग–मग जोंत–जगै ठाकुर की, सकल भड़ाभड़ बाजे।
काउ ने लादी लोंग सुपारी, काऊ ने लादी राई।
कबीर लादी राम–नाम, बैकुंठ की गादी पाई।

वे बड़े संयमित और सहृदय व्यक्ति थेः–

पैलों ग्रास कियो धरती कूँ, दूजो गऊ चढ़ायौ।
तीजौ ग्रास कुत्ते कूँ, चौथौ राम चढ़ायौ।
पाँचई ग्रास किये राजा नें, थार दियो सरकायौ।

इस प्रकार की अनेक लोक गाथाएँ उत्तर भारत के विभिन्न अंचलों में भरी पड़ी हैं। इन सबको लिपिबद्ध करना आवश्यक है। अन्यथा यह मूल्यवान निधि विस्मृति के गर्त में विलीन हो जाएगी।

लोक गाथाओं के विभिन्न अंगों का सामान्य परिचय

गाथा लोक साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है। वैदिक साहित्य से लेकर पालि, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य विभिन्न गाथाओं से आपूरित है। यह लोकवार्त्ता का ही एक प्रमुख अंग है। लोकवार्त्ता का अर्थ स्पष्ट करते हुए लोक साहित्य मर्मज्ञ श्री कृष्णानंद जी गुप्त ने लिखा था कि 'लोकवार्त्ता को अंग्रेजी में 'फोक लोर' कहते हैं अथवा यों कहिये कि फोक लोर के लिए हमने लोकवार्त्ता शब्द का प्रयोग किया है। फोक लोर का प्रमाणित अर्थ है 'जनता का साहित्य', ग्रामीण कहानियाँ आदि। परन्तु हम इसका अर्थ करते हैं– 'जनता की वार्त्ता'। जनता जो कुछ कहती है और सुनती है, वह सब लोकवार्त्ता है। जिस प्रकार प्रत्येक देश की अपनी एक भाषा होती है, उसी प्रकार अपनी एक लोक वार्त्ता भी होती है। जनता के मानस में लोक–वार्त्ता का जन्म होता है। अतएव किसी देश की लोकवार्त्ता को पूरा और विधिवत संग्रह किया जाये तो वहाँ के निवासियों के अतीत से लेकर अब तक की बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक अवस्था का सम्पूर्ण चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जायेगा। गाथा साहित्य के समग्र स्वरूप का अध्ययन करने के पश्चात् हमें उनमें निम्नलिखित प्रमुख अंग दिखाई देते हैं।

लोक विश्वास– अधिकांश लोक गाथाएँ इसी आधार–भित्ति पर निर्मित हुई हैं। इसके विषय में सार्लट सोफिया वर्न की परिभाषा विचारणीय है– 'लोक गाथा शब्द शब्दार्थत्ः लोक की विधा।' इसके सम्बन्ध में ब्रज लोक साहित्य के सुप्रसिद्ध अध्येता डॉ. सत्येन्द्र ने लिखा है–'इसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति–रिवाज, कहानियाँ, गीत अथवा अन्य गाथाएँ आतीं हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़–जगत में मानव–स्वभाव तथा मनुष्य कृत पदार्थों के संबंध में भूत–प्रेतों की दुनिया तथा उसके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में जादू–टोना तथा उसके साथ–साथ सम्मोहन, वशीकरण ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। इसमें विवाद, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़–जीवन के रीति–रिवाज और अनुष्ठान–त्योहार, युद्व और आखेट, व्यवसायों का भी समावेश है।

तत्कालीन लोक प्रचलित शकुन–अपशकुन, जादू–टोना, देव–पूजा का विस्तारपूर्वक वर्णन लोक गाथाओं में किया गया है। उन दिनों का सारा का सारा लोक–विश्वास उनमें समाया हुआ है। ये सब लोक की ही धरोहर है। अतः लोक–विश्वास से ये किसी भी प्रकार अछूती नहीं रह सकती। धीरे–धीरे मानव समाज लोक–विश्वास से हटता जा रहा है। यही कारण है कि आज का शिष्ट–साहित्य इससे परे है।

धार्मिकता – धार्मिकता तो गाथा साहित्य का प्रमुख अंग ही है। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश का सम्पूर्ण गाथा– साहित्य धार्मिक भावना पर आधारित है। पालि की जातक गाथाएँ प्राकृत और अपभ्रंश की जैन गाथाएँ, बौद्ध धर्म और जैन धर्म का प्रमुख साहित्य है। विद्वानों ने लोक साहित्य को चार भागों में विभक्त किया है– धर्म गाथा साहित्य, साधारण लोक वार्त्ता साहित्य, ग्राम साहित्य और नागरिक साहित्य।

उपर्युक्त विभाजन से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य का नाम धर्म गाथा भी है। तब तो यह साहित्य धार्मिकता से दूर जा ही कैसे सकता है? धर्म गाथाएँ सूर्य और अंधकार के संघर्ष की प्राकृतिक घटनाओं के रूप में बनी हैं। पहले आदि मानव समूह ने प्रकृति के इन दिव्य व्यापारों को देखा और इन्हें मूर्त रूप में शब्द का अर्थ माना अथवा इन मूर्त विषयों को शब्द दिये हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि ये मनुष्य की असभ्य अवस्था में उत्पन्न हुई हैं और इनका संबंध इस काल के मनुष्यों के कृषि–कर्म तथा प्रजनन कर्म से है। कृषि कर्म और प्रजनन कर्म में जिन भयों और आशंकाओं का पग–पग पर उदय होता है, उन्हीं के आधार पर धार्मिक भावना उदय हुई हैं। अतः धर्म गाथा का मूल बिन्दु सूर्य तथा उसके व्यापारों पर निर्भर नहीं करता, किन्तु कृषि कार्यों पर निर्भर है। फ्रेजर महोदय इस मत के प्रबल समर्थक थे। आजकल फ्रेजर के इस कथन को मान्यता दी जा रही है कि 'आदिम मानव का आध्यात्म जीवन चिंता और अशंका का और काम चेष्टाओं से भरा हुआ था। उन्होंने 'बाईबिल' धर्म ग्रंथ का उदाहरण देते हुए समझाया है कि मनुष्य भय के कारण ही अपने जीवन में बंधन स्वीकार करता है। आदिम मानव का यह भय मृत्यु का ही भय होता है और यह दुष्ट प्रेतों तथा जादू–टोनों की शक्तियों के रूप में उसका पीछा करता है, उन्हें आशंका बनी रहती है कि हो सकता है पृथ्वी अथवा ये शस्य शक्तियाँ समय पर उन्हें उचित सामग्री प्रदान न करें। उनकी इस भयग्रस्त अवस्था में यौन उद्रेक अथवा उनके शरीर का चमत्कार ही उन्हें कुछ निवृत्ति प्रदान करता है।

आदिम मानव का सांस्कृतिक–विकास मनुष्य की यौन–क्रियाओं के अनुकूल होता है। इस प्रकार उन प्राकृतिक व्यापारों का रूप विलुप्त हो गया और धार्मिक गाथा का रूप धारण कर लिया। धीरे–धीरे ये धर्म गाथाएँ अपनी ही धार्मिकता से दूर हटने लगीं और वे केवल गाथा मात्र रह गईं। उनके प्रमुख पात्र भी लुप्त हो जाते हैं। यूरोप की कितनी ही लोक गाथाओं का प्रमुख पात्र 'जियस' और वेदों में 'द्यौस' के नाम से वर्णित हैं। पहले प्राकृतिक व्यापार है, फिर देवता हुआ और आर्य ऋषियों ने उसकी स्तुति की। फिर वह धार्मिक गाथाओं का एक अलौकिक नायक बन गया। अब उसकी कथा कहने वाला साधारण जन यह कल्पना नहीं कर सकता कि जिस–जिस के

सम्बन्ध में वह ऐसी रोचक कहानियाँ सुनता है, वह कोई पुरुष रूपधारी व्यक्ति नहीं, केवल एक प्राकृतिक व्यापार है। अतः इस सम्पूर्ण लोक साहित्य का मूलाधार 'धर्मगाथा' ही है, जिन गाथाओं में धार्मिक भावना भरी हुई है, उन्हें समाज के शिक्षित वर्ग ने अमूल्य–सम्पत्ति की भाँति सुरक्षित रख लिया है और उनके आधार पर बड़े–बड़े महाकाव्यों की रचना हुई है। इन्द्र का जो महत्त्व हमें वेद में मिलता है, वह पुराणों में नहीं मिलता है। बौद्ध और जैन साहित्य में तो उसका रूप बिलकुल ही बदल गया है। वरूण का नाम बाद में ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं रहा, किन्तु वेदों में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमारे पूर्वज आर्यों ने समाज में सर्वप्रथम धर्म की स्थापना की थी। यही कारण है कि सम्पूर्ण साहित्य धार्मिकता से जुड़ा है। यह गाथा साहित्य का एक प्रमुख अंग है।

सामाजिकता– मनुष्य समाज का अभिन्न अंग है। वह किसी न किसी रूप में समाज से जुड़ा रहता है। यही कारण है कि गाथा–साहित्य का अस्तित्व समाज से अलग नहीं है। तत्कालीन समाज में एक ओर सुख सम्पन्नता और समृद्धि का वातावरण दिखाई देता है और दूसरी ओर दुःख–दरिद्रता और दीनता के दर्शन होते हैं। इस सम्बन्ध में भोजपुरी लोक साहित्य के सुप्रसिद्ध अध्येता डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के विचार सोचने समझने योग्य हैं– जहाँ ग्रामीण–जीवन में सुख और समृद्धि का सागर हिलोरें मार रहा है, वहाँ घोर निर्धनता, हीनता और दीनता का वीभत्स कंकाल सामने दिखाई पड़ता है। जहाँ देहात की दुनिया में धन–धान्य तथा वैभव का साम्राज्य दिखाई पड़ता है, वहाँ दुःख–गरीबी और भूख का भैरवनाद भी सुनाई पड़ता है। जहाँ झूमर के गीतों में सोने की थाली में भोजन करने और स्वर्णमय पात्रों से जल पीने का वर्णन उपलब्ध होता है। वहीं टूटी खाट और टपकते हुए छप्पर का मर्मस्पर्शी चित्रण हमारे हृदय को आकर्षित कर लेता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि सुख–दुःख, आशा–निराशा, विलास–वैभव और दैन्य–दीनता में उभय–पक्षों का वर्णन लोक गाथाओं में पाया जाता है। लोक साहित्य की संरचना मानव समाज की वास्तविक स्थिति के आधार पर होती है।

भारत के समस्त अंचलों की गाथाएँ सामाजिकता से अछूती नहीं है। किसी न किसी रूप में गाथाओं में समाज के विशिष्ट चित्र उभरते रहते हैं। कोई गरीब ब्राह्मण विपन्नता के कारण भीख माँगता है या लकड़ी बेचता है, कोई व्यक्ति दीनता के कारण परदेश में धनार्जन करने के लिए जाता है। किसी–किसी राजा के ऐसे दुर्दिन आ जाते हैं कि वह अपना राज्य छोड़कर परदेश को चला जाता है। ढोला–मारू गाथा में राजा नल की पराजय और परदेश जाने का वर्णन है। उस बेचारे को गंगू तेली के यहाँ

नौकरी करनी पड़ती है। वैसे यह गाथा महाभारत कालीन कथा पर आधारित है। लोक मान्यताओं के कारण कथानक बहुत बदल गया है, समय बदल जाने के बाद राजाओं और साहूकारों को भी दूर–दूर की ठोंकरे खानी पड़ती हैं। फिर साधारण समाज का तो कहना ही क्या है?

राजा विक्रमादित्य की गाथा में उनके उन दुर्दिनों का विस्तृत विवेचन है। उनकी दानशीलता और त्याग के अनेक उदाहरण लोक गाथाओं में प्राप्त होते हैं, जो तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों पर आधारित हैं। समाज में कुछ ऐसे दीन–दुःखी व्यक्ति हैं, जो घास खोदकर और उसे बेचकर ही उदर, पोषण किया करते थे। तत्कालीन समाज में प्राप्त होने वाली माताओं–कुमाताओं के उदाहरण प्राप्त होते हैं। कुछ माताएँ तो अपने पुत्रों के कल्याण हेतु जीवन दान देने के लिए तत्पर रहती हैं और कुछ कुमाताएँ अपने पुत्रों को जहर खिलाकर हत्या करने की योजना बनाती हैं। कुछ नवजात शिशु को घूरे पर या नदी में फिकवा देती हैं। कुछ भाई अपने भाई के हित के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं और सदैव सहयोग करने के लिए तत्पर रहते हैं। कुछ भाई छोटे–मोटे स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने भाई की हत्या करने को तैयार हो जाते हैं। नारियों के पातिव्रत और व्यभिचार के भी अनेक उदाहरण हैं। सती सुलोचना, सावित्री और सीता की गाथाएँ भी हमारे समक्ष उदाहरण स्वरूप हैं। कुछ व्यभिचारिणी, दुष्टा, कुल्टा नारियों के उदाहरण भी देखने को मिलते हैं।

मित्रों के पारस्परिक प्रेम, घनिष्ठता तथा छल–कपट, ईर्ष्या–द्वेष के उदाहरण भी हमारे समक्ष हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि गाथाएँ समाज के हर अंग का स्पर्श करती हैं। उन्हें समाज से किसी भी प्रकार से अलग नहीं किया जा सकता है।

सांस्कृतिक स्वरूप– प्राचीनकाल से लेकर आज तक का सम्पूर्ण गाथा साहित्य संस्कृति से अछूता नहीं है। इसी कारण से लोक साहित्य को संस्कृति का भण्डार कहा जाता है। गाथाओं में तत्कालीन संस्कृति का स्वरूप दिखाई देता है। तत्कालीन आचार–विचार, रहन–सहन, खान–पान और धर्म–कर्म के अनेक चित्र गाथा–साहित्य में दिखाई देते हैं। हमारी लोक गाथाओं में अनेक ऐसे प्रसंग हैं, जिनसे समाज को उत्तम शिक्षा मिलती है। मनुष्य को अपने जीवन में उत्तम कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। उनमें सदाचार और उत्तम आदतें विकसित होती हैं। इस विचार की पुष्टि करते हुए अवधी लोक साहित्य की मर्मज्ञ डॉ. सरोजनी रोहतगी ने लिखा है कि –'उपदेशप्रद गाथाओं द्वारा वचनबद्धता, त्याग और प्रेम आदि के उपदेश प्राप्त होते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो गाथाओं के द्वारा उपदेश देने की प्रवृत्ति का प्रभाव

मानव–हृदय पर सीधा पड़ता है। कथा–सुनकर मानव अपने लिए कुछ उपदेश ग्रहण करता है। अग्राह्य को बहिष्कृत कर देता है। यही सीख यदि किसी प्रवचन द्वारा सिखाई जाये तो उसका प्रभाव कम पड़ता है। यह भारतीय–संस्कृति का एक प्रमुख अंग है, जिसकी झाँकी गाथा साहित्य में दिखाई देती है। डॉ सत्येन्द्र ने उनकी एक विशेषता की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि 'इनमें देवी–देवताओं का उल्लेख रहता है, कर्त्तव्यों की चर्चा रहती है। सद्–असद् का विवेचन रहता है, इसमें कोई न कोई उपदेश समाया रहता है। ऐसी कहानियों को देव–विषयक कहानी कहा जाता है। बहुधा इनमें किसी न किसी देव का उल्लेख होता है। गाथा साहित्य में देश–प्रेम, मानव की मंगल–कामना और विश्व कल्याण भावना के दर्शन होते हैं। कथाकारों के मन में देश और समाज के प्रति प्रेम–भाव भरा रहता है। उन्होंने लोक–मंगलकारी कथानकों को प्रस्तुत करके मानव मन में उदार भावों को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। डॉ. कृष्णदेव जी उपाध्याय ने लिखा है कि– विश्व की मंगल कामना भी इन गाथाओं में दिखाई देती हैं। लोकगाथाएँ प्रायः सुखांत ही होती हैं। कथावस्तु के अंदर कितनी ही दुखांत घटनाएँ वर्णित क्यों न हों, परन्तु उन सबका पर्यवसान सुख में ही होता है। इस सम्बन्ध में डॉ. सरोजनी रोहतगी के विचार दृष्टव्य हैं– 'वैसे मंगल–कामना अवधी गाथा साहित्य में प्रमुख है। गाथाओं में व्यक्तिगत कल्याण के साथ मानव कल्याण की व्यापक भावना भी निहित है। गाँव में यदि किसी प्रकार की आपत्ति या घोर संकट आ पड़ता है, तो गाँव का प्रत्येक प्राणी ग्राम देवता के पास याचना के लिए दौड़ता है। खेती नष्ट होना, सूखा पड़ना, अतिवृष्टि होना, टिड्डी दल से खेती की हानि, पड़ोस के गाँव में किसी प्रकार की विपदा के समय तुरन्त भगवान से प्रार्थना करता है। इस प्रार्थना में अपने सुख के साथ सबके सुख की कामना रहती है। इसलिए लोक–मानव गाथा का गायन करने के पश्चात् यह कहने लगता है– 'जैसे हमारे दिन बहुरे, वैसे सबके दिन बहुरें।'

इस आधार पर यह स्पष्ट हो जाता कि हमारा गाथा साहित्य लोक–मंगल की भावना से आपूरित है। यही हमारी संस्कृति का मूल–मंत्र है, जो कि सम्पूर्ण भारतीय गाथा–साहित्य में समाहित है। गाथाएँ भारतीय संस्कृति की धरोहर हैं। इस महत्त्वपूर्ण अंग के बिना गाथा साहित्य अपूर्ण माना जायेगा।

चमत्कार प्रियता– गाथा साहित्य में मनुष्य का अति मानवीय स्वरूप प्रदर्शित है। जातक कथाओं में महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्म की गाथाएँ गाकर, उन्हें भगवान की उपाधि से विभूषित किया गया है। प्राकृत और अपभ्रंश में विभिन्न जैन गाथा साहित्य तीर्थंकरों की चमत्कारिक गाथाओं से आपूरित हैं। तीर्थंकरों के स्थान, तपस्या, अहिंसा

और सत्य पर आधारित अनेक घटनाओं का वर्णन करके उन्हें मानवेत्तर सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। उनके जीवन से सम्बन्धित ऐसी अनेक घटनाएँ हैं, जिनमें चमत्कारिकता के दर्शन होते हैं। धीरे–धीरे सारा का सारा गाथा साहित्य चमत्कार भावना से भर गया। लोग चमत्कार को ही नमस्कार करने लगे। लोक केवल चमत्कार के कारण ही साधु–संतों, महात्माओं की पूजा करने लगे। यही कारण है कि आज का अधिकांश गाथा साहित्य जादू–टोना, इन्द्रजाल आदि चमत्कारिक क्रियाओं से भरा हुआ है। ऐसी अनेक लोक गाथाएँ हैं जिनमें आश्चर्यजनक विचित्रता न हो, वह गाथा ही किस काम की? कई गाथाओं में तो भगवान शंकर और पार्वती की कृपा का वर्णन है। पार्वती जी को दयालु और परदुःख कातर प्रदर्शित किया गया है और भगवान शंकर को अवढरदानी और आशुतोष। लोकगाथाओं में शंकर–पार्वती के अनेक उदाहरण हैं। पार्वती जी के आग्रह पर भगवान शंकर कभी तो अपनी कनिष्ठका को चीरकर अमृत छिड़ककर मुर्दे को भी जीवित कर देते हैं। कुछ गाथाओं में देवीजी की कृपा का वर्णन है। वीर गाथाओं के नायक देवीजी के परम भक्त बताये गये हैं। देवी जी की ही कृपा से उन्हें अलौकिक शक्ति प्राप्त होती है, जिसके कारण उन्हें कोई पराजित नहीं कर पाता। वीर जगदेव ने तो देवी जी के चरणों में अपना शीश काटकर ही चढ़ा दिया था और देवीजी की ही कृपा से उनके धड़ में नवीन सिर उत्पन्न हो गया था। कुछ नायकों को भावी जीवन की घटनाओं का पता पक्षियों से लग जाता था, जिससे वे सतर्क होकर जीवन रक्षा कर लेते थे। किसी लड़की के पेट या नाक से नागिन का निकलना, किसी वृक्ष, हथियार या पक्षी में किसी राक्षस के प्राणों का होना, भूगर्भ में रहने वाली नाग–कन्याओं के साथ मनुष्यों के वैवाहिक सम्बन्ध होने की घटनाएँ आदि आश्चर्य जनक और चमत्कार पूर्ण होती हैं। सारा का सारा गाथा साहित्य इस प्रकार की अनेक अलौकिक घटनाओं से भरा पड़ा है। अलौकिकता और अतिमानवीयता भी गाथा साहित्य का प्रमुख अंग हैं।

पौराणिकता– गाथा साहित्य किसी न किसी रूप में इतिहास से जुड़ा है। अनेक गाथाएँ प्रागैतिहासिक हैं, जिन्हें पौराणिक कहा जा सकता है। वैदिक, पौराणिक और महाभारत कालीन गाथाओं की संख्या अधिक है। उनमें वर्णित पात्र और घटनाएँ ऐतिहासिक ही होती हैं। उनमें समय–समय पर कल्पना और लोक विश्वास का समावेश होता रहा है। मौखिक परम्परा के विभिन्न दोषों के कारण आज वे अपने असली रूप में प्राप्त नहीं होती हैं। कुछ गाथाएँ समय के चक्र में घिस–पिटकर इतनी अधिक विकृत हो गईं हैं कि आज उन्हें परखना कठिन हो गया है। कुछ तो मात्र लोक–कथाएँ बनकर रह गईं हैं। उनके पात्र और प्रमुख घटनाएँ लुप्त सी हो गईं हैं। आज वे निराधार और कपोल–कल्पित सी प्रतीत होने लगी हैं।

जातक कथाएँ और बौद्ध गाथाएँ महात्मा बुद्ध के जीवन और कार्यों पर अधिकांशतः आधारित हैं। महात्मा बुद्ध एक ऐतिहासिक पुरुष थे। उनके कार्य–कलापों का वर्णन भलीभाँति इतिहास में किया गया है। उनसे सम्बन्धित गाथा साहित्य भी इतिहास से अछूता नहीं रह सकता, चाहे भले ही उनमें कल्पना का समावेश हो गया हो। प्राकृत और अपभ्रंश की जैन गाथाएँ भी इतिहास प्रसिद्ध हैं। कुछ महाभारत कालीन गाथाएँ लोकभाषा और लोकरूचि का बाना पहनकर बहुत परिवर्तित हो गईं हैं। ढोला–मारू गाथा को अधिकांश विद्वान महाभारत से जोड़ते हैं। इसमें राजा नल की विपत्ति और उनके अचूक पासों का वर्णन है। 'जगदेव के पमारे' को भी विद्वानों ने ऐतिहासिक माना है। किन्तु इसका कथानक इतना उलझ गया है कि अनेक स्थलों पर उसकी ऐतिहासिकता में संदेह होने लगता है। अवध में प्रचलित लोकगाथाएँ समस्त सूफी प्रेमाख्यानक काव्य ग्रंथों की मूलाधार बन गईं। 'पद्मावत' महाकाव्य का कथानक मध्यकालीन इतिहास को स्पर्श करता है।

कुछ इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं को छोड़कर ऐसा लगता है कि कविवर जायसी कपोल–कल्पित घटनाओं के जाल में उलझ गये हैं। कुछ ऐसे काव्य ग्रंथ भी उस समय लिखे गये जिनमें केवल नाम ही ऐतिहासिक हैं, शेष सम्पूर्ण कथानक काल्पनिक हैं। आदिकाल के रासो ग्रंथ में भी इसी प्रकार की गाथाएँ हैं, इसीलिए इस काल को वीरगाथा काल की संज्ञा दी गई है। वैसे रासो ग्रंथों के पात्र और कुछ घटनाएँ इतिहास प्रसिद्ध हैं और शेष काल्पनिक। चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा करने के लिए कल्पना का आश्रय लिया है। इसी कारण से विद्वानों ने रासो ग्रंथों को अर्द्ध प्रामाणिक माना है।

समसामयिक प्रवृत्ति– विद्वानों का यह कथन निराधार नहीं है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्यकार समाज का ही एक अंग है। उसे समाज से अलग कैसे किया जा सकता है? सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव साहित्यकार के हृदय पर पड़ना स्वाभाविक ही है। जिस युग का साहित्य होगा, उसमें उस युग की सामाजिक प्रवृत्तियों का स्वरूप परिलक्षित होगा। हिन्दी साहित्य के इतिहास का विधिवत अध्ययन करने से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि हर काल के साहित्य में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों और मान्यताओं का समावेश है। जब शिष्ट साहित्य की यह स्थिति है, तब लोक साहित्य इससे अछूता कैसे रह सकता है? यदि शिष्ट साहित्य मानव–मस्तिष्क की उपज कहा जाये तो लोक साहित्य मानव–हृदय की उपज है।

अतः लोक साहित्य सामाजिक परिस्थितियों का ही स्वरूप है। सम्पूर्ण गाथा

साहित्य में तत्कालीन समाज का स्वरूप दिखाई देता है। प्राचीन गाथाओं में प्राचीन समाज की मान्यताएँ और मध्यकालीन गाथाओं में मध्यकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। कोई भी गाथाकार समसामयिक प्रवृत्ति से अलग नहीं हो सकता। वीर गाथाओं में तत्कालीन शौर्य का वर्णन, प्रेमगाथाओं में तत्कालीन श्रृंगारिक भावनाओं का वर्णन और उन आदर्श गाथाओं में उस समय के मान्यता प्राप्त नैतिक मूल्य और उच्चादर्श दिखाई देते हैं। तत्कालीन समाज का विशिष्ट अध्ययन करने के लिए समाज शास्त्रियों को साहित्य का ही सहारा लेना पड़ता है। अतः इसे गाथा साहित्य का प्रमुख अंग मानना अनुचित नहीं होगा।

लोक गाथाओं का स्वरूप

विद्वानों ने 'गाथिन' शब्द से गाथा की व्युत्पत्ति मानते हुए इसका अर्थ एक विशेष कथा माना है। हालाँकि गाथा एक प्रकार की प्रामाणिक कथा ही है। उनमें वर्णित पात्र और घटनाएँ इतिहास प्रसिद्ध होती हैं। इस प्रकार की लोक–प्रचलित गाथाओं को लोक गाथाओं की संज्ञा दी गई है। विद्वानों ने लोक गाथाओं को तीन वर्गों में विभक्त किया है– गाथा, कहानी और दृष्टांत।

गाथा अलौकिक पुरुषों और वीरों का चरित्रगान है। उनमें अतिरंजित रूप से उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन होता है, जिनके विषय में यह विश्वास किया जाता है कि वे कभी जीवित रहे हैं। वर्णित पात्रों के निश्चित नाम होते हैं। उनसे सम्बन्धित स्थानों और घटनाओं का भी वर्णन होता है। पंजाब के राजा रसालू और बुन्देलखण्ड के 'कारसदेव' दोनों ही लोक गाथाओं के उत्तम उदाहरण हैं। ये दोनों ही गाथाएँ पद्य–बद्ध और लोक संगीत बद्ध हैं। लोकगीतकार, लोक वाद्यों के साथ गायन करते हुए समाज का मनोरंजन करते हुए जीविकोपार्जन करते हैं। देश के अधिकांश कथा संग्रहों में 'राजा रसालू' की गाथा का विस्तृत विवेचन उन्होंने 'मेन इन इंडिया' दिसम्बर 1944 में प्रकाशित किया था। 'कारसदेव' की लोकगाथा' श्री कृष्णानंद जी गुप्त द्वारा संपादित 'लोकवार्त्ता' के अंक दो में प्रकाशित हुई थी। गाथाओं में प्रायः सत्य का अंश पाया जाता है। किन्तु कल्पना की प्रचुरता के कारण वे सत्यता से कुछ दूर सी दिखाई देने लगती हैं, जिनके चारों ओर मनुष्य की कल्पनाप्रियता और अतिरंजनातीत प्रवृत्ति के कारण कुछ ऐसी घटनाएँ जुड़ जाती हैं, जो सत्य और असत्य के बीच झूलती रहती हैं। सत्य घटनाओं के साथ असत्य घटनाओं का तालमेल हो जाता है और लोग भ्रमवश सत्य घटनाओं को भी असत्य मानने लगते हैं। लोक घटनाओं को यदि इतिहास का प्राथमिक रूप कहा जाये तो अनुचित नहीं होगा। संसार की कोई ऐसी जाति नहीं,

जिसमें अपने पूर्वजों या वीर पुरुषों की गाथा प्रचलित न हो। लोक गाथाओं में हमारा प्राचीन इतिहास सुरक्षित है। लगता है कि उनका उद्देश्य इतिहास की रक्षा करना रहा है।

लोक कथा और लोक गाथा में बहुत अंतर है। प्रारंभ में कुछ लोगों को ऐसा भ्रम था कि इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। मैक कुलक ने अपने ग्रंथ 'चाइल्ड हुड ऑफ फिक्शन' में इन दोनों का अंतर स्पष्ट किया है। उन्होंने लिखा है कि–'लोक कथा साधारणतः लोक गाथा से छोटी होती है। उसमें सब कुछ अस्पष्ट और अनिश्चित होता है। उसे हम सच्चे अर्थों में कल्पना की मात्र उड़ान कह सकते हैं। कल्पना तो कल्पना ही है। सत्यता से उसका क्या सम्बन्ध? उसमें पात्रों और स्थानों के नामों का उल्लेख नहीं होता।

'एक था राजा। उसके चार लड़के थे। कौन राजा था? कहाँ का राजा था? उसके चारों लड़कों का नाम क्या था? इन समस्त प्रश्नों के उत्तर देने में लोक कथा असमर्थ है। किन्तु लोक गाथा के समक्ष इन प्रश्नों को प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उत्तर तो उनमें पहले से भी रहते हैं। यदि लोक कथाओं को लोक गाथाओं का विकृत रूप कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। मौखिक परम्परा और समय की अधिकता के कारण नाम धीरे–धीरे विस्मृत होने लगते हैं और एक ऐसा समय आ जाता है कि वे सभी लुप्त हो जाते हैं और कथा हवा में तैरने लगती है। एक स्थान की गाथा दूसरे स्थान पर जाकर कथा या कहानी का रूपधारण कर लेती हैं। पात्रों के नाम बदल जाते हैं या बिलकुल ही उड़ जाते हैं। नई–नई घटनाएँ और नये–नये पात्र जुड़ जाते हैं। इस प्रकार किसी एक स्थान पर किसी वीर का चरित्र जो गाथा के रूप में प्रचलित है, वह दूसरे स्थानों में जाकर कहानी मात्र रह जाता है। ऐसी स्थिति में उन दोनों की प्राचीनता में संदेह होने लगता है। अधिकांश विद्वान उन लोक गाथाओं को कथाओं की अपेक्षा अधिक प्राचीन मानते हैं। अतः गाथाएँ विद्यमान होंगी और ये धीरे–धीरे विकृत हुईं होंगी, तभी उन्होंने कहानी का रूप धारण किया होगा। अतः लोक गाथाओं को ही प्राचीन मानना उचित है। अंग्रेज विद्वान मैक कुलक ने इस सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि बहुत सी यूरोपियन कहानियों की घटनाएँ आदिम जातियों में स्वतंत्र कहानियों के रूप में देखने को मिलती हैं। परन्तु वहाँ वे किसी न किसी पूर्वज या पौराणिक पुरुष के नाम से संबद्ध रहती हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि जो एक कथा अन्यत्र कहानी के रूप में प्रचलित है, वह आदिम पुरुषों के बीच पहुँचकर गाथा का रूप धारण कर लेती है। लोक कहानियों से अक्सर कुछ न कुछ उपदेश अवश्य मिलता है, परन्तु वह प्रच्छन्न होता है। गाथाओं में

उपदेशात्मक प्रवृत्ति कम ही दिखाई देती है। उसमें पात्रों के उत्तम चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है। जीव जंतुओं और पशु–पक्षियों पर आधारित उपदेश और शिक्षाप्रद कथाएँ दृष्टांत के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं, अंग्रेजी में इन्हें 'फेबेल' कहा जाता है। 'ईसप' की फेबेल या कथाएँ सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। 'पंच–तंत्र' की कथाओं की भाँति इनमें शिक्षा और उपदेशों का ही नहीं, किन्तु गम्भीरता पूर्वक अध्ययन और मनन करने की गुंजाइश है। गत साठ–सत्तर वर्ष के भीतर पाश्चात्य विद्वानों ने इस क्षेत्र में बहुत कार्य किया है। पेन्जर महोदय ने कथा सरित्सागर पर जो कार्य किया है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। डॉ. वेरियर एल्विन ने लोक कथाओं और भारतीय लोक गाथाओं पर जो कार्य किया है, वह भारतीय लोक गाथा शास्त्र के छात्रों के लिए मार्ग–प्रदर्शन का काम करता है। उनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'फोक टेल्स आफ महाकौशल' इस क्षेत्र में अधिक महत्त्वपूर्ण है। लोक गाथाओं के वैज्ञानिक अध्ययन की नींव जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान 'जेकब लुडबिंग ग्रिम' (1785–1863) ने डाली थी। ग्रिम फेरी टेल्स आज सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। ये कहानियाँ भारतीय कथाओं और गाथाओं से प्रभावित हैं। ग्रिम के पश्चात् मैक्समूलर, बैनवे आदि जर्मन विद्वानों के प्रयत्न से गाथाओं के अध्ययन की प्रेरणा प्राप्त हुई है। लोक गाथाएँ लोक साहित्य का एक विशिष्ट प्रकार का काव्य प्रकार होती हैं, जो प्रबंध तत्त्व का निर्वाह करते हुए रोचकता पूर्ण वातावरण में लोक–कवियों का वाणी विलास कही जा सकती हैं। डॉ. शंकरलाल यादव ने इस संबंध में लिखा है कि–लोक गाथा एक महाकाव्य होता है। महाकाव्यों में मिलने वाली विशेषताएँ सक्रियता, चरित्र, पृष्ठभूमि और कथा में से सबसे अधिक बल सक्रियता पर दिया जाता है। गाथा में गीतों की अधिकता होते हुए भी संघर्ष का विशेष स्थान होता है। इनमें कई लम्बी प्रेम कथा या वीर कथा का समावेश होता है।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है– 'भारतीय भाषाओं में जो गीत पाये जाते हैं, उन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– प्रथम आकार के वे गीत हैं जो आकार में बहुत छोटे हैं और जिनमें गेयता प्रमुख हैं। दूसरे वे काव्य रचनाएँ हैं, जिनका कलेवर काफी विस्तृत होता है। उन्हें प्रबंध काव्य की संज्ञा दी जा सकती है, संस्कार और ऋतु संबंधी गीत प्रथम कोटि में रखे जा सकते हैं। लोरिकी, विजलयमल, नयकवा बन्जारा आदि लम्बे गीत द्वितीय श्रेणी में आते हैं। द्वितीय प्रकार के लोक गीतों को लोक गाथा के अंतर्गत रखा जा सकता है। अंग्रेजी में लोकगाथाओं को 'बैलेड्स' कहा जाता है। किन्तु अक्षरशः यह सत्य नहीं माना जा सकता है कि जिन पुराण पुरुषों का वर्णन लोक गाथाओं में होता है, वे पुरुष उन दिनों वास्तव में विद्यमान ही थे। कभी–कभी वे नाम प्रतीकात्मक या काल्पनिक हो जाते हैं।

प्रायः ऐसा देखा गया है कि प्रारंभ में जो पात्र या घटनाएँ काल्पनिक होती हैं, कालान्तर में वही ऐतिहासिक और सत्य हो जाते हैं। इस ऐतिहासिक युग में जयचंद और पृथ्वीराज का जो संबंध बताया गया था और संयोगिता स्वयंवर का विस्तृत वर्णन किया गया था, वह बाद में खोज करने पर कितना असत्य और काल्पनिक सिद्ध हुआ था। इसी प्रकार राम और कृष्ण के संबंध में अभी इतिहासकारों में मतभेद है। वेदों में सूर्य, वरूण, ऊषा और इन्द्र का वर्णन किया गया है, बाद में उन्हें भी शरीरधारी पुरुष मानकर ऐतिहासिक माना जा सकता है। यूनानी देवता 'जियस' वेदों में 'द्यौस' नाम से वर्णित हैं, किन्तु वही 'जियस' यूनान में ऐतिहासिक माना गया है। उसके सम्बन्ध में यूनान में अनेक लोक गाथाएँ प्रचलित हो गईं। यही स्थिति भारतीय लोकगाथाओं की भी हो सकती है। कुछ व्यक्ति अपनी असाधारणता के कारण पूजे जाते हैं।

रेणुका क्षेत्र के पास 'सरवर–सुल्तान' की मजार है। ये वही सखी–सरवर हैं जिनकी लोकगाथा पंजाब में अधिक लोकप्रिय है। जिसका संकलन श्री आर.सी. टैम्पुल ने 'दी लीजैण्ड आफ पंजाब' के रूप में किया है। आगरा में 'कुआवारे' की पूजा का महत्त्व है। वहाँ के नर–नारी गाया करते हैं–'कुआवारौ मचल गओ बगिया में' यह गीत गा–गाकर कुआवाले की पूजा किया करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि एक साधारण से व्यक्ति को कुँए में गिरा दिया गया था। हालाँकि उसके ऊपर पराई स्त्री पर आसक्ति का अपराध था और वह भूत बन गया और कुछ समय बाद लोग उसे देवता की तरह पूजने लगे। धीरे–धीरे उस पर एक लोक गाथा प्रचलित हो गई। इसी प्रकार बुंदेलखण्ड में एक आदर्श–पुरुष 'लाला हरदौल' हैं। उनके और भाभी के प्रेम सम्बन्ध पर संदेह करते हुए राजा जुझार सिंह ने उन्हें विष–मिश्रित भोजन खिलवाकर मरवा डाला था। आज उन्हीं हरदौल को गाँव–गाँव में देवता की तरह पूजा जाता है। भारत के विविध अंचलों में ऐसी अनेक लोक गाथाएँ प्रचलित हैं।

लोक गाथाओं की प्रमुख विशेषताएँ

भारत में प्रचलित लोक गाथाओं का अध्ययन करने पर उनमें अनेक भेद दिखाई देते हैं। स्थानीयता के प्रभाव के कारण उनकी प्रमुख विशेषताओं में अंतर दिखाई देता है। कुछ प्राचीन रूढ़ियों और अंध–विश्वासों का भी उनमें समावेश हो गया है। विद्वानों ने लोक गाथाओं की निम्नलिखित विशेषताओं की ओर संकेत किया है–

अज्ञात रचयिता– सारे देश में प्रचलित लोक गाथाओं की भाव भूमि में थोड़े बहुत पात्र, स्थान और घटनाओं के अंतर के बाद प्रायः समानता दिखाई देती है। उदाहरण स्वरूप, ढोला–मारू, सारंगा–सदावृक्ष, हीर–राँझा, हंस–जवाहर आदि गाथाएँ

ब्रज और बुन्देलखण्ड के अतिरिक्त, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, महाराष्ट्र और बंगाल में भी प्रचलित हैं। केवल भाषा और लोक संगीत का ही अंतर है। इन गाथाओं को हर–अंचल का व्यक्ति अपनी कहकर पुकारता है। वह राजस्थान में ढोला–मारू के नाम से प्रचलित है तो जगदेव का पंवारा नामक वीर गाथा बंगाल, ब्रज और बुंदेलखण्ड में भी प्रचलित है। इन गाथाओं में गाथाकारों का नामोल्लेख नहीं है। इनके रचयिता अज्ञात होते हैं। किस गाथा को किस कवि ने कब लिखा है, इसका सही–सही पता नहीं लग पाया। लगता है कि ये सब लोक मानस की सम्पत्ति हैं, जो मौखिक परम्परा में आज तक जीवित हैं। अवध की प्रेम प्रधान गाथाएँ किसने और कब लिखीं, इसका अनुमान लगाना कठिन है। कुछ बुंदेलखण्ड में ऐसी भी लोक गाथाएँ प्रचलित हैं। जैसे हिन्दूपति रायछे की रचना कविवर नंदकिशोर, लक्ष्मीबाई रायछे की रचना कविवर मदनेश ने और पिसनारी लोक गाथा की रचना लक्ष्मी प्रसाद शुक्ल 'वत्स' ने की थी। हालाँकि मौखिक वीरगाथाओं के रचयिता तो अज्ञात हैं, किन्तु उनके आधार पर जिन रासो ग्रंथों की रचना की गई है, वे सब हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। रासोकारों के नाम तो सारे हिन्दी साहित्य को विधिवत ज्ञात ही हैं।

मूल गाथा में परिवर्तन– गाथाओं की रचना और विकास समाज के द्वारा ही होता है। सभी अलिखित रूप में भी प्रचलित हैं। मौखिक परंपरा के कारण वे आज तक जीवित हैं। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से सुनकर इन्हें सीखता रहा है। सुनकर सीखने में कभी स्वर यंत्र और कभी श्रवणेन्द्रिय के दोष के कारण कुछ न कुछ परिवर्तन हो ही जाता है। यही कारण है कि लोक गाथा का वास्तविक रूप या मूल पाठ सैकड़ों वर्षों के बाद बदल ही जाता है। गाथा का कुछ अंश घट जाता है और कुछ नवीन अंश अपने आप जुड़ जाते हैं। अतः यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि गाथाकार की मूल गाथा यही है अथवा कोई और। केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। यदि किसी गाथा को उसी समय लिपिबद्ध कर लिया जाता तो वह मूल प्रमाणित रूप में प्राप्त हो सकती थी। अब तो केवल अनुमान पर ही विश्वास किया जा सकता है। सारंगा को लोग 'सोरंगा' या सारंधा कहने लगे। ढोला–मारू को ढुलन गाथा या पण्डवा को पाण्डवा गाथा कहने लगे। मौखिक साहित्य तो सदैव बदलता ही रहता है। उसे मूल रूप में सुरक्षित रखना कठिन है।

संगीत और नृत्य की प्रधानता– लोक गाथा का मुख्य तत्त्व नृत्य और संगीत है। राबर्ट ग्रेम्स ने गाथा का अर्थ 'बैलेड्स' माना है। बैलेड्स शब्द की व्युत्पत्ति 'बैलारे' शब्द से मानी है, जिसका अर्थ है नाचना। उन्होंने स्वयं ही लिखा है कि इसका मूल अर्थ उन गीतों से है, जो नृत्य के साथ–साथ गाया जाता है। धीरे–धीरे जनता का एक

सामूहिक दल इन्हें गाने लगा और आज यह स्थिति है कि हर एक लोक गाथा किसी न किसी लोक ध्वनि में आबद्ध होती है। कभी–कभी लोक वाद्यों के साथ गायन करते हुए भाव–विभोर होकर लोग नाचने भी लगते हैं। आज भी गाँवों में ऐसे लोक गीत गाये जाते हैं, जिनके साथ नाच भी होता है। राई, सैरा और स्वांग ऐसे ही लोक नृत्य हैं, जो नाचने और गाने का आनंद एक साथ देते हैं। कुछ गाथाएँ अवसर विशेष पर गाईं जाती हैं। जैसे नवरात्रि के अवसर पर 'जगदेव का पमारा, वर्षा ऋतु में आल्हा और ढोला और वैवाहिक अवसरों पर हरदौल के गीत गाये जाते हैं। ये गाथाएँ लोक वाद्यों के वादन के साथ गाईं जातीं हैं। भर्तृहरि और गोपीचंद की गाथाओं का आनंद नाच–गाकर भी लिया जाता है। गायन की मधुरता, संगीत की मादकता और नृत्य की कलात्मकता के कारण लोग इन्हें रूचिपूर्वक सुनते है। सच पूछा जाये तो गायन के बिना गाथा का कोई महत्त्व नहीं है।

स्थानीय वातावरण का प्रभाव– प्रत्येक गाथा किसी न किसी रूप में स्थानीय वातावरण से जुड़ी रहती है। स्थानीय संस्कृति और सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव इन पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। भाषा, रहन–सहन, खान–पान का प्रभाव तो दिखाई देता है, किन्तु स्थानीय विशेषताओं से भी ये अछूती नहीं रह सकतीं। गाथाकार जिस समाज में रहता है, उसका प्रभाव उनके कवित्व पर पड़ता है। उदाहरणस्वरूप हरदौल गाथा में बुंदेली संस्कृति, ढोला मारू गाथा में राजस्थानी, सारंगा में बंगाली और हीर–राँझा में पंजाब अंचल की विशेषताएँ दिखाई देती हैं। हरदौल गाथा की समस्त सामग्री बुंदेली है। भोजन, पकवान और व्यंजनों के नाम स्थानीय हैं। हरदौल की बहिन कुंजावती अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर भाई से भात माँगने जाती है और हरदौल अपनी भांजी के विवाह में प्रेतावस्था के रूप में स्वयं सम्मिलित होते हैं और भोज में घी परोसने का कार्य करते हैं। लोगों को केवल लोटा और घी परसता हुआ दिखाई देता है। मनुष्य की आकृति दिखाई नहीं देती। यह गाथा बुंदेली वातावरण से प्रभावित है।

इसी प्रकार 'ढोला–मारू' गाथा में धाँदू का चरित्र चित्रण भी बुंदेली में है। इस कथानक के इस प्रकार के नामों की कल्पना भी बुंदेलखण्ड की उपज है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस क्षेत्र की लोक गाथा होती है, उस पर क्षेत्रीय प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य होता है।

मौखिक परंपरा– गाथाएँ प्राचीन काल से ही अलिखित रूप में विद्यमान हैं। प्राचीन विद्वानों का ध्यान इनकी ओर आकर्षित नहीं हुआ। नहीं वे सबकी सब अपने मूल रूप में सुरक्षित रहतीं। वैसे तो भारतीय विद्वानों ने सम्पूर्ण लोक साहित्य को उपेक्षा की

दृष्टि से देखा है फिर लोक गाथाओं की ओर किसका ध्यान जा सकता था? वे प्राचीन काल से लेकर आज तक मौखिक रूप में विद्यमान हैं। रूचि के अनुसार लोकगीत गायक से सुन–सुनकर लोक गाथाएँ सीखते रहे हैं और यह क्रम सैकड़ों वर्ष से संचालित है। इसी मौखिक परम्परा के कारण सैकड़ों वर्ष पुरानी लोककथाएँ आज भी प्रचलित हैं और आगे भी रहेंगी, किन्तु इनकी परम्परा केवल ग्रामीण अशिक्षितजनों में ही रही हैं। गाँवों में कुछ ऐसे अनपढ़, अशिक्षित और वृद्ध मिल जाते हैं, जिन्हें अनेक लोक गाथाएँ याद रहती हैं। आज भी गाँव के लोग इन्हें सुन–सुनकर आनंद प्राप्त करते हैं। उस समय गाँवों की अथाई का दृश्य देखने योग्य होता है, जब गायक भाव–विभोर होकर लोक स्वर और लोक वाद्यों के साथ गाथाओं का गायन करते हैं। तब ग्रामीण श्रोतागण रात–रातभर जाग कर आनंद लिया करते हैं। वर्षा ऋतु में ढोलक के साथ आल्हा और कहीं सितार के साथ ढोला और नवरात्रि के अवसर पर ढोलक नगड़िया के साथ 'जगदेव को पंवारौ' गाया जाता है और ये सब गाथाएँ लोक मुख में ही सुरक्षित होती हैं।

उपदेशात्मक और शैक्षिक भावना– वैसे लोक गाथाएँ मनोरंजन प्रधान होती हैं। साथ ही उनसे कोई न कोई महत्त्वपूर्ण शिक्षा भी प्राप्त होती है। उदाहरणस्वरूप लोहागढ़ संग्राम से देश प्रेम, लक्ष्मीबाई राछरे से नारी जागरण और बलिदान, लाला हरदौल गाथा से पतिव्रता, धर्म और मर्यादा, जगदेव के पंवारे से भक्ति–भावना और सुरहिन लोकगाथा से करूणा और सम्बन्ध भावना की शिक्षा प्राप्त होती है।

पाश्चात्य चिंतक राबर्ट ग्रेम्स ने लिखा है– कि गाथाओं से कोई उपदेश प्राप्त नहीं होता है। गाथाओं में कोई उपदेशात्मक प्रवृत्ति भले ही दिखाई न दे, किन्तु अधिकांश भारतीय लोक गाथाएँ आदर्श प्रधान ही होती हैं। उनसे पतिधर्म, देश प्रेम और सामाजिक आदर्शों की शिक्षा प्राप्त होती है। बुन्देलखण्ड की हरदौल गाथा 'देवर–भाभी' का आदर्श चरित्र प्रस्तुत करती है। सरमन गाथा पितृभक्ति, का ढोला–मारू अनन्य–प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत करती है। चन्द्रावली और मथुरावली गाथाएँ पतिव्रत धर्म और सतीत्व का परिचय देती हैं। झाँसी वाली रानी और महाराज छत्रसाल की गाथाएँ देश–प्रेम का पाठ पढ़ाती हैं। इन विशेषताओं को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सभी गाथाएँ किसी न किसी रूप में शिक्षा प्रधान हैं। अन्य देशों की गाथाएँ चाहे भले ही इस प्रवृत्ति से अलग हों, किन्तु भारतीय गाथा साहित्य इसी आधार भूमि पर अवस्थित हैं।

स्वाभिमान भाषा शैली का प्रयोग– ये मानव हृदय के सीधे–सादे उद्‌गार हैं। इनमें कृत्रिमता के लिए कोई स्थान नहीं है। भारत ही नहीं सारे विश्व में हर अंचल

में लोक गाथाएँ प्रचलित हैं। इनकी भाषा प्रायः सरल–सहज और अकृत्रिम होती है। हर गाथा क्षेत्रीय लोक ध्वनियों और लोक भाषा में आबद्ध होती हैं। लोक ध्वनि माधुर्य और लोक भाषा की सहजता के कारण वे जन–जन के लिए रूचिकर प्रतीत होती हैं। गाथाओं की लोक ध्वनियाँ इतनी सुपरिचित और प्रसिद्ध होती हैं कि श्रोतागण सुनते ही गाथा के नाम से परिचित हो जाते हैं। बुंदेलखण्ड में जब अल्हैत ढोलक की ध्वनि के साथ उच्च स्वर में आल्हा का गायन करता है, तो लोग ढोलक की ध्वनि को सुनते ही आल्हा–गायन की बात को समझ जाते हैं। आलाप भरते ही लोग समझ जाते हैं कि अब तो जगदेव कौं पंवारौ गाया जा रहा है। कार्तिक के गीत, कारसदेव की गोटैं, चांचर के गीत सब अलग–अलग ध्वनियों में गाये जाते हैं, जिनसे सभी बुंदेली समाज भलीभाँति सुपरिचित है। यही स्थिति भारत के हर अंचल की लोक गाथाओं की है। लोक भाषा की सरलता और लोक ध्वनियों की मादकता के कारण पूरी–पूरी रात लोकगाथाएँ सुनते रहते हैं। हर गाथा में कोई न कोई लोक कथा अवश्य ही पिरोई जाती है, जिससे श्रोताओं की जिज्ञासा तृप्त होती है और उन्हें आनंद की प्राप्ति होती है।

रचनाकार के व्यक्तित्व का अभाव– गीत में गीतकार का हृदय बोलता है। गीत के माध्यम से गीतकार अपनी हृदयस्थ भावनाओं का उद्‌भाषन करता है। उसके सुख और दुःख के भाव गीत के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि ने गीत की उत्पत्ति दुःखों से ही मानी है। 'Our sweetest songs are those, that tell us saddest thoughs' अर्थात् अपने अच्छे गीत वे हैं जो दुःखों के भावों को अभिव्यक्त करते हैं, कुछ इसी तरह के भाव प्रकृति के चित्र–चितेरे कवि सुमित्रानंदन पंत ने भी व्यक्त किये थे–

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
निकलकर नयनों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।

किन्तु लोक गाथाओं की स्थिति इन सबसे हटकर है। गाथा पर गाथाकार के व्यक्तित्व की छाप दिखाई नहीं देती और न उसके नाम का स्पष्टीकरण होता है। वे तो लोकमुख में सुरक्षित परम्परागत गाथाओं को कंठस्थ करके प्रस्तुत करते आये हैं। उनमें समय–समय पर थोड़ा–बहुत परिवर्तन भी होता रहा है। कुछ अंश घट जाता है और कुछ अंश बढ़ जाता है। उसमें रचनाकार का व्यक्तित्व प्रदर्शित नहीं होता।

विस्तृत कथावस्तु– प्रारंभ में मूल गाथा कुछ भी रही हो, किन्तु आज इसका आकार काफी विस्तृत हो गया है। बीच में कई नईं–नईं कल्पनाएँ और अन्तर्कथाएँ जुड़ गईं हैं, जिनके कारण उनका आकार काफी विस्तृत हो गया है। गवैये उनमें अपनी

नईं–नईं कड़ियाँ जोड़ते रहे और मूल गाथा का स्वरूप विकृत हो गया और वे आज अपने असली रूप में नही हैं। यही कारण है कि इतिहासकारों ने लोकगाथाओं को अप्रमाणित सिद्ध किया है। सुप्रसिद्ध साहित्यकार और इतिहासकार गौरीशंकर–हीराचंद्र ओझा ने आदिकालीन वीरगाथाएँ और भक्तिकालीन अवध की समस्त प्रेमगाथाओं को अप्रमाणिक और अर्द्ध प्रमाणिक सिद्ध किया है। जगनिक कृत 'आल्हाखण्ड' में 52 लड़ाइयों का वर्णन है। यदि उनके पृष्ठों की संख्या देखी जाये तो उनकी संख्या दो प्रबंध काव्यों के बराबर है। इसी प्रकार 'जगदेव कौ पंवारौ' 64 दरबारों में विभक्त है। नवरात्रि के अवसर पर नौ दिन बराबर गाया जाता है, फिर भी पूरा नहीं होता। उसका आकार चार महाकाव्य के बराबर है। ढोला पूरी रात गाया जाता है, फिर भी पूरा नहीं होता। चंद्रबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज चौहान के 12 विवाहों का विस्तृत वर्णन है। कारसदेव की गाथा लोग कई दिन तक गाते रहते हैं, फिर भी पूरी नहीं होती। बुंदेलखण्ड में ऐसी अनेक लोक गाथाएँ हैं, जिनके आधार पर अनेक महाकाव्यों की रचना की जा सकती है।

पदों की आवृत्ति और लोक संगीत की प्रधानता– लोक गाथाएँ तो लोक–संगीतबद्ध होती ही हैं, गेयता के कारण ही वे कर्ण प्रिय और आनंदप्रद होती है। गाथाओं का मूल तत्त्व लोक ध्वनि ही है। संगीतात्मक और प्रभाव–पूर्ण बनाने के लिए टेक पदों की आवृत्ति की जाती है, जिसके कारण माधुर्य में वृद्धि होने लगती है। ये प्रायः सामूहिक रूप में ही गाईं जाती हैं, ऐसा करने से पदों की आवृत्ति स्वतः ही होती है। क्रीटिज, गूमर और ग्रेम्स आदि पाश्चात्य लोक गाथा विशेषज्ञों ने आवृत्ति को गाथा की प्रमुख विशेषता स्वीकार किया है। सिजविक ने इस विचार की पुष्टि करते हुए लिखा है– 'लोक गाथाएँ सामूहिक रूप से गाने की वस्तु हैं।'

अपने ग्रंथ 'लोक साहित्य सिद्धांत और प्रयोग के पृष्ठ 218 पर डॉ. श्रीराम शर्मा ने लोक गाथाओं की निम्नलिखित विशेषताओं की ओर संकेत किया है –

1. ये वस्तु व्यंजक होती हैं, आत्म–व्यंजक नहीं होतीं।
2. लोक कंठ पर अवस्थित और गरिमापूर्ण।
3. यथार्थ चित्रण का प्रावधान वाग्जाल और अनावश्यक सामग्री से दूर।
4. भावात्मकता एवं पारस्परिक प्रेम का सहज रूप और कल्पनागत सहजता का आधिक्य।

5. नैसर्गिकता, भावों और विचारों की सरलता।

6. शिष्ट साहित्य द्वारा सजे संवारे हुए अलंकारों का अभाव।

7. कतिपय अलंकारों, कहावतों, मुहावरों की आवृत्ति।

8. सरल छंदों का प्रयोग एवं तुकों की लापरवाही।

9. गेयता की विद्यमानता किन्तु शास्त्रीय संगीत के झमेले का अभाव।

10. किसी लघु या दीर्घ कथा की आवृत्ति।

लोक गाथाओं का मूल्यांकन

ऐतिहासिक मूल्यांकन– अधिकांश लोक गाथाएँ इतिहास की आधार भूमि पर ही निर्मित हैं। प्रारंभ में तो गाथाकारों की दृष्टि पूरी तरह से ऐतिहासिक ही रही है। धीरे–धीरे कल्पना के प्राचुर्य के कारण उनका रूप विकृत हो गया और अब वे अनैतिहासिक कहलाने लगीं। केवल पात्रों के नाम ही ऐतिहासिक रह गये और शेष सारी सामग्री काल्पनिक। आज वे जिस रूप में हैं, उनसे ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना कठिन है। कुछ गाथाएँ राजा विक्रम और राजा भोज से सम्बन्धित हैं। कुछ पौराणिक, कुछ महाभारतकालीन, कुछ मध्यकालीन मुस्लिम अनाचारों पर आधारित और कुछ ब्रिटिश कालीन हैं, जिन्हें क्रमबद्ध लगातार अध्ययन किया जा सकता है। राजा विक्रम और राजा भोज की गाथाएँ, संस्कृत कथा ग्रंथ सिंहासन बत्तीसी और बेताल पच्चीसी से प्रभावित हैं। गाथाओं में वर्णित नामों को छोड़कर शेष सारी घटनाएँ काल्पनिक हैं। गाथाओं में वर्णित राजा विक्रम को इतिहासकार चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के रूप में ही मान्यता देते हैं। भारतीय इतिहास के आधार पर उनका शासनकाल सन् 375 से 413 के बीच माना जाता है। विक्रम के सम्बन्ध में श्री डी.जी. कस्तूरे ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि भारतीय कथाओं और परम्पराओं के अनुसार विक्रम नामक एक महान शासक उज्जयिनी में राज्य करता था, जिसके दरबार में कालिदास, धन्वन्तरि, वराहमिहिर आदि नवरत्न थे, जिसने शकों को करारी हार दी थी। जिसने भारत में प्रचलित काल गणना पर आधारित विक्रम संवत् को प्रारंभ किया था। ये विक्रम कौन थे? इनके बारे में कोई सर्व–सम्मत मत प्राप्त नहीं हैं, किन्तु साधारणतः विद्वान चन्द्रगुप्त द्वितीय को ही विक्रम की मान्यता प्रदान करते हैं। इतिहास उन्हें दूरदर्शी, राजनीतिज्ञ, उदार, न्यायप्रिय और साहित्य–मर्मज्ञ के रूप में मान्यता देता है। उनके गुणों पर आधारित लोक में अनेक कथाएँ और गाथाएँ प्रचलित हैं। इसी प्रकार राजा भोज की उदारता, न्याय प्रियता और दयालुता पर आधारित अनेक लोक गाथाएँ भारत

के विभिन्न अंचलों में प्रचलित हैं, जो एक सुप्रसिद्ध इतिहास पुरुष थे। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. मिथलेश चन्द्र उपाध्याय ने राजा भोज के सम्बन्ध में लिखा है–'मालवा में दसवीं शताब्दी में परमार वंश शासन कर रहा था। प्रारंभ में परमार आबू के पर्वतीय प्रदेश में रहते थे। कुछ समय पश्चात् वे मालव पर शासन करने लगे और धारा नगरी उनकी राजधानी बनी। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध और प्रभावशाली शासक भोज था। जिसने सन् 1010 ई. से 1055 ई. तक बड़ी शान से शासन किया था। राजा भोज बड़े वीर, दूरदर्शी, न्यायप्रिय, प्रजापालक राजा थे। राजा भोज बड़े विद्वान, संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित और राजनीतिज्ञ शासक थे। उनके दरबार में संस्कृत के बड़े–बड़े कवि, शिल्पकार और चित्रकार रहते थे। उन्होंने भोपाल नाम का नगर जिसका प्राचीन नाम 'भोजपाल' था, और इसके साथ ही उन्होंने विशाल भोपाल के तालाब का निर्माण कराया था। मुख सुख के कारण 'भोजपाल' का नाम भोपाल पड़ गया। संस्कृत के कथा साहित्य में राजा भोज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन कथाओं से राजा भोज की लोकप्रियता की पुष्टि स्वतः ही हो जाती है। इसी कारण से उन्हें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सिंहासन बत्तीसी पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

जब राजा भोज सिंहासन पर बैठने के लिए उदात हुए, तब सिंहासन में स्थित हर पुतली ने राजा विक्रम की उदारता, दयालुता, न्यायप्रियता और प्रजापालकता पर आधारित एक कहानी सुनाई थी। वे समस्त कथाएँ और गाथाएँ आज भी संस्कृत साहित्य में सुरक्षित हैं। बुन्देलखण्ड की लोकगाथा 'जगदेव के पंवारे' में राजा भोज और धारानगरी का विधिवत वर्णन है। सन् 234 ई. पू. से 236 ई. पू. तक भारत के दक्षिण में आंध्रप्रदेश में 'सातवाहन' नाम के राजाओं का शासन था। वे बड़े प्रतापी और शक्तिशाली राजा थे। उनका नाम सुनते ही शत्रु भयभीत हो जाते थे। कुछ गाथाओं में राजा दंतवक्र का नाम आया है। श्रीमद्भागवत के दशम् स्कंध में चेदि (चंदेरी) नरेश शिशुपाल के भाई दंतवक्र का उल्लेख है। चेदि जनपद 'वत्स' का दक्षिणी पड़ोसी जनपद था। महाभारत काल में यहाँ श्री कृष्ण के विरोधी शिशुपाल की प्रभुता थी। शिशुपाल और दंतवक्र दो भाई थे। शिशुपाल के पुत्र 'धृष्टकेतु' ने कौरवों की ओर से महाभारत में युद्ध किया था। उसकी राजधानी 'शुक्तिमती' केन नदी के तट पर बसी हुई थी। वर्तमान बुंदेलखण्ड इस जनपद में सम्मिलित था।

रानी 'फूलवती' नामक लोक गाथा में उत्तराखण्ड के राजा 'रनधीर सिंह' का उल्लेख है, किन्तु बुंदेलखण्ड के इतिहास में वीरभद्र के पुत्र धीरसिंह के कार्यों का उल्लेख है। उनका जन्म संवत् 1130 के लगभग हुआ था और शासन काल संवत् 1150 वि. के लगभग माना गया है। बुंदेलखण्ड की लोकप्रिय गाथा 'लाला हरदौल' में पर्याप्त

ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। लाला हरदौल और उनसे संबंधित समस्त घटनाएँ ऐतिहासिक ही हैं। इतिहास उन्हें 'दीवान हरदौल' के रूप में मान्यता प्रदान करता है। जुझारसिंह और हरदौल महाराज, वीरसिंह जू देव के ही पुत्र थे। संवत् 1667 में महाराज वीरसिंह जू देव की मृत्यु के बाद उनके पुत्र जुझार सिंह ओरछा के राजसिंहासन पर विराजमान हुए थे। हरदौल के विष मिश्रित भोजन करने की घटना जुझार सिंह के कारण ही घटित हुई थी। राजस्थान की लोकप्रिय गाथा 'ढोला–मारूरा दूहा' भी ऐतिहासिक है। यही गाथा ढोला–मारू के नाम से बुंदेलखण्ड में प्रचलित है। इस गाथा में महाभारतकालीन राजा नल के पुत्र ढोला के विवाह का वर्णन है। नल की आपदा और परदेश गमन का भी वर्णन है। अपने भाई से जुए में पराजित होकर रानी दमयंती के साथ जंगलों में भटकते रहे। ये महाभारत की एक महत्त्वपूर्ण कथा है। इस गाथा की अधिकांश घटनाएँ काल्पनिक हैं। केवल नल–दमयंती और उनकी राजधानी 'नरवरगढ़' नाम ही ऐतिहासिक हैं। बुंदेलखण्ड में पशुधन के लोकदेवता 'कारस देव' की लोकगाथा का गायन भाद्रपद शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को बड़े ही भक्ति भाव से किया जाता है। बुंदेलखण्ड के पशुपालक अहीर और गड़रिया जाति के लोग ही इस गाथा को गाते हैं। इस गाथा को डौरू (डमरू) के साथ विचित्र ध्वनि में गाया जाता है। उस ध्वनि को सुनते ही लोग समझ जाते हैं कि ये कारस देव की गोटें गाईं जा रहीं हैं। लोक गाथा में ऐसा संकेत प्राप्त होता है कि कारसदेव का अवतार भगवान शंकर की भक्ति के कारण ही हुआ था और वे शंकर के परम भक्त थे। कुछ लोक साहित्य मर्मज्ञों का ऐसा मत है कि कारसदेव भगवान कृष्ण के अवतार थे। कुछ विद्वानों का मत है कि वे हैहय वंशी राजा अजय पाल के आश्रित और समकालीन थे। इस गाथा की अधिकांश घटनाएँ काल्पनिक होने के कारण ऐतिहासिकता कुछ धुंधली हो गई है।

बुन्देलखण्ड में कुछ ऐसी अनेक लोक गाथाएँ प्रचलित हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध मध्य कालीन इतिहास से है। अधिकांश लोकगाथाएँ मुगलकालीन हैं। लाला हरदौल, प्रवीण राय, मधुकर शाह, रानी गणेश कुंवरि और मथुरावली आदि लोक गाथाएँ इसी प्रकार की हैं। कुछ गाथाएँ ब्रिटिश कालीन हैं। जैसे झाँसी की रानी, राजा मर्दनसिंह, बखतवली शाह, राजा अमानसिंह, हिन्दूपति और धनसिंह नाम की ऐसी ही लोकगाथाएँ हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक गाथाओं का मूलाधार इतिहास और कल्पना ही है।

लोक गाथाओं का सांस्कृतिक मूल्यांकन– हमारे प्राचीन लोक साहित्य में संस्कृति का अक्षय–भण्डार सुरक्षित है। भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत लोक मान्यताएँ, नैतिक मूल्य, आचार–विचार और आदर्श चरित्र को प्रमुख स्थान दिया गया है। गाथाओं

की नींव, इतिहास और निर्माण सामग्री संस्कृति है। लोक गाथाकार लोक संस्कृति से अछूता नहीं रह सकता। अतः इनका सांस्कृतिक पक्ष सर्वोपरि है। धर्म और संस्कृति अन्योन्याश्रित हैं। व्यक्ति और जाति में जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध लोक साहित्य और संस्कृति का है। भारतीय संस्कृति परोपकार दया, प्रेम अहिंसा और 'सत्यं शिवं सुन्दरं' स्वरूप है। कुछ गाथाओं में उत्तम चरित्र के दर्शन होते हैं। जनमानस की पीड़ा और लोक मंगल की भावना, सतीत्व और संस्कार जीवन ही संस्कृति है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक साहित्य के स्वरूप का निर्धारण करते हुए लिखा है कि 'लोक संस्कृति का जैसा दिव्य और अकृत्रिम प्रतिबिम्ब इस साहित्य में उपलब्ध होता है, उसका दर्शन अन्यत्र उपलब्ध कहाँ? जन साहित्य की निर्मल–निर्झरिणी में अवगाहन कर केवल शरीर ही पवित्र नहीं होता, प्रत्युत आत्मा भी पवित्र हो जाती है। इसमें जिस समाज का चित्रण किया जाता है। वह स्वस्थ, सदाचारी और धर्म–भीरू होता है। जिस नीति की प्रतिष्ठा की गई है, वह कल्याण मार्ग की ओर ले जाने वाली है। वह मंगलमय पथ प्रदर्शिका है। जिस धर्म का वर्णन किया गया है, वह संसार में शांति तथा प्रेम का संदेश देता है। जिस आर्थिक संगठन का उल्लेख हुआ है, वह पीड़ित तथा दलित मानवता के शोषण पर अवलंबित नहीं है। जिस राजनीति का दिग्दर्शन कराया गया है, वह दलीय संघर्ष और विषाक्त वातावरण से कोसों दूर है, धर्म, समाज और नीति का यही मनोरम चित्रण इस साहित्य की शुचि–महत्ता में चार चाँद लगा देता है। लोक गाथाएँ तो तत्कालीन संस्कृति के अक्षय कोष ही हैं।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक साहित्य के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि–'लोक साहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है– एक विशालतम सभ्यता का उद्घाटन, जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र में डूब गई है या गलत समझ ली गई है, वह लोक साहित्य सभ्यता का वेद है। वेद भी तो अपने काल में श्रुति कहलाते थे। वेद भी आर्यों की महान जाति के गीत थे। ग्राम कथाओं और गाथाओं की भाँति सुन–सुनकर याद किये जाते थे। सौभाग्यवश वेद ने 'श्रुति' से उतरकर लिपि का रूप धारण किया था, किन्तु हमारी लोक गाथाएँ आज भी 'श्रुति' ही हैं। जिस प्रकार वेदों के द्वारा आर्य सभ्यता का ज्ञान होता है, उसी प्रकार लोक गाथाओं के द्वारा प्राचीन संस्कृति का ज्ञान प्राप्त होता है। ईंट–पत्थर के प्रेमी विद्वान यदि धृष्टता न समझें तो जोर देकर कहा जा सकता है कि लोक गाथाओं का महत्त्व मोहन जोदड़ों से भी अधिक है। मोहन जोदड़ों सरीखे भग्न स्तूप ग्राम कहानियों के भाष्य का काम दे सकते हैं। लोक साहित्य की भूमिका ग्रंथ के पृष्ठ 271 पर लोक साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने बहुत ही मूल्यवान और सटीक बात कही है।

लोक साहित्य के सुप्रसिद्ध अध्येता श्री गूमर ने लिखा है जिसका हिन्दीकरण प्रस्तुत है–'भारतीय लोक गाथाओं का महत्त्व केवल इसी बात में नहीं है कि उनमें अकृत्रिम काव्य भावना उपलब्ध होती है। वे परंपरा की ही भाषा में अपनी अभिव्यक्ति नही करते, प्रत्युत जन समूह की वाणी द्वारा प्रकाशित करते हैं। उनमें किसी भी प्रकार की गोपनीयता नहीं पाई जाती है। जो वस्तु जैसी है, उसका यथा तथ्य रूप में वे वर्णन करते हैं। वे स्वतंत्र हैं तथा खुली हवा की भाँति ताजे हैं। वायु और सूर्य का प्रकाश उनमें खेल करता है।

भारतीय गाथाएँ संसार के विभिन्न देशों में विभिन्न रूपों में पाईं जाती हैं। यह लोक संस्कृति की अक्षय निधि है। लोक साहित्य जनता जनार्दन की सम्पत्ति है। यह भगवान के विराट स्वरूप की ही भाँति विराट और अनन्त हैं। संसार के सभी सभ्य देशों में लोक साहित्य के संकलन, सम्पादन और प्रकाशन के लिए अनेक संस्थाओं की स्थापना की गई है। आज भारतीय संस्कृति को पूर्ण सुरक्षित रखने के लिए लोक गाथाओं की समुन्नति और संरक्षण आवश्यक है। इनकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य ही नहीं राष्ट्रीय धर्म है। यह हमारी एक अमूल्य निधि है। इसे खो देने का अर्थ है कि हम अपने बहुत बड़े संस्कृति के कोष का परित्याग कर रहे हैं। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने संस्कृति की परिभाषा देते हुए लिखा है कि– 'ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा संस्कृति है। संस्कृति के बिना जन की कल्पना कबंध मात्र है। संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है। संस्कृति के विकास और अभ्युदय द्वारा ही राष्ट्र की वृद्धि संभव है। जीवन के विटप का पुष्प संस्कृति है। संस्कृति के सौन्दर्य और सौरभ में ही राष्ट्रीय जन के जीवन का सौन्दर्य और यश अन्तर्निहित है।

लोक गाथाओं का सामाजिक मूल्यांकन– लोक साहित्यकार ने समाज की जिस स्थिति का अवलोकन किया, उसका यथार्थ चित्रण अपनी तूलिका से चित्रित किया है। उन्होंने समाज के विभिन्न अंगों का चित्रण किया है। इस साहित्य में जहाँ आदर्श और पतिव्रता नारियों का उल्लेख है, वहीं कर्कशा, कुल्टा और व्यभिचारिणी नारियों का भी वर्णन है। जहाँ समाज की संपन्नता, वैभव और समृद्धि का वर्णन है, वहीं दीनता और विपन्नता के दर्शन होते हैं। एक ओर परिवार में पारस्परिक सहानुभूति और प्रेम का वातावरण होता है, तो वहीं दूसरी ओर कलह, अशान्ति, घृणा और ईर्ष्या–द्वेष के चित्र दिखाई देते हैं। गाथा लोक साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है। इस सम्बन्ध में अवधी लोक साहित्य की मर्मज्ञा डॉ. सरोजनी रोहतगी ने लिखा है कि–' लोक गाथाकार ने जीवन के शाश्वत् सत्य को पहचाना है। इस शाश्वत सत्य ने ही उसके आस–पास के जीवन से सम्बन्ध स्थापित किया तथा उसे अपने में बटोरा, जिसका

यथार्थ चित्रांकन लोक साहित्य में उपलब्ध है।' निम्नलिखित प्रमुख–बिन्दुओं के आधार पर लोक गाथाओं का सामाजिक मूल्यांकन किया जा सकता है–

समाज की संपन्नता का चित्रण– लोकगाथाओं के अनेक स्थलों पर सामाजिक वैभव और समृद्धि के दर्शन होते हैं। राजाओं से सबन्धित गाथाओं में वैभव के चित्र दिखाई देते हैं जैसे–सोने की थाली में भोजन और सोने के लोटे में गंगा जल–पान करने की बात राजाओं पर ही सत्य–सिद्ध हो सकती है। कुछ गाथाओं में समाज समृद्ध और वैभवशाली दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि हमारे देश का अतीत बड़ा ही संपन्न और गौरवशाली रहा होगा। अन्यथा उनकी राजसी साज–सज्जा हेतु इतना अधिक अर्थ कहाँ से आता? नायक और नायिकाओं की साज–सज्जा, सौन्दर्य और अन्य वस्त्राभूषण देवांगनाओं से किसी भी तरह कम नहीं थे। यदि समाज विपन्न और हीन होता तो उसके पास इतनी अधिक सुख–सामग्री कहाँ से आती? तत्कालीन लोक जीवन में उल्लास और आनंद का वातावरण दिखाई देता था।

सामाजिक विपन्नता– तत्कालीन समाज में एक ओर संपन्नता और सुख–समृद्धि का वातावरण दिखाई देता था तो दूसरी ओर दीनता और विपन्नता के दर्शन होते थे। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि– जहाँ ग्रामीण जीवन में सुख और समृद्धि का सागर हिलोरें मार रहा है, वहीं घोर निर्धन और दीनता का वीभत्स कंकाल सामने दिखता था। जहाँ देहात की दुनिया में धन–धान्य और वैभव का साम्राज्य दिखाई देता है, वहीं दुःख, गरीबी और भूख का भैरव नाद भी सुनाई देता था। जहाँ झूमर गीतों में सोने की थाली में भोजन करने और स्वर्णमय पात्रों से जल पीने का वर्णन उपलब्ध होता है, वहीं टूटी खाट और टपकते हुए छप्पर का मर्मस्पर्शी चित्रण हमारे हृदय को आकर्षित कर लेता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि सुख–दुःख, आशा–निराशा, विलास–वैभव और दैन्य–दीनता के उभय–पक्षों का वर्णन लोकगाथाओं में पाया जाता है। गाथा–साहित्य में मानव जीवन का यथार्थ स्वरूप दिखाई देता है।

भारत के विविध अंचलों में इस प्रकार की अनेक लोकगाथाएँ प्रचलित हैं, जिनमें समाज की विपन्नता दिखाई देती है। कोई गरीब ब्राह्मण विपन्नता के कारण ही लकड़ी बेचता है। कोई व्यक्ति दीनता के कारण परदेश में धनार्जन करने जाता है। किसी–किसी राजा के ऐसे भी दुर्दिन आ जाते हैं कि वह अपना राज्य छोड़कर परदेश चला जाता है। ढोला–मारू गाथा में राजा नल की व्यथा और जगदेव के पंवारे में राजा जगदेव की दुर्दशा का ही विस्तृत वर्णन है। जब बड़े–बड़े राजाओं की ऐसी स्थिति है, तब जनसाधारण का तो कहना ही क्या है?

पारिवारिक व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध– समाज में एक ओर सुख और शान्ति का साम्राज्य दिखाई देता है तो दूसरी और संघर्ष और कलह का दृश्य। लोक साहित्य की भूमिका नामक ग्रंथ में लिखा है कि– लोक साहित्य में जहाँ आदर्श, पतिव्रता नारियों का उल्लेख है, वहीं ऐसी कर्कशा स्त्रियों का भी वर्णन है जो विधवा होने के लिए सूर्य भगवान से प्रार्थना करतीं हैं। जहाँ माता और पुत्री का दिव्य प्रेम दिखलाया गया है, वहीं सास–बहू और ननद–भावज में कटु और विषाक्त व्यवहार का भी वर्णन है। भाई और बहिन के निःस्वार्थ, पवित्र और दिव्य प्रेम का वर्णन करने के लिए जो भी विशेषण प्रयुक्त किया जायें, वह थोड़ा है। भाई–भाई के घनिष्ठ प्रेम का उल्लेख करने के साथ ही साथ, देवर और भाभी का जो सम्बन्ध दिखाया गया है, वह कुछ विशेष प्रशंसनीय नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि जन–जीवन के उभय पक्षों सुंदर–असुंदर, जो भी हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है, इसीलिए वह समाज के सच्चे दृश्य को स्वाभाविक रूप में उपस्थित करने में सफलीभूत हुआ है। डॉ. सरोजनी रोहतगी ने अवध क्षेत्र की लोकगाथाओं की भी सामाजिक स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'अवधी लोकगाथाओं में पारिवारिक और सामाजिक जीवन की झाँकी मिलती है। यथा माता और पुत्र का वात्सल्य प्रेम, पति–पत्नी का स्वाभाविक प्रेम, भाई बहिन का पवित्र स्नेह, पूर्ण पारिवारिक जीवन और मानव का पशु–पक्षी तथा प्रकृति से अटूट प्रेम और सामाजिक प्रेम प्रस्तुत करता है। इन गाथाओं में वर्णित पात्रों के चरित्र स्वाभाविक हैं। उनको गाथाकार अपनी ओर से संवारता, सजाता नहीं है। न उन पात्रों के चरित्रों में किसी प्रकार की अतिशयोक्ति ही पाई जाती है। जो पात्र जैसा है, उसको गाथाकार वैसा ही व्यक्त कर देता है। स्पष्ट है कि इन गाथाओं में मानव जीवन का और संस्कृति का यथातथ्य आंकलन हुआ है। देशकाल और वातावरण के अनुसार उसमें तत्कालीन जीवन के विविध दृश्य उपलब्ध होते हैं। जिसमें अपना एक सौन्दर्य सन्निहित रहता है। इस संबंध में विद्वानों का कथन पूर्ण सत्य है। भारत में गाथा साहित्य में तत्कालीन समाज के अनेक दृश्य दिखाई देते हैं, जो पारिवारिक संबंधों पर ही आधारित हैं।

गाथा साहित्य का धार्मिक मूल्यांकन – मानवीय संस्कृति का मूलाधार तो धार्मिकता ही है। ये अन्योन्याश्रित हैं। संस्कृति को धर्म से अलग नहीं किया जा सकता। हमारा भारत धर्म प्रधान देश है। यहाँ प्राचीनकाल से ही हिन्दू धर्म का आधिपत्य रहा है। वैसे यहाँ विविध धर्मों और संस्कृतियों का समन्वित रूप ही प्राप्त होता है। धर्म हमारे देश का जीवन है। भारतीय संस्कृति और समाज में धर्म का ही स्वर सुनाई देता है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चार पदार्थों में धर्म की ही दृढ–भित्ति पर मानव आश्रित है। भगवान कृष्ण की लीला भूमि ब्रज क्षेत्र एवं भगवान राम का भ्रमण

स्थल बुंदेलखण्ड धर्म की दृष्टि से अग्रणी है। यहाँ की भोली–भाली जनता, धार्मिक भावना से ओत–प्रोत है। इनमें धार्मिक व्रत, उपवास, त्योहार, मूर्ति पूजा, देवार्चन आदि का विस्तृत वर्णन है। गाथाओं में गंगा माता, तुलसी देवी और गौमाता की पूजा का भी वर्णन है। भारत के ग्रामों में धार्मिक भावना का आधिक्य है। भारत वर्ष के प्रत्येक व्रत के साथ कोई न कोई कथा या गाथा जुड़ी रहती है। इस क्षेत्र में कुछ ऐसी भी गाथाएँ प्रचलित हैं, जिन्हें केवल धार्मिक ही कहा जा सकता है। जैसे जगदेव के पंवारे लोक गाथा में केवल आदिशक्ति भवानी की ही भक्ति का वर्णन है। राजा मधुकर शाह और रानी गणेशकुंवरि तो धर्म के साक्षात् स्वरूप ही थे। श्रवण कुमार, सत्यवादी हरिशचंद्र, मोरध्वज, प्रहलाद, ध्रुव और ऊषा–अनिरुद्ध गाथाएँ पूरी तरह से धार्मिक ही हैं। अनेक बौद्ध और जैन गाथाएँ धर्म के प्रसार–प्रचार के लिए रची गईं थीं। डॉ. सरोजनी रोहतगी ने इस संबंध में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि–'अवधी लोककथाओं और लोक गाथाओं में धार्मिक भावना की प्रधानता है, जो विभिन्न रूपों में यहाँ तक कि एक ही विषय पर विविध संदर्भों में लोकगाथाएँ मिलती हैं। लोक जीवन धार्मिक कृत्यों, व्रत, उपवास, अनुष्ठान, पूजा पाठ से परिपूर्ण हैं। रामायण, महाभारत तथा पुराण तो भारतीय धर्म के मूल ग्रंथ हैं। समस्त पौराणिक, रामायणकालीन और महाभारतकालीन गाथाएँ ही धर्म की आधार भित्ति पर खड़ी हैं। गाथा साहित्य की धार्मिकता का मूल्यांकन निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर किया जा सकता है–

लोक मंगल की भावना– हर गाथा आदर्श प्रधान और लोक–मंगल की भावना से आपूरित है। लोक गाथा का कथानक प्रायः सुखांत ही होता है। नायक विविध प्रकार की विपदाओं को सहन करने के पश्चात् विजयी होता है। उसके दुःखद दिवस सुख की स्वर्णिम घड़ियों में परिणित हो जाते हैं। नायक की विजय प्रदर्शित करके लोक गाथाकार–'वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से प्रेरित होकर लोक मंगल की भावना को व्यक्त करता है। यह प्रवृत्ति समस्त आंचलिक साहित्य में दिखाई देती है। गाथाकार प्रायः हर गाथा के अंत में कह उठता है कि 'भैया वे राजा भये उर वे रानीं भईं, जैसे उनके दिन फिरे ऊसई सबके दिन फिरबैं। ऐसी अनहोनी घटना काऊ के संगै नईं घटें।' हमारी भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि हर मानव प्राणियों के प्रति सद्भाव रखता है।

परोपकार प्रियता– परोपकार भावना भी धर्म का एक प्रमुख अंग है। बाबा तुलसी भी इस मत की पुष्टि मानस में कर गये हैं–'परहित सरिस धरम नहिं भाई, पर–पीड़ा सम नहिं अधमाई।' गाथाओं में सत्यवादी हरिशचंद्र की गाथा इसका उत्तम उदाहरण है। उन्होंने अपना सर्वस्व दान करके डोम के यहाँ नौकरी की थी। परोपकार

हेतु दधीचि ऋषि ने इंद्र को अपना अस्थि–पंजर दान कर दिया था। राजा शिवि ने कबूतर की रक्षा करने हेतु अपने शरीर का मांस काट–काटकर तराजू पर चढ़ा दिया था। राजा दिलीप नंदिनी की रक्षा हेतु स्वयं सिंह के सम्मुख उपस्थित हो गये थे। अधिकांश पौराणिक और महाभारतकालीन गाथाएँ परोपकार प्रियता से भरी हुई हैं। राजाओं में राजा विक्रमादित्य और राजा भोज की परोपकार भावना संसार में प्रसिद्ध है।

ईश्वरीय कृपा पर विश्वास – हमारे देश की धर्मभीरू जनता के मन में ईश्वर के प्रति अटूट विश्वास है। इसी भावना से प्रेरित होकर हिन्दू जन समुदाय धार्मिक क्रिया–कलापों में विशेष रूचि रखता है। नारियाँ व्रत, पूजा और उपवास रखती हैं। लोग श्रद्धा और विश्वासपूर्वक धर्म–कथाओं का श्रवण करके मंदिरों में देवाराधना करके मनोवांछित फल प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त करते हैं। यह प्रवृत्ति भाग्यवादिता को प्रश्रय देती है। यही कारण है कि धर्म–ग्रंथ मानव जीवन के प्रमुख अंग बन गये हैं। लोग तीर्थ स्थलों पर जाकर पुण्यार्जन करते हैं। हमारा गाथा साहित्य इस भावना से प्रभावित है। हर वीर पुरुष युद्ध में जाने के पूर्व शक्ति की आराधना करता है। उनकी कृपा से ही उन्हें विजयश्री प्राप्त होती है। कहीं शिव–पार्वती, कहीं आदिशक्ति, कहीं भैरव और कहीं बजरंगबली की कृपा का वर्णन लोक गाथाओं में प्राप्त होता है।

अलौकिकता का आधिक्य– धर्म प्रधान गाथाओं में अलौकिकता का आधिक्य है। अनेक स्थलों पर चमत्कारिक क्रियाओं का प्रदर्शन करके ईश्वर के अलौकिक स्वरूप का परिचय दिया गया है। महाकवि तुलसीदास जी ने लिखा है–'समरथ को नहिं दोष गुसाईं, रवि पावक सुरसरि की नाईं।' ईश्वर कुछ भी करने में समर्थ है। वह क्षण भर में असंभव को संभव कर सकता है। संस्कृत में कहा भी गया है –'मूकं करोति वाचालं, पंगुं लंघ्यते गिरिम्।' भक्त का भगवान की इसी अलौकिकता पर विश्वास है। जगत सृष्टा ईश्वर ही संसार के कष्टों को दूर कर सकता है। लोकगाथाओं में भगवान शंकर और पार्वती की कृपा का अनेक स्थलों पर उल्लेख है। पार्वती जी का स्वभाव बहुत ही कोमल है। वे पर–दुःख देखकर शीघ्र ही द्रवित हो जाती हैं। पार्वती जी के आग्रह पर भगवान शंकर कभी तो अपनी कनिष्ठिका को चीरकर अमृत छिड़ककर मुर्दे को भी जीवित कर देते हैं। कभी–कभी वे किसी भूले भटके नायक को मार्ग प्रदर्शित कर देते हैं। पद्मावत (महाकाव्य) लोक गाथा में राजा रतनसेन को भगवान शंकर ने ही मार्ग दर्शन दिया था।

कुछ गाथाओं में देवीजी की अलौकिकता का वर्णन है। जगदेव के पंवारे में लिखा है कि भक्त जगदेव ने देवी हिंगलाज के चरणों पर अपना शीश काटकर चढ़ा दिया था।

फिर देवी जी की ही कृपा से उसके धड़ में से दूसरा सिर उत्पन्न हो गया था। राजा नल पर भी देवी जी की पूर्ण कृपा थी। ओरछा नरेश महाराज मधुकरशाह और रानी कुंवरि गणेश पर भक्ति भावना की अलौकिकता का पूर्ण प्रभाव था। आल्हा खण्ड में स्पष्ट उल्लेख है कि आल्हा–ऊदल मनियादेव और हिंगलाज की पूजा–अर्चना करने के बाद ही युद्ध के लिए प्रस्थान करते थे।

बुन्देली गाथाओं के प्रमुख रूपों का सामान्य परिचय

आल्हा, पंवारे आदि बुंदेली लोकगाथाओं के ही रूप हैं। कुछ गाथाएँ साके और चरित्र नाम से भी प्राप्त होती हैं। उदाहरणस्वरूप हरदौल चरित्र, श्रवणकुमार चरित्र, ध्रुव चरित्र और सती सुलोचना चरित्र आदि लोक गाथाओं के ही रूप हैं। आन–बान और मर्यादा पर मर मिटने वाली नारियों से सम्बन्धित चंद्रावली और मथुरावली नाम की लोक गाथाएँ भी बुंदेलखण्ड में प्रचलित हैं। इनके भेद तो बहुत ही सूक्ष्म हैं, जिसके कारण विद्वान कभी–कभी भ्रमित भी हो जाते हैं। गाथाओं के भेदों का सामान्य परिचय निम्नानुसार है–

रासो– हिन्दी साहित्य के प्रामाणिक इतिहास के लेखक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रासो की परिभाषा देते हुए लिखा है– 'जिसमें जीवन के रहस्यों का उद्‌घाटन किया जाता है, उसे रासो कहते हैं।' कुछ विद्वानों ने 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति 'राजसूय' से की है। वीसलदेव रासो के प्रणेता 'नरपति नाल्ह' ने रासो को रसायन कहकर सम्बोधित किया है। 'नाल्ह रसायन रस भर गाई', किन्तु यह बात पूर्ण सत्य है कि रासो ग्रंथ ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी के बीच लिखे गये थे। इनकी रचना हिन्दी साहित्य के आदिकाल में संवत् 1050 से 1375 वि. के बीच हुई थी। इनकी रचना के कारण आदिकाल का दूसरा नाम 'वीरगाथा काल' पड़ गया था। इस युग में राजाश्रित चारण और भाट कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा करते हुए 'रासो' ग्रंथों की रचना की थी। इन गाथाओं में नरपति नाल्ह कृत बीसलदेव रासो, दलपति विजय कृत खुमान रासो, नल्लसिंह भट्‌ट कृत विजयपाल रासो, जगनिक कृत परमाल रासो, चंद्रबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो आदि प्रमुख हैं, जो गाथाओं के ही प्रमुख रूप हैं।

राछरे– राछरे भी बुंदेली लोक गाथाओं के अन्तर्गत रखे जाते हैं और ये ढोलक के साथ वर्षा ऋतु में गाये जाते हैं। इनमें युद्ध के भयानक दृश्य ही प्रस्तुत किये जाते हैं। ये रासो का ही एक प्रकार हैं। कविवर मदनेश कृत 'लक्ष्मीबाई राछरौ' एक

महत्त्वपूर्ण रचना है। रासो ग्रंथों की भाँति राछरे भी एक प्रकार की वीर गाथाएँ हैं, जिनमें वीरों के पराक्रम और यश का गायन किया जाता है। बुंदेलखण्ड में राछरे गाने का बहुत प्रचलन है। जैसे अमानसिंह कौ राछरौ, वीरसिंह कौ राछरौ और लक्ष्मीबाई कौ राछरौ यहाँ के प्रसिद्ध राछरे हैं।

आल्हा– कुछ विद्वानों की ऐसी मान्यता है कि परमाल रासो और आल्हा में समानता है, किन्तु आल्हा की शैली विशिष्ट है। वह बुंदेलखण्ड की अपनी निराली शैली है, जो वीर छंद में लिखा गया है, जबकि अधिकांश रासो ग्रंथ डिंगल (राजस्थानी) में लिखे गये हैं। आल्हा में महोबा नरेश परमाल के सेनापति आल्हा–ऊदल के पराक्रम का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है। उन वीरों ने सुंदर राजकुमारियों को प्राप्त करने और ईर्ष्या–द्वेष से प्रभावित होकर 52 लड़ाईयाँ लड़ी थीं। हर लड़ाई में आल्हा–ऊदल की विजय प्रदर्शित की गईं हैं। कुछ विद्वान तो आल्हाखण्ड को बुंदेली का प्रथम महाकाव्य मानते हैं। इस ग्रंथ की रचना महोबा नरेश परमाल के दरबारी कवि जगनिक ने की थी। वैसे आल्हा मूलतः बुन्देलखण्ड की कृति है, किन्तु अपनी लोकप्रियता के कारण आल्हा, ब्रज, राजस्थान और बिहार में भी गाया जाता है। ग्रंथ के पात्रों में आल्हा सर्वोपरि है। इसका गायन प्रायः ढोलक की कड़कती हुई ध्वनि पर पावस ऋतु में किया जाता है। वीर रस की प्रधानता वर्णन की रोचकता के कारण लोग इसे बड़े चाव से सुनते हैं। आल्हा की ही भाँति इस क्षेत्र में ढोला, सारंगा और पण्डवा गाया जाता है। ढोला और पण्डवा महाभारतकालीन और आल्हा चंदेलकालीन लोक गाथाएँ हैं।

पंवारे–पंवारे में परमार वंशीय क्षत्रियों की शौर्य गाथाएँ हैं। ये वीर और शक्तिशाली राजागण मालव प्रदेश में राज करते थे। जिन्होंने अपनी तलवार के बल पर दुश्मनों के छक्के छुड़ा दिये थे। गुजरात और महाराष्ट्र में पंवारे को पंबाड़ा कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है– युद्ध, संघर्ष, झगड़ा या झंझट। बुंदेलखण्ड में जगदेव का पंवारौ बहुत प्रसिद्ध है, जबकि राजा जगदेव परमार धार (मालवा) नगरी के शासक थे। न जाने कैसे यह गाथा बुंदेलखण्ड में इतनी अधिक लोकप्रिय हो गई। नवरात्रि के अवसर पर इस गाथा का सम्मानपूर्वक गायन किया जाता है। हर अचरी के अंत में यह दुहराया जाता है– 'राजा जगत से माँ भले हो माँय।' इनमें किसी वीर के पराक्रम का वर्णन होता है। इनमें वर्णित पात्र प्रायः ऐतिहासिक होते हैं। घटनाएँ ऐतिहासिक और काल्पनिक होती हैं। वैसे इनकी संख्या अधिक है। ये प्रायः देवीजी के भगतों के साथ गाये जाते हैं। ब्रज क्षेत्र में वीरों की यश गाथाओं के रूप में अमरसिंह, जसवंत, जसमल, फत्तेसिंह और होमपाल नाम के पंवारे प्राप्त होते हैं। बुन्देलखण्ड में केवल जगदेव कौ

पंवारों ही लोकप्रिय और प्रसिद्ध है। ये सबके सब वीररस के उत्तम उदाहरण हैं। मराठी में यह शब्द वीर गाथा के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

साके– लोक गाथा का एक प्रकार 'साके' भी है। साके का अर्थ प्रशंसा, यशगान और मंगलगान भी है। वर–कन्या के पाणिग्रहण संस्कार के अवसर पर वेद–पाठी पंडित साकोच्चार करने लगते हैं, जिनमें वर–कन्या के प्रति मंगल–भावना निहित होती है। उसी प्रकार राज दरबारों में चारण अपने आश्रय दाताओं का यशोगान करके उनका उत्साहवर्धन किया करते थे। आदिकाल में राजाओं के साके गाने की प्रथा थी, जिनमें वीर राजाओं की वीरता का वर्णन होता है। जैसे बुंदेलखण्ड में अमरसिंह, धनसिंह और राजा हिन्दूपति के साके गाये जाते हैं। ये लोक वाद्य ढोलक, नगड़िया के साथ उच्च स्वर में गाये जाते हैं। धनसिंह का साका जोगी और भाट इकतारे की ध्वनि पर गाते हुए घूम–घूमकर भिक्षा माँगते हैं। कहीं–कहीं हरबोले करताल की ध्वनि में गाते हुए दिखाई देते हैं। कभी–कभी गायक विविध कलाओं को प्रदर्शित करते हुए वेश बदल–बदलकर नर्तन करने लगते हैं। ये लोकध्वनि बड़ी उत्तेजक होती हैं, जिसे सुनकर श्रोतागण रोमांचित हो जाते हैं। इनके नामों में थोड़ी–बहुत भिन्नता हो सकती है, किन्तु है सब लोक गाथाओं के ही रूप। ये इतिहास और कल्पना के मिश्रित रूप हैं। पात्रों और स्थानों के नाम ऐतिहासिक हैं, किन्तु घटनाएँ अतिशयोक्ति पूर्ण और कपोल कल्पित हुआ करती हैं।

चरित्र– कुछ लोक गाथाएँ 'चरित्र' के नाम से प्रचलित हैं। हालाँकि 'चरित्र' लेखन की परंपरा बहुत ही प्राचीन है। अपभ्रंश के जैन साहित्य में चरित्र लेखन का प्रारंभिक रूप दिखाई देता है, जो 'चरिउ' के नाम से प्रसिद्ध रहा है। जैसे णायकुमार चरिउ, पउमचरिउ और जसहर चरिउ आदि। जैन साहित्य की 'चरित्र' लेखन की परंपरा बुंदेली गाथा साहित्य तक संचालित रही है। जैसे हरदौल चरित्र, सती सुलोचना चरित्र और अनुसुइया चरित्र आदि। ये मूलतः चरित्र प्रधान गाथाएँ हैं। इनमें आदर्श, नैतिकता और उत्तम चरित्र की झाँकी दिखाई देती है। ये सब समाज के लिए मार्गदर्शक और प्रेरणास्पद गाथाएँ हैं।

अन्य गाथाएँ– रासो, राछरे, रायछे, आल्हा, पंवारे, साके और चरित्र के अतिरिक्त अन्य धार्मिक और पौराणिक गाथाएँ भी प्रचलित हैं। ये सब गाथाएँ आदर्श और धर्म की आधार–भित्ति पर खड़ी हुई हैं। बुन्देलखण्ड की गाथाओं में भक्ति–भावना और आत्मसमर्पण की वृत्ति के दर्शन होते हैं, जिनमें देवी जी का सुरहिन गीत, मयकासुर दानव गीत, महाराज मधुकरशाह और रानी गणेश कुंवरि की भक्ति भावना और श्रवण

कुमार नाम की गाथाएँ बहुत ही लोकप्रिय हैं। ब्रज में जगमोहल कौ लुगरा, सीता जी कौ व्याहुलो आदि धर्म प्रधान गाथाएँ हैं। आदर्श प्रधान लोक गाथाओं में चंद्रावली और मथुरावली प्रमुख हैं। इनमें से लाला हरदौल की गाथा तो इतनी मार्मिक और कारुणिक है कि श्रोताओं की आँखों से अपने आप अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। सच पूछा जाये तो हमारा बुंदेलखण्ड गाथा साहित्य का अगाध भण्डार है, किन्तु गहरे गोताखोर को ही रत्नों की उपलब्धि हो सकती है। किनारे पर बैठे हुए लोग तो केवल लहरों को ही गिनते रहते हैं।

रासो की परंपरा और प्रमुख रासो ग्रंथ– 'रासो' लोक गाथाओं का प्रारंभिक स्वरूप है। आदिकाल में वीरों की लोक प्रचलित गाथाओं के आधार पर रासो ग्रंथों की रचना की गई थी। इसी कारण से आदिकाल का दूसरा नाम वीरगाथा काल रखा गया था। हिन्दी साहित्य के प्रामाणिक लेखक और सुप्रसिद्ध समीक्षक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रासो की परिभाषा देते हुए लिखा है –'जिसमें जीवन के रहस्यों का उद्‌घाटन किया जाता है, उसे रासो कहा जाता है। 'कुछ विद्वानों ने रासो को 'राजसूय' का विकसित रूप माना है। 'राजसूय' से राजसे, राजसू से मुख–सुख के कारण रासू बन जाता है और धीरे–धीरे रासू से 'रासो' बन गया है। महाभारत काल में राजसूय यज्ञ करने के पूर्व अपने आस–पास के राजाओं से युद्ध करके उन्हें जीतकर उन पर अधिकार किया जाता था, तब सारे अधीनस्थ राजा राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होते थे। अतः राजसूय शब्द युद्ध का प्रतीक था। राजसूय से रासो की व्युत्पत्ति मानना बहुत कुछ प्रामाणिक सा प्रतीत होता है। 'बीसलदेव' रासो के प्रारंभ में ही उसे 'रसायन' कहकर संबोधित किया है। 'नाल्ह–रसायन रसभर गाई।' कुछ भी हो, किन्तु यह पूर्ण सत्य है कि तत्कालीन लोक प्रचलित गाथाओं के आधार पर चारण और भाट कवियों ने रासो ग्रथों की रचना की थी। दसवीं शताब्दी से रासो ग्रंथ लेखन की परम्परा संचालित हुई थी। सर्वप्रथम रासो ग्रंथ 'डिंगल' (राजस्थानी) में लिखे गये और कुछ समय बाद 'पिंगल' (ब्रज, बुंदेली) में रासो ग्रंथ लेखन का शुभारंभ हुआ। उन दिनों सर्वत्र शौर्य और वीरता का वातावरण था। राज्याश्रित चारण और भाट कवि अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में अतिशयोक्ति पूर्ण रासो ग्रंथों की रचना कर रहे थे। आदिकाल में सर्वाधिक वीर रस पूर्ण रासो ग्रंथों की रचना की गई थी, जिनका संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है–

खुमान रासो– इस ग्रंथ की रचना संवत् 965 से 990 के मध्य हुई थी। दलपति विजय नाम के चारण कवि ने इस ग्रंथ की रचना की थी। कर्नल टाड ने लिखा था कि खुमान चित्तौड़ के वीर राजा थे। उन्होंने अपनी तलवार के बल पर शत्रुओं से 24 युद्ध किये थे। उसने बगदाद के खलीफा अलमान से भयंकर संग्राम करते हुए उसे

पराजित करते हुए पीछे खदेड़ दिया था। राजपूताने के इतिहास में यह स्पष्ट उल्लेख है कि मेवाड़ में खुमान नाम के तीन राजा हुए थे। काल क्रमानुसार यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रासो में वर्णित खुमान दूसरे खुमान होंगे। ग्रंथ में राजा के पौरुष और पराक्रम का विस्तृत वर्णन है। हालाँकि ग्रंथ में वर्णित घटनाएँ और तिथियाँ इतिहास से मेल नहीं खातीं। अधिकांश घटनाएँ काल्पनिक हैं केवल कुछ गिने–चुने नाम ही ऐतिहासिक हैं। यह कारण है कि इस ग्रंथ को अप्रामाणिक माना गया है।

वीसलदेव रासो– संवत् 1212 में 'नरपति नाल्ह' नाम के चारण कवि ने इस रासो ग्रंथ की रचना की थी। 'नरपति नाल्ह' चित्तौड़ नरेश वीसलदेव के दरबारी कवि थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में इस ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ का रचना काल इस पद्यांश से स्पष्ट होता है–

बारह सौ बहोत्तरा मझारि, जेठ बदी नवमी बुधवारि।
नाल्ह रसायन आरंभई, सारदा तूठी ब्रह्म कुमारि।

इस ग्रंथ में चार खण्ड हैं, जो 2000 चरणों में पूरा हुआ है। प्रथम खण्ड में बीसलदेव के विवाह का वर्णन है। उनका विवाह मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती के साथ हुआ था। दूसरे खण्ड में राजा बीसलदेव अपनी रानी से रूठकर उड़ीसा चला जाता है। तृतीय खण्ड में रानी के विरह का वर्णन है। रानी के विरह वेदना का समाचार पाकर राजा अपने राजभवन में लौट आता है। चतुर्थ खण्ड में राजा भोज अपनी पुत्री को मालवा ले आते हैं। फिर बीसलदेव अपनी रानी राजमती को मालवा से चित्तौड़ ले आते हैं। यह ग्रंथ 'विप्रलंभ' श्रृँगार का प्रमुख ग्रंथ है। कल्पना बाहुल्य के कारण ग्रंथ में वर्णित घटनाएँ और तिथियाँ अनैतिहासिक हैं। राजा भोज और बीसलदेव (विग्रह राज) को इतिहास में समकालीन सिद्ध नहीं किया गया है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार पं. गौरीशंकर हीराचंद्र ओझा इस ग्रंथ को राजा हम्मीर के समय का मानते हैं।

पृथ्वीराज रासो– रासो ग्रंथों में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। यह 2500 पृष्ठों का एक विशालतम ग्रंथ है, जिसकी रचना 69 समयों में की गई थी। पृथ्वीराज रासो नाम से ही यह स्पष्ट है कि इसमें दिल्ली के तत्कालीन शासक पृथ्वीराज चौहान की वीरता का वर्णन है। ग्रंथ के रचयिता चंद्रबरदाई पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि, मार्ग–दर्शक, प्रशंसक और मित्र थे। उन्होंने संवत् 1225 से 1245 वि. के बीच इस ग्रंथ की रचना की थी। इसे हिन्दी का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। जबकि यह ग्रंथ डिंगल (राजस्थानी) में लिखा गया था। उन्होंने अपनी तलवार के बल पर मुस्लिम–दस्युओं के दाँत खट्टे कर दिए थे। शाहबुद्दीन गौरी ने उन पर अनेक बार चढ़ाईयाँ की और

हर बार वह उनसे पराजित होता रहा। अंतिम बार पृथ्वीराज चौहान की लापरवाही और घरेलू फूट के कारण उनकी पराजय हो गई और उन्हें बंदी बना लिया गया। गौरी उन्हें पकड़कर गजनी ले गया। गौरी बहुत ही क्रूर और दुष्ट स्वभाव का व्यक्ति था। उसने पृथ्वीराज की आँखें खिंचवाकर बंदी खाने में डाल दिया था। इसी बीच उनके मित्र राजकवि अपने मित्र से मिलने के लिए 'गजनी' पहुँचे और अपने मित्र की दुर्दशा को देखकर बहुत दुखी हुए। उन्होंने शब्द भेदि बाण के द्वारा गौरी की हत्या करने की योजना बनाई। यह मार्मिक और कारुणिक प्रसंग है। इस ग्रंथ पर आधारित संस्कृत और हिन्दी में अनेक ग्रंथों की रचना की गई थी। डॉ. रामकुमार वर्मा की लोकप्रिय एकांकी 'पृथ्वीराज की आँखें' हिन्दी साहित्य के पाठकों में बहुचर्चित रहा है। अंत में उन दोनों की सुनियोजित योजना से गौरी की हत्या हो गई और अंतिम समय चौहान ने अपने अपमान का बदला चुका लिया था। जिस सांकेतिक दोहे से गौरी की हत्या हुई थी, वह दोहा बुंदेली साहित्य में बहुचर्चित एवं प्रसिद्ध है–

चार बाँस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमान।
ता ऊपर सुलतान है, मत चूकहु चौहान।।

सुलतान की हत्या करने के पश्चात् पृथ्वीराज चौहान और चंद्रबरदाई ने आपस में एक दूसरे को कटार मारकर प्राणार्पण कर लिया था। यह काल्पनिक नहीं इतिहास प्रसिद्ध घटना है। यही कारण है कि रासो ग्रंथ चन्द्रबरदाई अपने हाथों से पूरा नहीं कर सके। अपूर्ण ग्रंथ को उनके पुत्र 'जल्हण' ने पूरा किया था, जिसकी पुष्टि इन पंक्तियों से उसी ग्रंथ में की गई है– 'पुस्तक जल्हण हत्थ है, चलि गज्जन पंकज्ज।'

पाश्चात्य विद्वान इतिहासज्ञ कर्नल टाड ने राजस्थानी के इतिहास में पृथ्वीराज चौहान के शौर्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि– संयोगिता स्वयंवर के कारण पृथ्वीराज की कन्नौज के राजा जयचंद से शत्रुता हो गई थी। संयोगिता को प्राप्तकर वह भोग–विलास में फँस गया और लगातार युद्ध करने से वह थक गया था। अंत में मुहम्मद गौरी से पराजित होकर उसकी मृत्यु हो गई थी। हालाँकि भारतीय इतिहास में पृथ्वीराज और जयचंद की शत्रुता का उल्लेख है, किन्तु संयोगिता स्वयंवर की पुष्टि नहीं की गई है, किन्तु कर्नल टाड ने राजपूताने के इतिहास में इस घटना पर विशेष बल दिया है। पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कश्मीरी पंडित 'जयानक' ने संस्कृत में 'पृथ्वीराज विजय' नाम का ग्रंथ लिखा था। उसमें वर्णित घटनाएँ और तिथियाँ इतिहास से मिलतीं–जुलतीं हैं। उसमें उनकी माता का नाम 'कर्पूर देवी' लिखा है, जिसकी पुष्टि विविध शिलालेखों से होती है, जबकि रासो में उनकी माता का नाम 'कमला देवी' लिखा

है। पृथ्वीराज रासो अर्द्ध–प्रामाणिक ग्रंथ है, फिर भी इस ग्रंथ को हिन्दी के प्रथम–महाकाव्य के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है।

हम्मीर रासो– इस रासो ग्रंथ में रणथंभोर के सुप्रसिद्ध शासक 'हम्मीर सिंह' के शौर्य और पराक्रम का वर्णन है। वे एक साहसी, वीर और शक्तिशाली योद्धा थे। वे अपनी हिन्दू संस्कृति, धर्म और आन–बान के लिए मुस्लिमों से युद्ध करते रहे और विक्रम संवत् 1357 में बादशाह अलाउद्दीन के आक्रमण में उनकी मृत्यु हो गई थी। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इस रासो ग्रंथ की रचना शारङ्गधर ने की थी। हालाँकि वे हम्मीर देव के समकालीन तो नहीं थे, हो सकता है कि उन्होंने अपने पूज्य पिता के मुख से हम्मीर सिंह की शौर्य–गाथा सुनकर इस ग्रंथ की रचना की हो अथवा इस ग्रंथ की रचना किसी अन्य कवि ने की हो, किन्तु यह ग्रंथ आज भी उपलब्ध है। इस ग्रंथ में राजा हम्मीर की वीरता का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है। रासो की भाषा डिंगल (राजस्थानी) है। राजा हम्मीर के युद्ध प्रयाण का एक दृश्य देखने योग्य है –

दोल्ला मारिय ढिल्लि मंह, मुच्दिउ मेंच्छ सरीर।
पुर जज्जल्ला मंतिवर, चलिऊ वीर हम्मीर।।
चलिअवीर हम्मीर, पाअमर मेहणि कंपइ।
दिगनग गाह अंधार, धूलि सुरसद आच्छाइहिं।
दरमरि दमसि विपक्ख, मारू ढिल्ली मह दोल्ला।।

यह कुण्डलिया छंद सा दिखाई देता है, किन्तु भाषा राजस्थानी ही है। उपरिलिखित छंद का भाव है कि हमीर के क्रोध से पृथ्वी डोल जाती है और पहाड़ों की चोटियाँ हिल जाती हैं। म्लेच्छ हा–हा करते हुए भाग खड़े होते हैं। एक छंद में उनके क्रोध का वर्णन और देखिए–

पअभर दरू–मरू धरणि तरणि रह धुल्लिय झंपिअ।
कमठ–पिट्ठ टरपरिअ, मेरू मंदिर कंपिअ।
को है चलिंअ हम्मीर, वीर गअ जुह संजुत्ते।
किअउ कट्ठ हा कंद, मुच्छ मेच्छिलइ के पुत्ते।।'

यह ग्रंथ केवल खंडित प्रति में ही प्राप्त होता है, किन्तु ग्रंथ वीर गाथाकालीन ही है।

परमाल रासो– यह ग्रंथ 'आल्हा' के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। संपूर्ण ग्रंथ आल्हा–ऊदल की वीरता पर केन्द्रित है। आल्हा महान योद्धा ऊदल के ज्येष्ठ भ्राता थे। इसलिए यह ग्रंथ आल्हा के नाम से प्रसिद्ध हो गया। ये इतना अधिक लोकप्रिय और

प्रसिद्ध हो गया कि पाठक और श्रोतागण परमाल रासो का नाम भूल ही गये हैं। इस ग्रंथ की रचना संवत् 1230 वि. में चारण कवि 'जगनिक' ने की थी। जगनिक कालिंजर के राजा परमाल के दरबारी कवि थे। इसी कारण से राजा परमाल की प्रशस्ति में रचे गए ग्रंथ का नाम 'परमाल रासो' पड़ा है। इसकी लोक ध्वनि और घटनाएँ इतनी अधिक रोचक हैं कि सारे उत्तर भारत के हर जनपद में यह बड़े चाव से गाया जाता है। कथानक में कोई विशेष अंतर नहीं हैं। केवल लोक ध्वनियों और भाषा का ही अंतर है। मूल कथानक में विशेष अंतर नहीं है, किन्तु रासो का मूल जन्म स्थान बुन्देलखण्ड ही है। वीरछंद अपने नामानुकूल ओजस्वी और प्रभावकारी होता है। जिसकी लोक ध्वनि और ढोलक के कड़क स्वरों को सुनकर श्रोताओं के अंग–अंग में स्फुरण होने लगता है। प्रायः पावस ऋतु में इस गाथा का गायन किया जाता है। कैसी चुनौती सी दी जा रही है इस ग्रंथ की पंक्तियों में–

बारह बरस लों कूकर जीबैं, उर तेरह लों जियें सियार।
बरस अठारह छत्री जीबैं, आगे जीवन को धिक्कार।

यदि इस ग्रंथ को बुंदेली का प्रथम गाथा काव्य कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसमें आल्हा–ऊदल के पौरुष से लड़ी गईं 52 भयंकर लड़ाइयों का वर्णन है। चाहे इस ग्रंथ का ऐतिहासिक और साहित्यिक मूल्य भले न हो, किन्तु यह उत्तर भारत की ग्रामीण जनता के कंठ का हार बना हुआ है। आज भी यह गाँव–गाँव में प्रमुख मनोरंजन का साधन बना हुआ है। एक हजार वर्ष के बाद भी लोग इसे उसी चाव से गाते जा रहे हैं। राजाश्रित चारण भाट कवियों का इस क्षेत्र में विशेष योगदान रहा है। उन्हें राजकीय कोषालयों से वृत्ति प्राप्त होती थी। इस कारण से वे निश्चिंत होकर प्रशस्ति ग्रंथों की रचना किया करते थे। ऐसे प्रशस्ति ग्रंथ लेखन की परंपरा रीतिकाल तक संचालित रही। इस ग्रंथ के शौर्य पर आधारित कुछ अंश देखने योग्य हैं। दिल्ली पति पृथ्वीराज चौहान की सेना प्रायः महोबा नरेश परमाल पर आक्रमण किया करती थी। जरा देखिये युद्ध का एक रोमांचक दृश्य–

इतनी सुनिकैं राय लंगरी, नैना अगन लाल हो जाय।
ऐसों देखो न काहू को, डोला लै दिल्ली को जाय।।
बातन–बातन बात बढ़ गई, उर बातन में बढ़ गई रार।
दोनों दल में हल्ला हो गओ, छत्रिन खैंच लईं तलवार।।
पैदल के संग पैदल भिड़ गये, औ असवारन संग असवार।
चली सिरोही तीन पहर लों, औ बह चली रकत की धार।।

अपन परायो ना पैचानों, सबकें मारि–मारि रट लाग।
सेना में फिर भगदड़ मच गई, गेरऊँ मच गई भागम भाग।।
आठ हजार घोड़ सब जूझे, दिल्ली वारन दियो गिराय।
महुबे वारन की सेना में, विजय पताका रई फहराय।।
तेगा चटके बर्दवान के, कट–कट गिरें सुघरूवा ज्वान।
कज्जल–दल सी सेना उमड़ें, जोधा काट करें खरयान।।
धरती धमकें दल–बादर सें, धूरा आसमान गहराय।
अकले उदला की धमकन में, सबरौ दल रैंन–बैंन हो जाय।।

आल्हा का विवाह होने के बाद रानी सुमना की पालकी राज भवन में पहुँची तो सारे राजभवन में आनंदोत्सव होने लगा।

चली पालकी रानी सुमना की, महुबे अंदर पहुँची जाय।
परछिन करकैं फिर बहुअर की, मोहन महलन गईं लिवाय।
मौं दिखलाई में हो पंचो, हार नौलखा दओ पहराय।
मुँह दिखलाई सबरे देबैं, सुनमा मन में रही सिहाय।
मोतिन चौक पुराये रानी, किले पै नौबति दई घहराय।
श्री गणेश की पूजा करकैं, आल्हा खौं दओ पहराय।
बाँधौ मोर बनायौ बरना, नारी मंगल रहीं हैं गाय।
राजा परमालें गये कचहरी, दए खजाने मुँह खुलवाय।

उन दिनों कोई भी विवाह युद्ध के बिना पूरा नहीं होता था। नैनागढ़ में आल्हा की बारात पहुँचते ही युद्ध प्रारंभ हो गया। ज्यों ही नाई संदेश लेकर पहुँचा तो राजा नैपाली युद्ध करने के लिए तत्पर हो गया–

ताही समया नैपाली ने, क्षत्रिन को लीनों बुलवाय।
इतनी बात सुनी रूपना की, राजा रोसवंत होय जाय।
बोला अब बैठे देखो, जाकैं लेव मूँढ़ कटवाय।
जीवित नाई जान न पाबैं, जाकौ नेंग देऊ निपटाय।
इतनी बात सुनी जब क्षत्रिन, खैंच लई सरसर तरवार।
चली सिरोही बँगला भीतर, होन लगी फिर मारा–मार।
पूरन ठाकुर एक पटना कौ, बानें मारौ गुर्ज सम्भार।
बार बचा गऔ रूपना बारी, अपनी साँग दई है मार।

भोजन करते समय भी युद्ध प्रारंभ हो गया –

पैलों ग्रास लिया आल्हा ने, जोगा दई तलवार चलाय।
बाँह पकड़ लीन्हीं ऊदल ने, उर जोगा खौं दओ गिराय।।
दूसर ग्रास लियो आल्हा ने, भोगा लई खींच तलवार।
हाथ पकड़ के तब देवा ने, भोगा दओ धरनि पै डार।।
तब तक विजया हाथ गहो है, लीनी अपनी खैंच तलवार।
बाँह पकर कैं जा विजया की, तब जागन नें दिया पछार।।
हुकम दै दओ सब क्षत्रिन कौं, क्षत्री सुनलो कान लगाय।
जब ज्वोंनार जियेंमन आबैं, सबकी कटा लेउ करवाय।।

नैपाली राजा की पुत्री राजकुमारी सुनमा विवाह के पूर्व देवी जी के मंदिर में जाकर पूजा करती हैं और निर्विघ्न विवाह संपन्न होने की कामना करती है–

सपनौ दयो रात देवी नें, मठ पर ढोल देव पहुँचाय।
जो न भेजो अमर ढोल को, सारौ राज नष्ट होय जाय।।
ऐसौ सपनों सुनिकैं भैया, राजा गयों सनाकौ खाय।
कहन लगो बेटी सुनमा सें, उनखौं अपनें हियें लगाय।।
अमर ढोल लै जाव लाड़ली, मठ के भीतर पहुँची जाय।
पूजा कीनी जग–जननी की, बेटी बोली वचन सुनाय।
जग–जननी मैं सुता तुमारी, सेवा करों चरण सिर नाय।
देव वरदान हमें हे माता, मोय वर मिलें बनाफर राय।।

महोबे के सारे बनाफर महान वीर थे। उनके रण कौशल के समक्ष बड़े से बड़े शत्रु योद्धा तक नहीं टिक सकते थे। उनके नौकर–चाकर और कर्ता कामदार तक बहुत शक्तिशाली थे। जरा देखिये उनके रूपना बारी के शौर्य और साहस को–

रंग–बिरंगौ हो गओ रूपना, दोनों हाथ करैं तलवार।
कछु मारे कछु भाग खड़े भये, क्षत्री डार–डार हथियार।।
चल दओ रूपना नैनागढ़ सें, अब तक सुनियों कान लगाय।
देख माजरा नैपाली नें, सब क्षत्रिन सें कहा सुनाय।
जिनके घर में ऐसो बारी, तिन जोधन सें कहा बताय।
तनक सो छोरा बारी वारौ, गयो यहाँ पर गजब दिखाय।

विवाह के पूर्व नैपाली की पुत्री आल्हा के सौन्दर्य और पौरुष का समाचार सुनकर उनके प्रेम–प्रसंग में अधीर हो जाती है और पाती लिखने के लिए तत्पर हो जाती है–

ऐसी सोसत सुनमा बेटी, कर में कागद लियो उठाय।
पाती लिख दई सुनमा बेटी, सुनियो पंचो ध्यान लगाय।।
जैसी रुकमिनि की सुधि लीनी, सुनिये किसन चंद भगवान।
तैसई लाज बचइयों मोरी, प्यारे पती यहाँ पै आन।।
पाती अस लिख दीनी भइया, उर सुअना सें बोली नार।
सुअना एक सहारौ तोरौ, मोरी नईया कर दे पार।।
उड़ जा सुअना गढ़ महुबे कों, जाँ बे बसें बनाफर राय।
मोरी पाती लै जाकैं तूँ, नर ऊदल खौं दइयों जाय।।

आल्हा– ऊदल के मन में अपने सैनिकों के प्रति बहुत प्रेम रहता था। वे उन्हें अपने भाई से भी बढ़कर मानते थेः–

नौकर–चाकर तुम नईं मोरे, भइया लागों बड़े हमार।
आज लाज है हाथ तुमारे, लऊँ बलइयाँ भ्रात तुमार।।
जो तुम जोधा मनें करों तो, वीरन कौन करें जे काम।
लोक हँसाई हुयै जगत में, हम सब हुइयैं फिर बदनाम।
इतनी बात सुनीं ऊदल की, गयो रोस रूपना को आय।
तमक कैं बोलो रूपना बारी, भइया सुनों उदै चंदराय।

राजा नैपाली ने राजाओं को संदेश देते हुए कहा –

नाई भाट बुलाये भूपति, ऐसो कहन लगो समझाय।
वर के लायक बेटी हो गई, भइया सुनलो कान लगाय।।
कठिन लड़ाई नैंनागढ़ की, सब भूपों को देव बताय।
अमर ढोल जिनके घर कहिये, दुश्मन नाम सुनत दहलाय।।
जोगा–भोगा जोधा बाँके, तिनकी मार सही ना जाय।।
जो नैनागढ़ को आकैं जीतें, ताको दऊँ सुता हरसाय।
टीका लैकैं तीन लाख कौ, नैंगी चल रये खुशी मनाय।
सुरति लगाय दई देहली की, जाँ पै बसैं पिथौरा राय।।
पहुँचे नैंगी जब देहली में, पृथ्वी राज के शुभ दरबार।
पढ़ी पत्रिका नैपाली की, साफ–साफ कर दई इंकार।।

चल दये नेंगी फिर देहली से, गढ़ कनबज में पहुँचे जाय।
आठ पेंड़ सैं मुजरा करकैं, जयचंद को दई पाती जाय।।
पाती पढ़कैं अजय चंद नें, टीका दिया तुरत फिरवाय।
नैनागढ़ के नैंगी लौटे, पहुँचे नैपाली ढिंग जाय।।

आल्हा ने यह चुनौती स्वीकार कर ली। नैपाली की सेना ने घमासान युद्ध किया, किन्तु वह सेना आल्हा–ऊदल के सामने कैसे टिक सकती थी। ऊदल ने सारी की सारी सेना को हरा दिया और अमर ढोल छीन लिया। यह समाचार पाते ही राजा नैपाली घबड़ा गया। गाथाकार ने इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है–

इतमें सुनमा महलन आई, बोली नैपाली सें जाय।
कहा कहूँ सुनिये दादा जी, ऊदल लै गयौ ढोल छिनाय।।
इतनी बात सुनत नैपाली, इक दम गयो सनाकौ खाय।
बोलों बेटी तूने मेरा, जीवन दीना आज डुबाय।।
पायो ढोल इन्द्र से मैंने, अब सुरपति सें कहूँ मैं जाय।
इतनी सुन नैपाली चल दओ, पहुँचो इन्द्र पुरी में जाय।।
जाय वंदना की इंदुल की, बोला इंदल बचन सुनाय।
कारन कवन यहाँ आये हों, नैपाली वा कथा सुनाय।।
तब नैपाली कहन लगो है, सुनियो स्वामी कान लगाय।
अमर ढोल को लै गये ऊदल, प्रभु सुनमा के हाथ छिनाय।।
तब ही इंदुल कहनें लागो, उर राजा सें कहीं सुनाय।
धीरज राखों अपने मन में, हाल ढोल मैं दऊँ मंगाय।

आल्हा के विवाह के समय नैनागढ़ में घोर संग्राम हुआ। नैपाली राजा के पुत्र जोगा से ऊदल ने कह दिया कि पहले तू अपने तीन वार कर ले और इसके बाद मेरी बारी है। तीन वार पूरे होने के बाद फिर ऊदल ने कहा–

वार तीन कर चुका सूरमा, अब ले मेरा वार बचाय।
तेगा खींच लयो ऊदल ने, फिर घुरवा के लागो जाय।।
मर गओं घुरवा उत जोगा कौ, दूजा अश्व चढ़ो है आय।
बंद लड़ाई दोनों दल भई, संध्या समय गयो है आय।।
चर चर चारा पंछी लौटे, अपनें घोंसलु पहुँचे जाय।
चमके तारे आसमान में, सज्जन सुन लो कान लगाय।।

जोगा पौंचो नैनागढ़ में, सभी पिता से कहा हवाल।
रात वितीत भई बातन में, भैया भयो सुबह तत्काल।।
हुकम सबेरे लै जोगा फिर, रनकौ डंका दियो बजाय।
नैंनागढ़ सें जोधा चल दये, पौंचे रन खेतन में जाय।।

उन दिनों सैनिक अपने स्वामी के हेतु प्राणार्पण करना अपना परम धर्म मानते थे। रण बाँकुरे ऊदल का कथन कितना सटीक और सार्थक है। जरा देखिये उनकी प्रेरणास्पद पंक्तियों को–

ऊदल तब ही कहने लागे, लऊँ बलइयाँ भ्रात तुम्हार।
नौकर–चाकर तुम नईं मोरे, भइया लागों बड़े हमार।।
जो तुम जोधा मनें करें तो, वीरन कौन करें जो काम।
लोक हँसाई करें जगत में, हुइयैं अपुन सबई बदनाम।।
इतनी बात सुनीं ऊदल की, गयो रोस रूपना को आय।
तमक कैं बोलो ऐंपन बारी, भइया सुनों उदै चंदराय।।
देर न करों करिलिया घोड़ी, भइया जल्दी देव सजाय।
ढाल तेग दै देव आल्हा की, देव बैजन्ती पाग बँधाय।।
जो जो चीजै रूपना माँगी, सो ऊदल ने दईं गहाय।
ऐंपन बारी लैकैं कर में, घोड़ी चढ़ो गनेस मनाय।

आल्हा खण्ड में अनेक स्थलों पर युद्ध के सजीव चित्र अंकित किये हैं, जिनमें से अनेक स्वाभाविक और कुछ अस्वाभाविक से प्रतीत होने लगते हैं। आल्हाखण्ड की यह मान्यता है कि –

मरबौ इक दिन होय जरूरी, सदा अमर कोउ रहता नाय।
रन खेतन में जो कोउ मर गओ, सुर्ग लोक में पहुँचो जाय।
दोनों दल में चली सिरोही, जीकौ हाल कहो ना जाय।
खट–खट खट–खट तेगा चल रओ, बाजी छपक–छपक तलवार।
सर–सर सर–सर सरही चल रई, जीके लगें निकरबैं पार।।
कंता चलो बिलायत वालो, घोड़ा काटैं मय असवार।
भाला चल रओ नाग–दमन कौ, जीपै छैं अंगुल की धार।।

युद्ध के वीभत्स दृश्य के–

पैर काट लये काउ–काउ के, कोउ के धड़ पै सिर है नांय।

कोउ के बाजू कटे पड़े हैं, रन में डरो–डरो चिल्लाय।
लोथ काउ की गज पै लटकी, कोउ घुरवा पै लटको जाय।।
हाती कुचल रहे लासन खौं, ठोकर लग कैं गिर–गिर जाय।
सुना परैं नईं कान बुचक गये, गूँगा उर बैरा हो जाय।।

उन दिनों प्रायः नीति प्रधान युद्ध हुआ करते थे। संध्या होते ही दोनों ओर का युद्ध स्वतः ही बंद हो जाता था–

जब दिन मुंद गओ अनी बदल गई, वक्त शाम कौ पौंचो आय।
बंद लड़ाई की ज्वानों ने, सारे रहे खून से न्हाय।।
लाल–लाल सब उन्ना हो गये, घुरवा रहे खून से न्याय।।
फटी–पपीड़ी जब दिन निकरौ, वक्त सुबह कौ पौंचो आय।
आल्हा पौंचे दरबार में, तब सब भये इकट्ठे आय।।
हाथिन वारे हाथिन सज गये, औ घोरन पै घुरल सवार।
हाती इक दन्ता मँगबाऔ, जी पैं चढ़ों पिथोरा राय।।
चौड़ा धाँधू तुरतै सज गये, भाँत–भाँत के लै असलाह।
तीजे घंटा के बाजत खन, लश्कर कूच दिशा करवाय।।
खाइ–इनामें अरे बढ़–बढ़ कैं, तुमने समसर भुगते राज।
आज के दिन खौं तुमें सेवतो, सो मिल जुरें समारों काज।।
नौन हरामी अरे चाकर मरैं, यारो मरैं बैल गरयार।
चढ़ी अनी पै जो कोउ बिचलै, ऊकी मरें गरभ की नार।।

आल्हा–ऊदल और राजा परमाल के स्वामी भक्त सैनिकों का मंतव्य देखने योग्य है–

नौन तुमारो हमनें खायो, हमनें समरस भुगते राज।
आज की बेरां रन खेतन की, राखैं सदा भवानी लाज।।
चाहें छिंगुरी कटबैं अंगुरी, उर कट जाय छितंरियन मांस।
टारे टरें न रह खेतन सें, जोलों चलें देह में सांस।।
सिंह की बैठक क्षत्री बैठे, जे सब धरें नगन तरवार।
मुँह नहिं देखो जिन तिरिया को, जिनकैं मार–मार रट लाग।।
पंगति–पंगति सें दल बैठो, भस्मा भूत लगो दरबार।।
दुर्गा लोट रही पल्थी पर, जैसें लौटें करिया नाग।।
पृथ्वीराज गरजा खेतन में, गुस्सा रहो बदन में छाय।
तीर–शब्द भेदी जब मारौ, बार न जीकौ खाली जाय।।

विजय सिंह दक्खिन में लड़ रओ, पूरब लड़ै वीरसिंह ज्वान।
विजय भान पच्छिम में लड़ रओ, कोउयें खबर काऊ की नाय।।
जाति बनाफर की ओछी है, कोउ न पियें घड़ा कौ नीर।
दया भाव काँ धरो उनन में, को जानें ऊ मन की पीर।।

रासो काल में आल्हा–शैली और वीर छंद को छोड़कर इसी प्रकार की अन्य लोक गाथाओं की रचना की गई थी, जो रासो परंपरा से हटकर है। हालाँकि आदिकाल के अधिकांश रासो ग्रंथ डिंगल (राजस्थानी) में लिखे गये थे। इस काल का बुंदेली साहित्य का केवल एक ही ग्रंथ 'परमाल रासो' (आल्हा–खण्ड) ही महत्त्वपूर्ण था, जिसमें बुंदेली साहित्य और संस्कृति की झाँकी भलीभाँति दिखाई दे रही है। यह विशाल ग्रंथ 52 लड़ाइयों का संकलन है। सेना की साज–सज्जा, अस्त्र–शस्त्रों का प्रकार, अस्त्र–शस्त्र संचालन, समर–भूमि की स्थिति, हाथी–घोड़े और सैनिकों की लाशों का ढेर। सुन्दर राजकुमारियों को प्राप्त करने हेतु विविध प्रयत्न और विवाह के अनेक अवसरों पर घोर संग्राम। इस युग में श्रृँगार और वीर जैसे रसों का समन्वय करने का प्रयत्न किया गया था।

हालाँकि इतिहास और साहित्य की दृष्टि से ये अधिक मूल्यवान तो नहीं हैं, किन्तु मनोरंजन की दृष्टि से इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

रासो कालीन कुछ महत्त्वपूर्ण लोक गाथाएँ

कुछ गाथाओं में पातिव्रत, प्रेम, भ्रातृप्रेम और लोक संस्कृति का अटूट भण्डार दिखाई देता है। भ्रातृप्रेम के क्षेत्र में 'संत–बसंत' नाम की लोक गाथा का महत्त्वपूर्ण स्थान है–

संत–बसंत की लोक गाथा

बुंदेलखण्ड में कुछ ऐसी आदर्श प्रधान गाथाएँ हैं, जिनसे नवीन पीढ़ी को भ्रातृत्व–प्रेम की शिक्षा प्राप्त होती है। इस गाथा में दो राजकुमारों के शौर्य और साहस का वर्णन है। जिसमें लोक कथानक का स्वरूप परिलक्षित होता है।

विधि का विधान बड़ा विचित्र है। संत–बसंत नाम के दो अत्यंत सुंदर राजकुमार बाँसों के झुरमुट के बीच से अवतरित हुए थे। नगर के राजा की बेटी का विवाह था। विवाह का मंडप बनाने के लिए बाँस काटने को राजा के अनुचर जंगल में गये। वे एक बाँस के झुरमुट को काटने लगे। उसी बीच झुरमुट के अंदर से बच्चों का रूदन सुनाई दिया। कटाई बंद करके ध्यानपूर्वक देखा तो वहाँ दो अत्यंत सुंदर बालक पड़े हुए

दिखाई दिए। राजा के अनुचर दोनों बालकों को उठाकर राजा को समर्पित कर गये। राजा उन्हें प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए और अपने पुत्रों के समान पालन–पोषण करके बड़ा किया। किन्तु ईर्ष्या–द्वेष के कारण महारानी को यह बात अच्छी नहीं लगी और उसने षड्यंत्र रचकर दोनों को देश–निकाला करवा दिया। वन में भटकते राजकुमार एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। इस गाथा में सुक और सारो का एक मार्मिक प्रसंग जोड़ दिया गया है, जिससे कथानक में रोचकता आ गई है। अचानक दोनों भाई फिर किसी कारणवश अलग हो जाते हैं। संयोगवश बड़ा भाई पड़ोस के राज्य का राजा बन जाता है। फिर अपने लघु भ्राता को खोजने का प्रयास करता है। अंत में दोनों भ्राताओं का सुखद मिलन हो जाता है। लोकगाथा का मुख्यांश निम्नानुसार हैः–

काठी जान कुठार से, कपट न डारों अजान।
पूरब पुण्य ओतरे, संत–बसंत सुजान।।
आगे पग न बढ़ाइयो, राजन के दरबार।
अपनी प्यास बुझाइयो, बन के रूख मझार।।

देश निकाला (राजाज्ञा)

जित उपजे तित जाहु जू, कहा इतै है काम।
बाँसन के झाड़न तरें, बिलमा लीजे घाम।
वन के पंक्षी साथिया, संगी वन के रूख।
कंद मूल फल फूल सें, तिरपत करियों भूख।

पंछी सत्कार

धन्य पखेरू रूख के, धन्य भयों सत्कार।
प्रान–दान कर देत हों, भूखन कौ आधार।
बनकैं ताल घिनौचिया, सीतल छाँयन आम।
जल–झारी दुरकाइयौ, महलन सौं का काम।

बिछुडकर पुनर्मिलन

हरे–हरे बाँसन औतरे, संत–बसंत कुमार।
ऐसे घर भागन परे, जितै कुलच्छन नार।
दोष कौन को दीजिये, बड़े भाग की मार।
राजा–रानी रूठिया, घर सौं दये निकार।

भूखे प्यासे जाहु जू, अमराई की छाय।
सारो–सुअना बन गये, कुंवरन बाबुल माय।
एक दिना आखेट में, बिछुर गयो दोउ भाय।
दीजौ कोऊ संत खौं, बहुरि बसंत मिलाय।

इस गाथा के कई पहलू विचारणीय हैं। ऐसा लगता है कि यह गाथा, गाथाकाल के अंतिम चरण में लिखी गई है। दूसरे इसमें सुक–सारो का संवाद और बलिदान का जो प्रसंग आया है, वह पौराणिक सा प्रतीत होता है। पेड़ पर बैठे पक्षियों को पता लगता है कि पेड़ के नीचे दो भूखे राहगीर बैठे हैं। पेड़ पर बैठे दोनों पक्षी नीचे जलती हुई आग में गिरकर मर जाते हैं, जिन्हें खाकर दोनों भाई अपनी भूख मिटा लेते हैं। प्राण–दान सर्वश्रेष्ठ दान है। पक्षियों तक में परोपकार और अतिथि सम्मान की भावना है। यह बुंदेली संस्कृति का मूलाधार है, प्राचीन बुंदेली साहित्य में इसका भण्डार भरा पड़ा है। इस प्रकार की गाथाओं से मानव जाति को परोपकार, करुणा और पर–कल्याण करने की शिक्षा मिलती है। जब पक्षियों तक में करुणा और अतिथि सम्मान करने के भाव जाग्रत हो जाते हैं, तो फिर मनुष्य की तो बात ही अलग है।

इसी प्रकार की अन्य प्रेरणास्पद लोक गाथाओं का प्रचलन है, जिसमें हिंसक पशुओं में भी मानवीय गुण दिखाई देते हैं। 'सुरहिन की लोक गाथा' लोक भावना का प्रतीक है। सिंह जैसे हिंसक पशु को भी सम्बन्ध भावना का ज्ञान है। वह मामा और बहिन के पवित्र सम्बन्ध को भलीभाँति जानता है और वह उनके कल्याण के लिए जंगल को छोड़कर चला जाता है। पशुओं की सदाशयता को देखकर मनुष्य को लज्जित होना चाहिए। यह सुरहिन गाथा प्रायः नवरात्रि के अवसर पर गाई जाती है। गाथा के बीच–बीच में हर–पंक्ति में 'माँ' को संबोधित किया जाता है। बुंदेली लोक–वाद्यों के साथ इस गाथा का गायन अधिक रोचक प्रतीत होता है। यह लोक गाथा आदिकाल जैसी प्रतीत होती है। गाथा में वनराज 'सिंह' के आधिपत्य और उसके शासन–क्षेत्र की विस्तृत चर्चा है। वह जंगल में प्रविष्ट होने वाले पशुओं का भक्षण करके उदरपोषण करता था।

सुरहिन की गाथा समाज में कालान्तर से बड़े अंदर से जुड़ी आ रही है। इसमें बुंदेली के विविध सांस्कृतिक स्वरूपों के दर्शन होते हैं। गाय हमारी संपूर्ण सांस्कृतिक अवधारणाओं का प्रतीक है। गाय हमारी माता, रक्षक और अंत में मोक्ष–दायिनी है। भारतीय समाज इसके अनंत उपकारों से कभी उऋण नहीं हो सकता। इसमें सभी देवताओं का निवास माना जाता है। आसुरी प्रवृत्तियों से देवताओं का निवास माना जाता

है। आसुरी प्रवृत्तियों से रक्षा के लिए भूके भार को हरण हेतु धरती का रूप धारण कर सर्व शक्तिमान से अवतार लेने की प्रार्थना करती है। साहित्यिक दृष्टि से इस गाथा में वात्सल्य भाव दिखाई देता है। इस गाथा में पारिवारिक सम्बन्धों का भलीभाँति निर्वाह किया गया है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि देवी, सिंह, वासुकी आदि का वर्णन इस काल में रूपान्तर का आभास है। यह गाथा चंपू काव्य में वर्णित है, जो अन्य गाथाओं से भिन्न है। गाथा का शुभारंभ इस प्रकार है–

दिन की ऊँगन किरन की फूटन,
सुरहिन वन खौं जांय हो मांय।
इक वन चाली सुरहिन दूजे वन चाली,
तीजे वन पौंची जाय हो मांय।
कजरी वन चंदन–वारे बिरछा,
जां सुरहिन मौं डारो हो मांय।
इक मौं घालौ सुरहिन दूजौ मौं घालौ,
तीजौ मौं सिंघा हुंकारो हो मांय।
अबकी चूक बगस मोरे सिंघा,
घर बछरा नादान हो मांय।

यह सुनकर सिंह सुरहिन से जमानतदार मांगता है–

सिंह– **आवत–जावत सुरहिन गइया,**
को है तोरे जमान हो मांय।

सुरहिन– **चंदा–सूरज मोरे लागैं लगनियां,**
वन के बिरछा जमान हो मांय।

सिंह ने कहा कि–चंद्रमा और सूर्य तो उदय और अस्त होते हैं और वृक्ष मुरझा जाते हैं। ऐसी स्थिति में इन्हें साक्षी बनाना उचित नहीं है। सिंह ने कहा कि–

सिंह– **चंदा सूरज दोऊ ऊँगैं अथैवौ,**
वन–बिरछा मुरझांय हो मांय।
सुरहिन– **धरती के वासुक मोरे लागैं लगनियां,**
धरती मोरी जमान हो मांय।

जब सिंह संतुष्ट हो जाता तो वह सुरहिन को घर जाने की आज्ञा देता है। सुरहिन बढ़ती हुई अपने बछड़े के पास पहुँचकर कहती है–

इक वन चाली सुरहिन दूजे वन चाली,
तीजे में बगर रंभानी हो मांय।
वन की हिरानी सुरहिन बगरन आई,
बछरे राँभ सुनाई हो मांय।
आऔ–आऔ बछरा पीलो मोरौ दुदुवा,
सिंघें बचन दै आई हो मांय।

बछड़ा– **बचन कौ बाँदौ दुदुआ न पीहौ मोरी माता,**
चल हों तुमाये संग हो मांय।
आगे–आगे बछरा पीछे–पीछे सुरहिन,
दोउ मिल वन खौं जांय हो मांय।
इक वन चाली सुरहिन दूजी वन चाली,
तीजे वन पौंची जाय हो मांय।
उठ–उठ हेरैं वन–वारौ सिंघा,
सुरहिन अभऊं न आई हो मांय।

उन दोनों को दूर से आता हुआ देखकर वह सिंह मन ही मन सोचता है–

बोल की बांदी, वचन की साँची,
एक गई दो आई हो मांय।

वे दोनों आकर सिंह के ही सामने खड़े हो जाते हैं। सर्वप्रथम बछड़ा सिंह को मामा का संबोधन करता हुआ कहता है–

बछड़ा – **पैलें ममैया हमई खौं भख लो,**
पाछे हमाई माई हो मांय।

यह सुनते ही सिंह आश्चर्यचकित होकर बछड़े से पूछता है–

सिंह– **कौने भनेंजा तोय सिख बुध दीनी,**
कौना लगे गुरू कान हो मांय।

बछड़ा– **देवी जालपा मोय सिख बुध दीनी,**
वीर लंगुर लगे मोरे कान हो मांय।

सिंह इतना सुनते ही उसके तो मामा के सम्बन्ध स्थापित करने और माँ जालपा को मार्ग दर्शिका सिद्ध करने से वह एक हिंसक सिंह इतना अधिक प्रभावित हो जाता है कि वह उसी दिन से हिंसा न करने की प्रतिज्ञा ले लेता है और सारा का सारा कजरी वन सुरहिन को चरने के लिए ही छोड़कर चला जाता है। वह जाते समय कहता है–

सिंह– **कजरी वन मैंने तोइखौ दीनौ,**
छुटक चरों मैंदान हो मांय।
सौ गऊ आगैं सौ गऊ पाछैं,
होओ बगर के साँड हो मांय।

इस बुंदेली गाथा में कितने सुंदर ढंग से मानवीय भावों का संप्रेषण हुआ है। अन्य भाषाओं के साहित्य में इस प्रकार के भाव कम ही प्राप्त होते हैं। हमारी सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक विचारों की अवधारणाओं की परिपुष्टि इस छोटी सी गाथा में लोक कवि ने एक जगह ही प्रस्तुत कर दी है। सुरहिन देवताओं की रक्षित माता के समान है। इसी आधार पर आज भी गाय हमारी माता, जीवन–रक्षिका और पुष्टिदायक मानी गई है। उसी प्रकार वृक्ष हमारे देवता के समान हैं। इसी आधार पर सुरहिन ने वृक्षों को अपना साक्षी बनाया है। सिंह आश्चर्यचकित होकर बछड़े से पूछता है कि तुझे यह शिक्षा किसने दी है? बछड़े ने तुरन्त कहाकि– मुझे यह ज्ञान और शिक्षा देवी जालपा और लंगुरा देव ने दी है। सुनते ही सिंह संतुष्ट हो जाता है। ऐसा कहा जाता है कि जिस पर माँ जालपा की कृपा होती है, उसका सिंह भी बाल बाँका नहीं कर सकता। यही कारण है कि इस गाथा का गायन नवरात्रि के अवसर पर किया जाता है। यह एक प्रकार का देवीजी का प्रिय भजन भी है।

बुन्देलखण्ड में मामा का रिश्ता पूर्ण पवित्र और पुण्यकारक माना जाता है। हर मामा अपने भांजे–भांजियों को अपनी संतान से भी बढ़कर मानता है। शादी–विवाह के अवसर पर मामा की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। मामा के बिना वैवाहिक कार्यक्रम अपूर्ण माना जाता है। लाला हरदौल भी प्रेत रूप में अपनी भांजी के विवाह में सम्मिलित हुए थे। यही कारण है कि वैवाहिक कार्यक्रम में हरदौल की पूजा अनिवार्य है। कंस, माहिल और शकुनि जैसे मामाओं ने इस पुनीत संबंध को कलंकित किया है। मनुष्यों की तो बात ही अलग है, हिंसक पशुओं में भी इस संबंध के प्रति आदर भाव होता है। सिंह अपने आपको सुरहिन का भाई और बछड़े का मामा मानकर अपने आप अहिंसक हो

गया। उसकी हिंसात्मक प्रवृत्ति अपने आप समाप्त हो गई। उसने सुरहिन और बछड़े के चरणों पर मस्तक रखते हुए कहा कि हे बहिन! तुम धन्य हो। आपने अपने वचनों का परिपालन किया। दूसरे आज से आप हमारी बहिन हो चुकी हैं। अब आज से आप इस कजरी वन में निश्चिंत होकर विचरण कीजिएगा।

कजरी वन मैंने तो तोई खौं दीनों,
छुटक चरो मैदान हो मांय।
सो गऊ आंगैं सौ गऊ पाछैं,
हुइयो बगर के साँड हो मांय।

इस गाथा में बुंदेली संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है। इस छोटी सी लोक गाथा में गाथाकार ने हमारी सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अवधारणाओं का संप्रेषण एक साथ किया है। सुरहिन हमारी माता, जीवन रक्षिका और पुष्टिदायक मानी गई है, उसी प्रकार देव तुल्य है। गाथा में सूर्य–चंद्र, वृक्षावलि, वासुकि और पृथ्वी को प्रमुख स्थान दिया गया है। ये सब मानव जीवन के अवयव हैं। इस गाथा में मानवीय सम्बन्धों और संवेदनाओं का विराट–स्वरूप प्रदर्शित किया गया है। आज पारस्परिक सम्बन्धों में दरार पड़ रही है, लोग संवेदनहीन होते जा रहे हैं। हिंसात्मक–प्रवृत्ति हावी होती जा रही है। किसी कवि ने सत्य ही कहा है–

आज आदमी नहीं आदमी, मनुज खून का प्यासा है।
मानव दानव बना हुआ है, एक यही परिभाषा है।

इन मृत मानवीय भावनाओं में नव–जीवन का संचार करने के लिए इस प्रकार की गाथाएँ संजीवनी औषधि का काम कर सकती हैं। अतः इस मूल्यवान सामग्री को जन–जन तक प्रेषित करना आवश्यक है।

बुंदेली राछरे

राछरे भी लोक गाथाओं का एक प्रकार है। बुंदेलखण्ड में अनेक राछरे प्रचलित हैं। अधिकांश राछरे वीरगाथाओं के रूप में गाये जाते हैं। बुंदेलखण्ड में यह शब्द उपद्रव या उत्पात के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे– 'वे तो राछरों दयें बैठे या उतै तों राछरों आ हो रओ।' यह शब्द एक लोकोक्ति रूप में प्रचलित होकर लड़ाई–झगड़े के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। इसके कुछ अन्य विकृत रूप भी प्राप्त होते हैं। जैसे– राछरी फिरना, बारात गमन के पूर्व दूल्हा सुसज्जित होकर, मौर (मुकुट) बाँधकर, हाथ में कंकन बाँधकर और हाथ में नंगी कटार लेकर घोड़े या पालकी पर बैठकर नगर भ्रमण के लिए निकल जाता है। नारियाँ मंगल–गीत गातीं हुईं दूल्हा के साथ चलती हैं। हालाँकि ये सारीसज्जा एक रणबाँकुरे वीर के समान है। यदि इसे युद्ध का पूर्वाभिनय कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्राचीन काल में विवाहोत्सव प्रायः युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् ही सम्पन्न होते थे। इन दिनों उसी लकीर को पीटा जा रहा है। हालाँकि आजकल विवाह की सारी परिपाटियाँ बदल चुकी हैं, फिर भी विवाहोत्सव युद्ध का ही अभिनय जैसा प्रतीत होता है। जुझारू बाजे बजना, आगौनी छूटना, बारात सुसज्जित करना आदि क्रियाएँ युद्ध के ही नाटक हैं। आज तो युद्ध की आवश्यकता नहीं है, फिर भी युद्ध का पूरा नाटक ही खेला जाता है। परिक्रमा के पश्चात् 'राछबधाये' का उत्सव मनाया जाता है। 'रास' का अर्थ है –'युद्ध' और 'बधाये' का अर्थ है 'उत्सव'। युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् उत्सव का आयोजन कुछ विद्वानों ने 'राछरे' का अर्थ 'युद्धोत्सव' या सामूहिक समारोह के रूप में माना है।

बुंदेली लोक साहित्य के मर्मज्ञ पं. कन्हैयालाल शर्मा 'कलश' ने 'राछरे' के लक्षण स्पष्ट करते हुए लिखा है कि –'वैवाहिक समायोजने रनाच्छरे इति युद्धोत्सव प्रयुक्तः' यह एक लोक संगीतबद्ध गीत है। ये गीत प्रायः पावस ऋतु में गाये जाते हैं। इसे झूले का गीत भी कहा जाता है। यह मल्हार की ध्वनि में गाया जाता है। इसमें ध्रुपद के

ताल लगते हैं। लय में विलंबित स्वर का भराव रहता है। इनमें वीर, करुण और श्रृँगार रस की प्रधानता होती है। इसके विकसित रूप आज भी विद्यमान हैं। अधिकांश विद्वानों की ऐसी मान्यता है कि यह एक शौर्य प्रधान लोक गाथा का प्रकार है। बुंदेलखण्ड के वीरों की शौर्य गाथाएँ ही राछरे हैं। राजा अमानसिंह और महारानी लक्ष्मीबाई के सम्बन्धित राछरे ग्रामों में गाये जाते हैं, जो लोक ध्वनियों में आबद्ध हैं। इनकी एक विशिष्ट ध्वनि होती है। आज गाँवों के कुछ लोग बड़े ही मनोयोग से इन राछरों का गायन किया करते हैं। यदि इन्हें लिपिबद्ध नहीं किया गया तो धीरे–धीरे यह मूल्यवान सामग्री लुप्त हो जायेगी।

राछरे का विकास क्रम

हालाँकि राछरे का विकासक्रम खोजना सामान्य कार्य नहीं है। इसका विधिवत् निर्णय करने के लिए लोक साहित्य सागर में गोता लगाना आवश्यक है। राछरे के विकास क्रम को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है – वीर गाथा काल, भक्ति काल और रीतिकाल।

वीर गाथा काल– इस काल में भारत के विभिन्न अंचलों में तत्कालीन वीरों की गाथाओं का गायन किया जाता था। इस क्षेत्र में बुंदेलखण्ड अग्रणी रहा है। इस काल में तत्कालीन वीरों को प्रोत्साहित करने के लिए और जन–सामान्य में शौर्य भावना जाग्रत करने हेतु वीर रस प्रधान राछरों का गायन किया जाता है। भाषा–भाव और लोक–ध्वनि उनके अनुकूल रहती थी। इस युग में राजा अमानसिंह कौ राछरौ, रानी लक्ष्मीबाई कौ राछरो, राजा मर्दनसिंह और चन्द्रावलि कौ राछरौ विशेष प्रसिद्ध रहे हैं। राजा अमानसिंह, महारानी लक्ष्मीबाई और बानपुर नरेश मर्दनसिंह ने देश प्रेम की बलिवेदी पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये थे। सच पूछा जाये तो बुंदेलखण्ड आदर्श प्रधान महापुरुषों का क्षेत्र रहा है, जिनके त्याग और बलिदान के कारण देश का मस्तक सदैव ऊँचा रहा है। साहसी राजा धनसिंह के बलिदान को लोग अभी भूले नहीं हैं।

भक्ति काल– इस समय के राछरों में भक्ति भावना की अधिकता दिखाई देती है। कुछ राछरे तो भक्ति की ही आधार भूमि पर खड़े हैं। राजा मधुकरशाह, रानी गणेश कुँवरि और सुरहिन नाम के राछरों में भक्ति के दर्शन होते हैं। इन राछरों का कथानक मुगलकाल से संबंधित है। कहा जाता है कि रानी गणेश कुँवरि अयोध्या से भगवान राम को ओरछा ले आईं थीं। ओरछा में भगवान राम का प्रसिद्ध मंदिर रानी गणेश कुँवरि की याद दिलाता है। कुछ वीर रस प्रधान राछरों में भी भक्ति भावना दिखाई देती है।

अधिकांश वीर माँ शक्ति के उपासक हुआ करते थे। वे माँ शक्ति की आराधना करने के पश्चात् ही युद्ध को प्रयाण किया करते थे। यदि उन्हें भक्ति और शौर्य का संभावित रूप कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। राजा मधुकरशाह हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के प्रतिपालक थे। मुगल बादशाह के दरबार में भी उन्होंने हिन्दू धर्म का प्रतीक प्रस्तुत किया था। यही कारण था कि उन्हें 'मधुकरशाह टिकैत' की उपाधि से विभूषित किया गया था। धर्म के लिए प्राणार्पण करना उनके लिए सहज था। ऐसे निर्भीक राजा मधुकरशाह की भक्ति–भावना से आपूरित लोक गाथा जन–जन की ज़बान पर है। इस प्रकार के राछरे बुंदेलखण्ड में भरे पड़े हैं।

रीति काल– रीतिकाल का दूसरा नाम श्रृँगार काल है। इस युग में श्रृँगार प्रधान राछरे गाये जाते थे। कुछ राछरों में प्रकृति के मनोरम दृश्यों का चित्रण है। पावस, शरद और बसंत के चित्र उद्दीपन रूप में प्राप्त होते हैं। इनका गायन प्रायः पावस ऋतु में मल्हार राग में किया जाता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है:–

गाड़ी वारे मसक दै बैल, अबै पुरवैया के बादर ऊनये।
कौना रे ऊनई कारी बदरिया, कोंना बरस गये मेह।।
पूरब ऊनई कारी बदरिया, पच्छिम बरस गये मेह।
भीतर बदरिया ऊनई रे रामा, गलुवा बरस गये मेह।।

यह एक उद्दीपन श्रृँगार का राछरा गीत है। पावस ऋतु में विरह–व्यथित नायिका के हृदय में विरहाग्नि धधकने लगती है और उसकी आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। इसे सुनकर कविवर बिहारी की ऊहात्मकता फीकी पड़ जाती है। विरह–व्यथा का उक्त चित्रण कितना सहज और स्वाभाविक है। कुछ राछरे प्रेम और श्रृँगार के साक्षात् स्वरूप हैं। ढोला–मारू, प्रवीणराय और सारंगा नाम के राछरे रीतिकालीन परंपरा का परिपालन करते हैं। इनमें सौन्दर्य चित्रण, आकर्षण, मिलन और विरह के स्वाभाविक चित्र दिखाई देते हैं। ये सबके सब लोक ध्वनियों में आबद्ध हैं। संगीतात्मकता के कारण उन्हें बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

राछरे की प्रमुख विशेषताएँ

'राछरे' गाथाओं के ही विशिष्ट रूप हैं। इनका विधिवत अध्ययन करने पर निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई देती हैं।

युद्धमय वातावरण– राछरों में सर्वाधिक युद्धमय वातावरण दिखाई देता है। राजा गण पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष के कारण एक दूसरे से युद्ध किया करते थे। राछरे

का अर्थ ही संघर्ष है। यही कारण है कि अमानसिंह, मर्दनसिंह और धनसिंह नाम के राछरे युद्ध के लिए प्रसिद्ध हैं। इनमें देश–प्रेम की भावना के दर्शन होते हैं। लोहागढ़ संग्राम का एक दृश्य देखिये–

कटे सूर सामंत वर, हिन्दूपति की आन।
प्रान दान दै राख लई, लोहागढ़ की शान।

राजा धनसिंह माता, पत्नी और अन्य परिवार के लोगों के रोके जाने पर भी युद्ध क्षेत्र में कूद पड़े थे। महारानी लक्ष्मीबाई के आत्म–बलिदान से तो सारा संसार परिचित ही है।

अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन– ऐसा लगता है कि तत्कालीन काव्य–साहित्य अतिशयोक्ति की ही आधार भूमि पर खड़ा था। अधिकांश कवि राजाश्रित हुआ करते थे और अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा बढ़ा–चढ़ाकर किया करते थे। इस प्रकार के चित्रण सत्य की सीमा को पार करके असत्य से प्रतीत होने लगते हैं। गाथा साहित्य भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा। राछरों में वर्णित घटनाएँ और युद्ध कौशल के चित्रण प्रायः अतिशयोक्ति पूर्ण होते हैं। अस्त्र–शस्त्रों का आकार वीरों का शौर्य, साहस और उनकी कार्य सीमा का उल्लंघन करते हुए दिखाई देते हैं। अस्सी मन का गोला, बीस हाथ की तलवार और पाँच मन का भाला क्या कभी किसी ने देखा है? कदापि नहीं, लोगों ने गाथा गायकों के मुख से केवल सुना ही होगा। इस प्रकार के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन झूठोक्ति के समीप ही माने जायेंगे।

अलौकिक घटनाओं का समावेश– राछरों में कुछ ऐसी घटनाओं का समावेश किया गया है कि जिन पर आज का बुद्धिवादी वर्ग कभी विश्वास नहीं कर सकता। उदाहरण स्वरूप नाग–कन्याओं के साथ विवाह, भूगर्भ में प्रवेश, पक्षियों द्वारा भविष्य कथन, मणि के द्वारा जल में मार्ग प्राप्त करना, परियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध आदि घटनाएँ असंभव हैं। इस प्रकार की घटनाओं को सुनकर कौतुहल वर्धन तो हो सकता है, किन्तु विश्वसनीयता नहीं। लोग इस प्रकार की गाथाओं का जब गायन करते हैं तो श्रोतागण रूचिपूर्वक श्रवण करते हुए आनंद प्राप्त करते हैं। किन्तु घटनाओं पर विश्वास नहीं करते और ये घटनाएँ सत्य की कसौटी पर खरी नहीं उतरती।

चमत्कार प्रधानता– राछरे अनेक चमत्कारिक क्रियाओं से भरे पड़े हैं। उनमें कुछ ऐसी चमत्कारिक क्रियाओं का समावेश किया है, जिन्हें सुनकर लोग आश्चर्य चकित हो जाते हैं। अकेले राजा अमानसिंह की तलवार से अनेक योद्धा धराशायी हो

जाते हैं। अंत में वह लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त होता है। राजा धनसिंह को उनकी पत्नी, बहिन और माता युद्ध में जाने से रोकती हैं, किन्तु वे किसी का भी कहना नहीं मानते। युद्ध क्षेत्र में अनेक शत्रुओं को मौत के घाट उतारते हुए स्वयं मौत के घाट उतर जाते हैं। गाथाकार ने स्वयं भी कहा है– 'तोरी मति कोंने हरी रे धनसिंह, तोरी मति कोंने हरी रे'। ओरछा की रानी गणेश कुँवरि अपनी टेक और प्रतिज्ञा का परिपालन करते हुए भगवान राम को ओरछा ले आती हैं।

आचार्य केशव की शिष्या राय प्रवीण, अकबर जैसे बुद्धिमान बादशाह को अपनी काव्य–प्रतिभा के द्वारा आश्चर्यचकित कर देती हैं। हर गाथा में किसी न किसी रूप में चमत्कार की प्रधानता दिखाई देती है।

लोक भाषा का प्रयोग– भारत के समस्त अंचलों का लोक गाथा साहित्य लोक भाषा में ही प्राप्त होता है। लोक भाषा के माध्यम से व्यक्त किये गये भाव इतने सहज और सरल होते हैं कि सुनते ही श्रोताओं के हृदय में चुभ जाते हैं। इनके द्वारा प्रदत्त आनंद इतना सहज और सुलभ होता है कि मानसिक व्यायाम किये बिना ही लोग आनंद प्राप्त कर लिया करते हैं। बुंदेलखण्ड में प्राप्त राछरे लोक भाषा बुंदेली में ही हैं। बुंदेली में माटी की महक, भाषा की मिठास और मोहक साहित्य भरा पड़ा है। लक्ष्मीबाई के राछरे में सहज बुंदेली भाषा का उदाहरण देखने योग्य है–

बाई ने दीनों हुकम, को यह काँको आय।
कहौ बेगलै जाय गज, ऊधम रहो मचाय।
नत्थे खाँ बोलो तबैं, बचन सहित अभिमान।
टीकमगढ़ दीवान हम, सुन अबला नादान।

राजा अमान सिंह के शौर्य और लोकप्रियता पर आधारित बुंदेलखण्ड के ग्रामों में एक लोकगीत की पंक्ति प्रचलित हैः–

अरे काँ गये राजा अमान, जिनखौं जे रो रईं चिरइयाँ।

राजा मर्दन सिंह कौ राछरों यहाँ बड़े ही चाव से गाया जाता है, उसमें बुंदेली की सहजता के दर्शन होते हैं।

राजा वीर बानपुर वारो, भरन लगो अपनी हुंकार।
धक–धक छाती भई गोरन की, जब मरदन ने दई ललकार।
जैसें शेर दहाड़े वन में, जरियँन में दुक जाय सियार।

जैसें चूहा दुकें बिले में, वन में बड्डी देख बिलार।
दुकें चिरइयाँ डारन–डारन, जई सैं सामैं देखैं बाज।
खैच सनाकौ रै गये गोरा, जैसें टूट परी हो गाज।

इस प्रकार से समस्त राछरों में चाहे उनमें शौर्य हो और चाहे भक्ति–भावना की प्रधानता हो, किन्तु उनमें बुंदेली की मिठास भरी पड़ी है।

मौखिक परम्परा– बुंदेलखण्ड का अधिकांश लोक साहित्य मौखिक है। राछरे भी लोक–मुख में सुरक्षित हैं। लोग इन्हें वयोवृद्ध लोगों के मुख से सुन–सुनकर याद करते रहे। परम्पराबद्ध होने के कारण ये मूल्यवान सामग्री आज तक सुरक्षित है। कभी–कभी सुनने और याद करने में कुछ अंतर भी आ जाता है। कभी–कभी किसी गाथा का तो स्वरूप ही बदल जाता है। कुछ सत्य घटनाएँ लुप्त हो जाती हैं और कुछ नवीन घटनाओं का समावेश हो जाता है। कल्पना प्राचुर्य एवं नवीन घटनाओं के समावेश के कारण उन्हें लोग संदेह की दृष्टि से देखने लगते हैं। ऐसा लगता है कि प्रारंभ से ही विद्वानों का इनकी ओर उपेक्षित दृष्टिकोण रहा है। यदि इन्हें लिपिबद्ध कर दिया जाता तो इनका वास्तविक स्वरूप सुरक्षित बना रहता। इतिहास और कल्पना के मिश्रण के कारण आज इनमें इतना अधिक उलझाव हो गया है कि विद्वान इन्हें सत्यता की कसौटी पर कसने में असमर्थ हो जाते हैं। इसी कारण से इनका वास्तविक स्वरूप सुरक्षित नहीं हो सका।

ऐतिहासिकता – भारत के समस्त अंचलों की लोक गाथाएँ किसी न किसी रूप में इतिहास से सम्बन्धित हैं। इनमें वर्णित नायकों के नाम और कुछ घटनाएँ ऐतिहासिक ही होती हैं। राछरों के नायक भी ऐतिहासिक होते हैं। जैसे –मर्दनसिंह बानपुर के राजा, बखतबली शाह शाहगढ़ के राजा थे। झाँसी वाली रानी लक्ष्मीबाई से तो सारा संसार परिचित ही है। ढोला–मारू गाथा के नायक ढोला, महाभारत कालीन राजा नल के पुत्र थे। राछरो में किसी न किसी रूप में ऐतिहासिकता दिखाई देती है।

संगीतात्मकता– सम्पूर्ण गाथा साहित्य पद्यबद्ध एवं गेय हैं। राछरे भी पद्यबद्ध एवं गेय हैं। समस्त राछरे बुंदेली लोक ध्वनियों में आबद्ध हैं। अधिकांश राछरे मल्हार की ध्वनि में पावस ऋतु में गाये जाते हैं। प्रायः इनका गायन लोक वाद्य ढोलक, नगड़िया और झाँझ के साथ किया जाता है। अमानसिंह कौ राछरो ढोलक के साथ उच्च स्वर में गाया जाता है। वर्षा ऋतु में बादल की गर्जन के साथ लोक गायक की गर्जन एक विशेष प्रकार के आनंद की सृष्टि करती है। गाँव के श्रोतागण एकत्रित होकर आनंद प्राप्त करने लगते हैं। संगीतबद्ध होने के कारण ये बड़े ही आकर्षक और रूचिपूर्ण

प्रतीत होने लगते हैं। यदि इन लोक ध्वनियों का ध्वन्यांकन कर लिया जाये तो ये सुरक्षित रह सकती हैं।

कौतुहल वर्धन– राछरों में एक विस्तृत कथा अथवा किसी घटना विशेष को पिरोया जाता है। कथा में जिज्ञासा तत्त्व का समावेश होना आवश्यक है। जिज्ञासा के बिना कहानी नीरस हो जाती है। राछरों में इस तत्त्व की प्रधानता है। राछरे का गायक पूरी रात साज–बाज के सहित गायन करता रहता है। ग्रामीण श्रोतागण रूचिपूर्वक झूम–झूमकर सुनते रहते हैं। ये सब कौतुहल का ही चमत्कार है। युद्ध का सजीव चित्रण, अस्त्र–शस्त्रों का संचालन और कहानी की जिज्ञासा वृत्ति मानव मन को लुभाती रहती है। मर्दनसिंह, अमानसिंह और धनसिंह राजाओं के राछरे इसी प्रकार के हैं। ढोला–मारू की गाथा जब तक लोग पूरी नहीं सुन लेते, तब तक लोग डटे ही रहते हैं। राय प्रवीण नाम की गाथा में राय प्रवीण का वाक्यचातुर्य और प्रत्युत्पन्नमति का स्वरूप दिखाई देता है। इसी प्रमुख बिंदु के आधार पर किसी भी गाथा का मूल्यांकन किया जा सकता है।

लोकप्रियता– लोक साहित्य जन–मानस का साहित्य है। लोक भाषा के माध्यम से व्यक्त किये गये भाव जन–मानस को मोहित किये बिना नहीं रहते। लोकगीत, लोककथा और लोकगाथा मानव मन की स्वाभाविक अनुभूतियाँ हैं। राछरों में गेय तत्त्व और लोक संगीत का प्राधान्य है। इसी कारण यह जन–जन को प्रिय है। बुंदेलखण्ड के हर क्षेत्र में इनका गायन किया जाता है। इन्हें सुनकर हर वर्ग के लोग आकर्षित होते हैं। नगरों में भी इनकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है।

बुंदेली के कुछ प्रमुख राछरे

अमानसिंह कौ राछरौ

'रासो, रायछे, राछरे, साके, पवारे और चरित्र लोक गाथाओं के ही स्वरूप हैं। लोक गाथाएँ मानव–जीवन की मर्मस्पर्शी झाँकियाँ हैं, जिनका लोक साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये मानव के हर अंग का स्पर्श करती हैं। इनमें लोक–जीवन की साधारण–असाधारण घटनाओं का लोक भाषा में सजीव चित्रण होता है। यही कारण है कि गाथा साहित्य में मानव जाति के आचार–विचार, रीति–रिवाज, धार्मिक–विश्वास, आशा–निराशा और सुख–दुःख की सजीव झाँकी दिखाई देती है। यदि यह प्रश्न उपस्थित होता है कि गाथा क्या है और यह कहाँ से अवतरित हुई है, तो यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि गाथाएँ मानव हृदय के सीधे सादे उद्‌गार हैं, जो गाथा

साहित्य के रूप में मानव समाज को सुखानुभूति देते हैं और उनमें कल्पना का मिश्रण होता जाता है। इनमें प्रायः युद्ध का वर्णन होता है। अमानसिंह के राछरे में पन्ना के राजा अमानसिंह और अकोड़ी के जागीरदार श्री जुझार सिंह के द्वन्द युद्ध का वर्णन है। भोजन करते समय किसी साधारण सी बात पर साले–बहनोई में विवाद हो गया और भोजन की थालियाँ छोड़कर तलवार तानकर आपस में भिड़ गये। ये एक प्रकार की असहिष्णुता और स्वाभिमान की लड़ाई थी, जिसमें बुंदेली के तेज, शौर्य और साहस का स्वरूप दिखाई देता है। बुंदेलखण्ड के इतिहास में पन्ना के राजा अमानसिंह का शासन काल सन् 1752 से 1758 तक निर्धारित किया गया है और इतिहास में साले–बहनोई के द्वन्द्व के संकेत प्राप्त होते हैं। राछरे में बुंदेली संस्कृति की जीती जागती प्रतिमा दिखाई दे रही है। लोक गाथा का शुभारंभ सावन के सुहावने महीने से होता है। सावन का महीना लगते ही सबकी बहिनें अपने–अपने मायके जाने की तैयारी कर रही हैं। ऐसे समय में पन्ना नरेश अमानसिंह को भी अपनी बहिन सुभद्रा का स्मरण हो आया। जरा देखिये, राछरे के प्रारंभिक अंश को–

सदा न तुरैया फूलें अमन जू, सदा न सावन होय।
सदा न राजा रन चढ़े, सदा न जीवन होय।।
राजा मोरे अमन बुंदेला कौ राछरों।
सबकी बहिनियाँ झूलें हिंडोरा, तुम्हारी बहिन बिसूरें परदेश।

अमानसिंह की पत्नी बार–बार कह रही है –

नौवा पठै दो बमना पठै दो,
बइया जू की दिन घर आयें।

माता जी भी अपनी प्रिय पुत्री को देखने के लिए आकुल हैं, किन्तु अमान सिंह परदेश जाने के लिए तैयार नहीं हैं। वे अपनी माता जी से कहने लगते हैं –

हम विदेसे न जायें माई,
नौवा खौं गलियां बिसर गईं।
बमना खौं सुध गई भूल।

माता अपने बेटे अमान सिंह से बहिन के महत्त्व को प्रदर्शित करती हुई कहती हैं– 'देखो बेटे, बहिन–भाई का संबंध कितना मूल्यवान होता है?' यह एक विचारणीय प्रश्न है। अवसर आने पर भाई अपनी बहिन का बार–बार स्मरण करता है–

किनकी तुम लैहो तुम बेटा भुंजरियां?
किनके छूहों दोई पाँव?
बहिन सुभद्रा की लेबूँ कजरियां।
उनई के लटक छूबौं दोई पाँव।

रक्षाबंधन, भइया–दोज और कजलियों के त्योहार के अवसर पर भाई को अपनी बहिन की अनुपस्थिति दुःखदायिनी लगती है। माताजी की आज्ञा का परिपालन करने के लिए अपनी बहिन सुभद्रा को लिवाने के लिए तैयार हो जाते हैं। राजकुमार अमानसिंह की साज–सज्जा करने में अनुचर तत्पर हो जाते हैं। जरा देखिये उनकी साज–सज्जा का एक दृश्य–

हेरो रे नौवा हेरों रे बमना,
अमान जू कौ करों सिंग्गार।
नौवा तों खोरैं समारैं अमान जू कीं,
बमना बौ तिलक लगाय।
झपट अटरियाँ चढ़ गये अमान जू,
तकतन में मौं देखें राजा अमान।
हन हन स्वापा बाँधें।

पूर्ण सुसज्जित होकर राजकुमार नाई–पंडित को बुलाकर, डोला सजाकर, नीले रंग के परिपुष्ट घोड़े पर बैठकर बहिन को लिवाने के लिए 'अकोड़ी' नगर को चल देते हैं। उस समय राजकुमार की उमंग और उत्साह देखते ही बनता है। बुंदेलखण्ड में यात्रा करते समय शुभ–शकुन साधने की प्रथा है, किन्तु चलते समय राजकुमार को अपशकुन हो गया–

छींकत घुल्ला पलानें अमन जू, असगुन भये असवार।
पांच पैंड़ निकरई नईं पाये, रीती मिली पनिहार।
मारें बहिना खींच कटारी तोय, कै बदल घर जायें।
हम तौ कहिये लाला कुआँ पनिहारी, हमरऊ कौन बिचार।
गाँव कौ ग्योंडो निकल न पाये अमन सींगा, करिया नाग सन्नायें।
कै तोयें मारें नागा भरकैं तुबकिया, कै तो बदल घर जायें।
ना मौय मारों भैया भरकैं तुबकिया, ना बदल घर जाओ।
हम तो कइये भइया धरनी के वासी, हमरेउ कौन विचार।

बुन्देली संस्कृति में शकुन–अपशकुन को प्रमुख स्थान दिया जाता हैं। खाली घड़ा सिर पर रखी हुई महिला, मार्ग काटता हुआ नाग, सियार, हिरण और बिल्ली अपशकुन सूचक माने जाते हैं। अमान सिंह घोड़े पर सवार होकर ज्यों ही बाहर निकले, तो उन्हें अपशकुन हो गया। मन में दुविधा तो उत्पन्न हो गई, फिर अकौड़ी की ओर आगे बढ़ते गये। अकौड़ी का मार्ग बड़ा ही दुर्गम और कंटकाकीर्ण था। फिर भी मार्गजनित बाधाओं को सहन करते हुये आगे बढ़ते गये। उनके मन में अत्यधिक उत्साह और उमंग थी। उनकी साज–सज्जा का दृश्य देखिये–

घुड़लन घुंघरियां बजत जांय
उड़ें गगन में धूल।
कुसमानीं पगड़ी बाँधें राजा अमान जू,
खुरसैं गुलबिया फूल।
डोला खौ लागी डोंड़ा औ लायची लागी
गलियँन महकत जाँय।
रात चलें दिन धाइये
पौंचें अकौड़ी माँझ।

ऊँचे महल की छत पर चढ़कर बहिन सुभद्रा अपने भाई अमानसिंह की प्रतीक्षा कर रही है।

ऊँचे अटा चढ़ हेरैं बहिन सुभद्रा,
बिरन कहूँ न दिखाँय।
घुड़ला जो पौंचे दुआरे में
दोरें में हल्ला मचायें।

सुभद्रा जी की सास ने तुरंत ही पुत्र–वधू को सूचित किया–

झपट अटरियां सास भमा जू,
बिरना ठाँढ़े द्वार।
उतरों दुलैया जू ऊँचे अटा सों,
बिरना ठाँढ़े द्वार।

बुंदेलखण्ड में अतिथि सम्मान का विशेष महत्त्व है। परिवार में अतिथियों के आगमन से आनंद की लहर दौड़ जाती है, किन्तु भाई–बहिन का रिश्ता सर्वोपरि है। भाई के आगमन पर बहिन का आनंद वर्णनातीत है। कहा भी जाता है–जिसकी बहिन

अंदर उसका भाई सिकंदर। बहिन कितनी उत्साहित और हर्षित है। गाथाकार ने लिखा है –

टेरों ने देवरा टेरों रे जेठा,
सारे सों करलो मिलाप।
पैयाँ परत रुपैया दो दीन्हें,
भेंट करत मुहरें पाँच।
बार बखरिया जीजा हो भेंटे,
सहोदरा चौकन माँझ।
कौना की जो भींजी पचरंग चुनरिया?
कौना की पचरंग पाग?
बैना की भींजी सुरंग चुनरिया,
भइया की पचरंग पाग।
सोनें टकोलना हात दये हैं,
लटक छुये दोई पाँव।

अपने यहाँ अतिथियों के सम्मान के लिए विशेष प्रकार के सुस्वादु व्यंजन तैयार किये जाते हैं। भाई से बढ़कर मेहमान और कौन हो सकता है? बहिन के घर में भैया के लिए विशिष्ट प्रकार के भोजन की तैयारी होने लगी, जिसमें बुंदेली संस्कृति की झाँकी दिखाई दे रही है–

धोय मोय के गेंउआं पिसाय,
मंडला पुवाय झकझोर।
चढ़ गईं ताम–तमेलियां,
रँध गये मुठछर भात।
कचिया उरद के बरला पकाय,
भावन दये दध बोर।
दार बनाई रज–मूँग की,
लोंगन दये बघार।
चंदन गारी कड़ियाँ पकाईं,
मैंथन दये बघार।

बुंदेलखण्ड के विशिष्ट व्यंजनों में गेहूँ के माँड़ें, काली मूँछ के चावल, उड़द के बरा, लोंगन से बघारी हुई रज मूँग की दाल, मैथी से बघारी हुई शुद्ध मट्ठे की कढ़ी

का विशेष महत्त्व है। राजसी ठाट–बाट और राजसी भोजन की प्रक्रिया का कितना सुंदर चित्रण गाथाकार ने किया है, जो देखने योग्य है–

बना रसोइया धरी बहिन नें,
नौवा खौं देव टिराय।
नौबा केरे असनान कराये,
उर धोती लेबैं फींच।
झपट अटरियाँ चढ़ गये अमान जू,
सारोटें दईं बिछाय।
टेरों सासो भभा जू खौं,
थार देव परसाय।

ये राजघराने के अतिथि सत्कार, जेवनार और सोने के थाल में भोजन करने की प्रक्रिया है, जो आज भी साधन सम्पन्न व्यक्तियों के घरों में संचालित है। जरा देखिये प्रश्नोत्तर में–

काय से थारन भोजन परोसे?
काय के कचुल्लन घीव?
सोने के थारन भोजन परोसे,
रूपे कचुल्लन घीव।
सारे बहनोई एक पटनैत बैठे,
बैठे जना जन जोर,
बिरन हमाये ज्वाइयों भवाजू,
हम अचरन पवन झकोर।

साले–बहनोई भोजन करने के लिए एक साथ बैठ जाते हैं। भोजन करने के पश्चात् चौपड़ का खेल प्रारंभ हो जाता है। साले–बहनोई बैठकर चौपड़ खेलने लगते हैं। चौपड़ में अमान सिंह पराजित हो जाते हैं। जुझार सिंह जीतकर अमानसिंह से दासी का पुत्र कह देते हैं। ये व्यंग्य बाण बुंदेला के ह्रदय में चुभ गया। सुनते ही अमान सिंह तिलमिला कर बोले– कि मैं अपने अपमान का बदला आपसे लेकर रहूँगा। तैयार रहना मैं सेना सजाकर आप पर चढ़ाई करने आ रहा हूँ।

जो हम लौंड़ी के जाये हुइयैं।
तौ हम ईकौ देंय ज्वाब।

खेलत–खेलत बड़ी देर भई,
खेलत बढ़ गई रार।
पेंज में उठ गई जेज में।
चौपर दई फटकार।

और क्रोधित होकर अमानसिंह अटारी से नीचे उतर आते हैं–

झपट अटरिया उतरे अमान जू,
घुड़ला लये हैं हात।
चल रे नौबा चल रे बमना,
चल रे हमरे संग।
जो हम लौंड़ी के जाये हुइयैं,
तौ ईकौ हम दैहैं ज्वाब।

अमानसिंह पर स्वाभिमान का भूत सवार हो गया। वे लौटकर पन्ना आ गये। माता और पत्नी से सारी व्यथा–कथा कह सुनाई। उनकी माताजी और महारानी ने बहुत समझाया, किन्तु उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने अपनी माता जी से स्पष्ट कह दिया–

हटो री माता मोरी नजर से,
हुइयैं जौ राजा लौंड़ी के जाये।
तौ दैहौं ईकौ ज्वाब।

महारानी ने उन्हें समझाते हुए कहा–

जो तुम बहिन पै चढ़कैं जैहों,
तौ मैं मरों विष खाँय।

अमानसिंह तिलमिलाकर उत्तर देते हैं–

जो तुम धना रह कैं खाती तो,
तौ अबई काय नईं मर जाव।
कर लैहों सत्तरा ब्याव।

अंत में सेना लेकर अमानसिंह 'अकौड़ी' पर चढ़ाई कर देते हैं। भीषण संग्राम होता है। उसकी बहिन सुभद्रा में भी क्षत्रीत्व जाग पड़ा और वह भी अपने पति के साथ युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ती है। उस भयंकर संग्राम में 'जुझार सिंह' धँधेरे की मृत्यु हो जाती है। उनकी बहिन सुभद्रा विधवा हो जाती है।

पैले बगुरदा घाले अमान जू,
बहनोई गरद हो जाये।
दूजे बगुरदा घाले अमान जू,
लै लई धंधेरे की मूँढ़।
चंदन की लकड़ी कटबाई बुंदेला,
डरवाई बागन माँझ।
रनवासे खौं दये बुलाय,
बहनोई कौ दाग लगाय।

अपने हाथ से बहनोई का दाह–संस्कार किया। अपनी बहिन के वैधव्य की पीड़ा को देखकर उनका हृदय दहल गया। वे मन ही मन पछताने लगे। आक्रोश में आकर भारी अनर्थ हो गया। उनका मन ग्लानि से भर गया। अंत में राजा अमानसिंह ने अपनी छाती में कटार भोंक कर प्राणार्पण कर दिये। बहिन दुःखी होकर कह उठती हैं –

कौंना पै पैरें भइया हरीं पीरीं चूरियां,
कौंना पै सोलह सिंगार।
सोंना की पहनों बहना चूरियां,
खइयों डबा भर पान।
भौजइया पै करियौ राज।

बहिन– **चूले में बरजा भइया सोनें की चूरियां,**
मोरी काँच की अमर हो जाय।
ऐसे बचन सुन प्यारी बहना के,
अमना नें मार लई कटार।

राछरे में स्पष्ट संकेत हैं कि अन्तर्ग्लानि के कारण अमान सिंह ने कटार मारकर प्राण त्याग दिये थे। गाथा और इतिहास के कथन में कुछ अंतर दिखाई देता है। फिर भी गाथा को अनैतिहासिक नहीं कहा जा सकता है। मौखिक परम्परा और कल्पना के कारण लोकगाथा की कथावस्तु में अंतर आ गया है, किन्तु मूल घटना इतिहास के समीप ही है। पन्ना के राजा अमानसिंह बहुत ही लोकप्रिय शासक थे। एक लोकप्रिय ख्याल आज भी जन–जन की जबान पर है–

अरे काँ गये राजा अमान, काँ गये राजा अमान,
तुमखौं जे रो रईं चिरइयाँ।

अमानसिंह के दरबारी कवि 'मल्ल' जी ने उन पर एक सुंदर और सारगर्भित छंद लिखा था–

आज महादीनन कौ, सूखि गौ दया कौ सिंधु,
आज ही गरीबन कौ, गाथ सब लूटिं गौ।
आज–द्विज राजन कौ, सकल अकाज भओं,
आज महाराजन कौ, धीरज सों टूटि गौ।
मल्ल कहैं आज सब, मंगन अनाथ भये,
आज ही अनाथन कौ, कर्म सब फूटि गौ।
पन्ना कौ अमान सुरलोक कौ भूपाल भओं,
आज कवि जननकौ, कल्प–तरु टूटि गौ।।

ऐसे थे राजा अमान सिंह बुंदेला जिन्होंने महाराज छत्रसाल की परम्परा को अमरत्व प्रदान किया है। उनके श्री चरणों में मुझ अल्पज्ञ का शत–शत नमन।

कजरियँन कौ राछरौ

कजलियाँ बुंदेलखण्ड का सांस्कृतिक पर्व है। यह पारस्परिक प्रेम और अनुराग का प्रतीक है। लोग एक दूसरे को कजलियाँ देकर पारस्परिक प्रेम प्रदर्शित करते हैं। ये लोक–जीवन के आस्था और विश्वास का प्रतीक है। कजलियों की स्थिति को देखकर कृषि की सम्पन्नता और समृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। कजलियों का जितना सांस्कृतिक महत्त्व है, उतना ही सामाजिक महत्त्व भी है। बुंदेलखण्ड में इन्हें भुजरियाँ कहा जाता है। रक्षाबंधन के दूसरे दिन बहिन इन्हें अपने भाइयों और सगे संबंधियों को वितरित करती हैं। बहिनें अर्थात् बालिकाएँ बाजे–गाजे और धूम–धाम के सहित अपनी–अपनी कजलियों के खप्पर जलाशयों के किनारे ले जाकर खोंट–खोंटकर रख लेती हैं और शेष भाग जलाशयों में विसर्जित करके आनंदित होती हैं। फिर अपने भाइयों को वितरित करके प्रेम प्रदर्शित करती हैं। यह बुंदेलखण्ड की सांस्कृतिक परम्परा सैकड़ों वर्ष से संचालित है। हालाँकि इस प्रथा का शुभारंभ महोबा नरेश परमाल की राजकुमारी 'चंद्रावली' के कजलियों के उत्सव से हुआ है। जगनिक कृत 'आल्हा खण्ड' में बावन लड़ाईयों में भुजरियों की भी एक महत्त्वपूर्ण लड़ाई है। राजकुमारी चन्द्रावली, महोबे के कीर्तिसागर में कजलियाँ विसर्जित करने के लिए जिद कर रही थीं। आल्हा–ऊदल किसी कारणवश रूठकर कन्नौज चले गये थे। महोबा को सूना जानकर पृथ्वीराज चौहान ने महोबे पर घेरा डाल लिया था। वह प्रतिशोध की भावना

से प्रेरित होकर चंद्रावली का अपहरण करना चाहता था। वह एक विलासी शासक था। वह अपनी पुत्री के अपमान का बदला लेना चाहता था। परमाल को जब इसकी खबर मिली तो वे अपने को अकेला समझकर बहुत चिंतित हुए। आल्हा–ऊदल जैसे शूरवीरों को उसकी दुर्बुद्धि से महोबा छोड़कर कन्नौज में रहने को विवश होना पड़ा। अब दिल्लीपति की मार से महोबा को कौन बचाये?

अंत में महारानी ने कविवर जगनिक के द्वारा आल्हा–ऊदल की माता के पास पत्र भेजकर लिखा कि बेटा तुम्हारे प्रिय महोबे पर घोर संकट आ गया है। अब इस नगर की लाज तुम्हारे हाथ में है। हमारी सारी गल्तियों को क्षमा करते हुए परमाल–वंश की मान–मर्यादा की रक्षा कीजिये। संदेश पाते ही आल्हा–ऊदल कर्मभूमि की रक्षा करने हेतु शीघ्र ही महोबा पहुँच गये। वहाँ पृथ्वीराज चौहान की सेना महोबे को घेरे पड़ी थी। वह परमाल की बेटी चन्द्रावली का डोला सौंपने के लिए दबाव बनाये हुए था। इसी बीच में आल्हा–ऊदल योगी के वेश में युद्ध–भूमि में उपस्थित हुए। भीषण संग्राम हुआ। आल्हा–ऊदल ने अपनी तलवार के बल पर पृथ्वीराज की सेना को मार–मारकर खदेड़ दिया। महोबे की सेना ने हारी हुई बाजी जीत ली। चंद्रावली अपने भैया आल्हा–ऊदल को योगी वेश में पहचान गई। समाचार पाते ही राजा परमाल फूले नहीं समाये और महाराज ने दोनों भाइयों को बधाई देते हुए गले से लगा लिया। बेटी चंद्रावली ने बड़ी शान शौकत, आन–बान और मर्यादा से कजलियों को कीर्तिसागर में विसर्जित किया।

किसी लोक कवि ने इस लोकप्रिय और रोचक कथानक को 'राछरे' के रूप में वर्णित किया है–

उरई के शासक 'माहिल' (महीपाल) हालाँकि परमाल के राजमंत्री थे, किन्तु थे वे बड़े उपद्रवी और षड़यंत्रकारी व्यक्ति। वे कभी किसी का भला नहीं देख सकते थे। उन्हें हमेशा दूसरों का बुरा देखने में आनंद आता था। उन्होंने उल्टी–सीधी बातें कह सुनकर आल्हा–ऊदल और राजा परमाल में अनबन करा दी। आल्हा–ऊदल, परमाल से रूठकर कन्नौज चले गये। अब महोबा अरक्षित हो गया। पृथ्वीराज चौहान तो पहले से ही जला–भुना बैठा था। परमाल से अपनी पुत्री के अपमान का बदला लेना चाहता था। वह शुभ अवसर की प्रतीक्षा में था। इस सारे भेद से 'माहिल' परिचित था। माहिल को चंद्रावली के कजलियाँ पर्व का पता था। उसने पृथ्वीराज चौहान को पत्र लिखकर संदेश दिया कि आल्हा–ऊदल रूठकर कन्नौज चले गये हैं, जिससे महोबा सूना हो गया है। चंद्रावली कजलियां विसर्जित करने के लिए कीर्तिसागर के किनारे जायेगी। आप सेना का घेरा डालकर चन्द्रावली का अपहरण कर लेना–

महीपाल जुग पद्य लिख, चहूँ आन कहं सद्द।
दिखन कजरिया आव, मिस लैओ पकर करबद्द।

माहिल ने पत्र लिखकर पृथ्वीराज चौहान से कहा–

माहिल पत्री भेज लिखी चहुँआन के।
करहु कूच ततकालसु माडिम धाम को।।
श्रवन मास की पर्व आन छल किज्जिये।
दीन सुरच के हन्त राज कहँ दिज्जिये।।
महीपाल भूपत चरा पठ वाइय,
इक्क अहन बिच सिबिर कराइअ।
उतियु अहन बिच धाय न बिन्नव।
चहूँ आनकह पत्री दिन्नव।

पृथ्वीराज चौहान ने पत्र पाकर उत्तर दिया–

सनद बंच समार धनी, गुरु कवि चंद सुनाय।
चरकों प्रति उत्तर लिखौ, मानस मंत्र झुकाय।
सब सामन्तन सैन सह, चहूँ आन नृप बुल्ल।
कीरत सर–कहँ चालिया, मम सुपिष्ट लग चल्ल।
सज्ज से सामंत सब, बज्जत घोर निसान।
दिखन कजरियां सम्मरिय, नगर महोत्सब जान।

पृथ्वीराज के आदेश से सेना सुसज्जित हो गई–

सजे संजबराय पुंडीर चंद्रम,
सजे सूर नरसिंग मेथमं सुभद्रा।
सजे बिझुक्कु राजं सुतोभर प्रहार,
सजे दाहिमा आततई सुवीरं।
सजे निद्दु रायं सुधांसु सुधीरं।
सजे बीर हरसिंग पज्जून रायं।
सजी सर्व सेना सजुथाम करायं।
सौ सावंत पृथ्वीराज के, लुख्ख लख्ख पै एका।
पाँच धवल चंदेल के, सौ सावंत पै एका।

ऐसी स्थिति देख देवल देव आल्हा को पत्र भेजकर बुलाया था। पत्र आल्हा को जगनिक ने दिया और सब कह सुनाया–

सुन जगनिक की बात, आल्हा बुल्लिय तब बानिय।
लुट्टि महोबो नगर कुट्टि, चंदेल गुमनिय।

आल्हा ने विचार किया–

बिना चूक परिमाल कियौ, हम देस निकारय।
काम आव दसराव सबै, नृप काम सुधारव।
पड़हार सैन आगे धरहु, चुगल चार हित काम सहा।
सावंत सुक्खम मुख लरहु, जुद्ध करहु चहुँ आन सहा।

जगनिक के बचन–

सुनि जगनिक यह बात बखानिय, हम तो राजा कछू न जानिय।
हम सिर बंध महोबो रव्यब, नृप चंदेल चुगल दिग दिप्पव।

महोबे की रक्षा हेतु देवलदे का आल्हा को पत्र मिलने पर वह महोबे की रक्षा और माता के वचन निभाने को तैयार किया।

आज अबेरा गढ़ महुबे पै, सो सब राखै भवानी लाज।
अंगुरी कट जाय छिंगुरी कट जाय,
कट जाय चार छितरियंन मांस।
टारे न टरबीं हम खेतन से, जौलों रहें देह में सांस।
उगत जुनैया के चल दैहैं, महुबे पौच भुक भुके जाय।

महोबे के रण स्थल पर होने वाले युद्ध का वर्णन –

जुरे आय वीर दोइ सैंन बारे।
सुभर अव्य दृष्टम महा क्रुद्ध भारे।
चले तीर नेजा बंदूकैं बरच्छी।
पर फुट्ट न्यारे महातेज कच्छी।
पृथ्वीराज हनके सतम सूर धाये।
गई फौज चंदेल ने चल्ल खाई।
सबै सूर थक्के अचित्रं विचित्रं।

दयौ पील वैटन छिक्को ब्रह्म जित्तम।
बिचल चमू परमाल की, समर न आयस अंच।
ब्रह्मजित कुमार संग, रये सूर दस पंच।

इसके बाद आल्हा–ऊदल के योगियों के वेष में आकर जो भयानक युद्ध हुआ, उसका वर्णन करने से रोम–रोम खड़े हो जाते हैं–

चलो पिष्ट चहुँआन निस्सान बज्जे,
मनो मेघ आसाड़ के नाद गज्जे।
इतै जोग सिंगी सुमुख्खम बजावैं,
सुनें व्योम देवं सुमेघं लजाबैं।
तबै ब्रह्म जित्तं सुयं अश्व छिन्नों,
चढ़ो लग्घु जोगी सुअंत साह–किन्नों।
तबैं हिरन गिन्नों बाज–बाजी सुपायो,
करो खम्म जयकाल खौं जघ्घ ठायो।
तबै जोगि हत्तम मनुज असत्र लिन्नों,
संत वीर के सीसी दो–दो सुकिन्नों।
भगी फौज पीथल्ल की जोगि जानं,
गयो अश्व पेलत जहां चहूं आनं।
हनो राज पीलंगिरौभूम आये,
पकर जोगि हन्तसुराजं उठाये।
तबै आय गुरू चन्द्रवानी उचारं,
अहो जोगि ईसं सुराजै न भारं।

पृथ्वीराज चौहान युद्ध में आहत हो गये। चन्दबरदाई ने उनकी रक्षा की और उन्होंने योगियों के रण कौशल की प्रशंसा की।

तबै चन्द गुरू राय सन्मुख्ख आयं,
भयौ राज मुरछा सुपीलं चढ़ायं।
कहै चंद जोगी बड़ौ जुघ्घ किन्नों,
भगी फौज जो जन्नं चारं परिन्नों।

ये घमासान युद्ध कई दिनों तक चलता रहा। कभी दिल्ली की सेना और कभी महोबे की सेना की हार–जीत होती रही। धीरे–धीरे भाद्रपद कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का

शुभ अवसर आ गया। रानी मल्हना और चन्द्रावली के डोले सज–धजकर नर नारियों के दल–बल सहित कीरत सागर के किनारे पहुँचकर विधि–विधान से कजलियाँ विसर्जित की। दोनों फौजों में घमासान युद्ध हुआ। योगी वेश में तलवार चलाते हुए आल्हा–ऊदल ने पृथ्वीराज चौहान की सेना को महोबे के बाहर खदेड़ दिया। चंद्रावली का कजलियाँ महोत्सव विधिवत सम्पन्न हो गया और माहिल का सुनियोजित षडयंत्र विफल हो गया। पृथ्वीराज चौहान परास्त होकर बैठ गया।

राछरे की भाषा पर डिंगल (राजस्थानी) का प्रभाव दिखाई देता है। बीच–बीच में बुंदेली शब्दावली का प्रयोग किया गया है। यह डिंगल और बुंदेली का मिश्रित स्वरूप है।

राछरे का सामाजिक स्वरूप– कजलियों का यह सांस्कृतिक पर्व भाई–बहिन के प्रेम का प्रतीक है। रक्षाबंधन के पुण्य त्योहार से लगा हुआ पुण्य–पर्व है। इस त्योहार के कारण बहिने इस पर्व की महीनों से प्रतीक्षा करती रहती हैं। इस पर्व की परम्परा बहुत प्राचीन है। चंदेल–काल की बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी में इस पर्व के संकेत 'चन्द्रावली के राछरे' या 'आल्हा खण्ड' की कजलियों की लड़ाई में दिखाई देते हैं और आज भी बुंदेलखण्ड में प्रतिवर्ष भाद्रपद कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को यह पर्व आयोजित किया जाता है। सैकड़ों वर्ष के बाद आज भी महोबे में प्रतिवर्ष बड़ी धूम–धाम से मनाया जाता है। इन पर्वों के कारण समाज में सांस्कृतिक जाग्रति उत्पन्न होती है। लोग मानवीय सम्बन्धों के मूल्य को भलीभाँति समझने लगते हैं। समाज में इन पुण्य–पर्वों का प्रसार–प्रचार करने से सांस्कृतिक चेतना जाग्रत होगी।

उरग कौ राछरौ

बुंदेली लोक–साहित्य एक अगाध महासागर के समान है, जिसमें अनेक बहुमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। रत्नों की प्राप्ति तो सच्चे गोताखोर को ही हो सकती है। संत कबीर ने अपनी एक साखी में सत्य ही कहा है –

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठि।
हौं बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठि।।

बुन्देली साहित्य में अनेक आदर्श–प्रधान, मार्गदर्शक और शिक्षाप्रद लोकाख्यान भरे पड़े हैं, जिनसे जन–जीवन को लोकोपयोगी शिक्षा प्राप्त होगी। अभी तक बुंदेली के राछरों में वीरों के शौर्य का चित्रण किया है। उनके रण कौशल और उनकी तलवार की कलाबाजियों पर राछरेकार न्यौछावर रहे हैं। लोक साहित्य विशेषज्ञों ने 'राछरे' का

अर्थ ही 'संघर्ष' या द्वन्द युद्ध माना है। किन्तु बुंदेलखण्ड में कुछ ऐसे भी राछरे प्रचलित हैं, जो प्रेम–प्रधान हैं। उनकी दिशा पति–पत्नी के प्रेम परिपालन की ओर है। इसका एक आदर्श और मार्ग–दर्शक उदाहरण है– 'उरग कौ राछरौ'। प्राचीनकाल में सती प्रथा प्रचलित थी। पतिव्रता स्त्रियाँ पति की मृत्यु होने पर सती हो जाती थीं। आज भी बुंदेलखण्ड के गाँवों में सतियों के चबूतरे और चीरे गढ़े हुए है जो इस प्रथा के प्रतीक हैं। कभी–कभी इस प्रथा की विपरीत स्थिति भी दिखाई देती है। पुरुष भी पत्नी–वियोग में 'सता' हो जाते हैं। ये सब प्रेम का ही अतिरेक है। इसके कुछ उदाहरण भी प्राप्त होते हैं। मुंशी अजमेरी जी का 'हेमला सत्ता' नाम का एक ग्रंथ है, जिसमें 'हेमला' नाम के पत्नी भक्त के 'सता' होने की कहानी है। उसी प्रकार 'उरग के राछरे' में एक पत्नी भक्त के सता होने की कथा वर्णित है।

इस राछरे में एक अलग कौटुम्बिक परिवेश की झाँकी दिखाई गई है, जिसमें अनुराग और स्त्री प्रेम को प्रमुख स्थान दिया गया है। विवाह–सूत्र की पवित्रता और उसके प्रति ढृढ़ आस्था प्रदर्शित कर एक पत्नी व्रत के भाव की परम्परा की पुष्टि की गई है। ये राछरा इसी प्रकार के प्रेम और अनुराग का काव्य है, जो अन्य भाषाओं के साहित्य में दिखाई नहीं देता है। 'उरग' शब्द को विद्वानों ने किसी सेना की नौकरी से जोड़ा है, जिसे एक कठिन कार्य माना जाता है। जो पारिवारिक दायित्व से भी बढ़कर माना जाता है। ये राछरे प्रायः वर्षा ऋतु में गाये जाते हैं। इनमें पारिवारिक व्यक्तियों के विलग होने की टीस है तो दूसरी ओर चाकरी से आर्थिक लाभ प्राप्त होने के संकेत हैं। जो हर घर–परिवार की एक सामान्य कथा है। इस राछरे में दाम्पत्य प्रेम का एक उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। उरग की चाकरी को प्रस्थान करने वाला पति अपनी पत्नी को समझाता है कि अर्थार्जन करने के लिए परदेश जाना आवश्यक है। मैं बहुत सी सम्पत्ति लेकर शीघ्र ही लौट आऊँगा।

वह अपनी पत्नी को अपनी माता जी के सहारे घर छोड़कर परदेश चला जाता है। उसकी माता कर्कशा स्वभाव की थी। पुत्र के परदेश जाते ही सास का व्यवहार पुत्र–वधू के प्रति विशेष कर्कश हो जाता है। वह वधू बहुत ही भोली–भाली और सरल स्वभाव की थी। सास के कष्ट सहन करते–करते उसका प्राणान्त हो गया और वह अपने पति से नहीं मिल सकी।

उसका पति परदेश से जब लौटकर आया तो उसे अपनी पत्नी की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ। सुनते ही उसके हृदय पर भारी आघात लगा। अन्तर्ग्लानि से उस का मन भर गया। वह उस महान–पीड़ा को सहन नहीं कर सका और उसका प्राणांत

हो गया। वह मरकर अपनी प्रियतमा से जा मिला और समाज के समक्ष पति–पत्नी के आदर्श प्रेम का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया, जो जन–जन के लिए एक अनुकरणीय कथानक है। राछरे का प्रमुख स्वरूप इस प्रकार है–

कठिन उरग की चाकरी

पति का पत्नी से कथन–

सबके उरगिया चले उरग खौं,
तुमउं कहौ तौ हम जाय।
कछू दिनन कर चाकरी,
धन उर धान्य कमाय।
कठिन उरग की चाकरी।

पुत्र का माँ से कथन–

बहुआ तुमारी नौंनी लाड़ली,
छोड़त तुमरे अधार।
नैंन पुतरियँन राखियों,
दै बिटियँन सौ दुलार।
कठिन उरग की चाकरी।

माँ के वचन–

जाव–जाव बेटा उरग कर आवो,
सम्पत ल्याव कमाय।
तुमरी दुलरिया गले की दुलनियां,
राखौं संवार–संवार।
लला मोरे कठिन उरग की चाकरी।

पति उरग को प्रस्थान कर जाता है, तब सास का छल–छद्म प्रकट होने लगता है–

सासो ने हँड़िया में,
छौंक लगां दये करिया नाग।
खा लो मोरी बहुआ,
लला तुम जाइयों पाइयो।

इस गाथा में सास के कपटाचरण के दर्शन हो रहे हैं। समाज में सास–बहू की अनबन के उदाहरण भरे पड़े हैं। श्रवण कुमार लोकगाथा में अपनी कुल्टा–पत्नी के कपटाचरण के कारण श्रवणकुमार को अपने अंधे माता–पिता को काँवर में बैठाकर तीर्थाटन को जाना पड़ा था। इस गाथा में वर्णित सास का आचरण कितना निंदनीय है, जिसके मन में अपनी एक मात्र भोली–भाली पुत्र–वधू की हत्या करके पुत्र का अकल्याण चाह रही हैं। अंत में वे अपनी पुत्र–वधू और पुत्र से हाथ धो बैठती हैं। ऐसी माता को माता कहना उचित नहीं है। ऐसी माताएँ निंदनीय और दण्डनीय हैं।

सर्प को खा लेने वाली बहू मोरी कठिन उरग की चाकरी। उससे आदमी कैसे बच सकता था?

खातन प्रान तजे बहूरानी,
आये उरगिया फेर।
सासो जू बोली रिसानी परी हैं।
धनियां तुमारी कुबेर।

देखिये! माता कितनी कपटिनी है? जो अपने पुत्र से असत्य भाषण कर रही है। जान–बूझकर विष खिलाकर पुत्र वधू को मार डाला और पुत्र के सामने झूठ बोल रही है। ऐसी माताएँ नागिनी की कोटि में आती हैं।

लला मोरे कठिन उरग की चाकरी।

पुत्र वचन लौटकर आने पर–

पानी न पीहौं न खैहों मताई।
दैहों धना संग प्रान।

माता वचन–

पानी पियो बेटा, भोजन करौ तुम,
दूजी धना दैहों आन।
लला मोरे कठिन उरग की चाकरी।

पुत्र एक पत्नीव्रत था। वह कहता है–

दूजी धना कौ कहा करौ माई।
ऐई संग दैहों प्रान।

सात भंवरिया कौ बाँधौ वचन मैं।
पूरौ करो परमान हो माता।

और अंत में वह अपनी पत्नी के साथ ही प्राण त्याग देता है। एक ही चिता पर उन दोनों की अन्त्येष्टि हो जाती है। इस प्रकार धना का पति अपनी धनियां के साथ 'सता' होकर एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

सत्ता–सत्ती जगत भये जाहर,
सबरन खौं देव सुहाग।
चीरन उरग उरगिया खुदा दये,
अमर भये अनुराग हो माता।
कठिन उरग की चाकरी।

(ये गाथा (लोकाख्यान) कलश बुंदेली भाषा साहित्य से उद्धृत किया गया है।)

इस राछरे में दाम्पत्य–प्रेम का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। एक पति प्राण–त्यागकर निश्छल पत्नी व्रत का उत्तम आदर्श प्रस्तुत करता है। सत्ता–सत्ती के वास्तविक स्वरूप को समाज के समक्ष रखना आवश्यक है, जिससे लोग उसके वास्तविक मूल्य को समझ सकें। प्रायः निःसंतान पुत्र–वधुओं का अपमान हुआ करता है। उरगिया की पत्नी निःसंतान थी। इसी कारण से उसकी सास ने उसे विष खिलाकर मार डाला था। हालाँकि यह घटना सामाजिक दृष्टि से अशोभनीय थी। उसने अपने पुत्र के साथ घोर अविश्वास किया था। जो एक माता के लिए निन्दनीय कार्य है। ऐसे प्रेमोत्सर्ग की भावना बुंदेली काव्य में बहुत कम दिखाई देती है। बुंदेली लोक साहित्य एक अगाध महासागर के समान है, जिसमें अनेक बहुमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। जहाँ 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' की उक्ति चरितार्थ होती है। पतिव्रता नारियों की लोकगाथाएँ तो अनेक हैं, किन्तु पत्नीव्रता के उदाहरण बहुत ही कम होंगे।

महारानी लक्ष्मीबाई कौ राछरौ

कविवर मदन मोहन द्विवेदी 'मदनेश' जी का बुंदेली लोक साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान है। वे एक सिद्धहस्त उच्च कोटि के कवि और महान विचारक थे। उन्होंने अनेक स्फुट रचनाएँ लिखीं थीं, किन्तु उनकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कृति थी–'लक्ष्मीबाई कौ राछरौ' जिसका संपादन डॉ भगवानदास 'माहौर' ने सन् 1984 ई. में 'मदनेश ग्रंथावली' के रूप में किया था। लक्ष्मी बाई राछरे में टीकमगढ़ राज्य के दीवान 'नत्थे

खाँ' और महारानी लक्ष्मीबाई के विवाद और युद्ध का वर्णन है। इसी वीर काव्य के एक छंद का शिल्प देखने योग्य है–

तब तक ताने वान लीनी है मिलाय तान,
झाँक झुक झाने आँग दीनी जो झड़ाक दै।
घारे घहरात थहरात लौ लपक्की तब,
तमक्की तड़ित सीमा तड़की तड़ाक दै।
मदन महीप जापै बैठीं गढ़ टोली पंति,
तागज गरै पै गोला गड़की गड़ाक दै।
भारी है दीमान जानें जारी है निसान वह,
पर्वत समान पील पटकौ पड़ाक दै।

लक्ष्मीबाई कौ राछरौ 'कविवर' मदनेश जी की बुंदेली भाषा की एक अमूल्य धरोहर है। इसमें ओज और शौर्य का उत्कृष्ट स्वरूप दिखाई देता है।

झाँसी के मुरली मनोहर मंदिर के सामने मैदान में नवरात्रि का प्रसिद्ध मेला लगा था। मंदिर के चबूतरे के ऊपर महारानी लक्ष्मीबाई विराजमान होकर मेले का आनंद ले रही थीं। टीकमगढ़ की महारानी 'लड़ई सरकार' के दीवान नत्थे खाँ महारानी लक्ष्मीबाई से ईर्ष्या रखते थे और समय–समय पर अँग्रेजों को उनके विरुद्ध भड़काया करते थे। उसी बीच दीवान नत्थे खाँ हाथी पर बैठकर मेले की भीड़ में उपस्थित हुए। हाथी के कारण मेले में भगदड़ मच गई। रानी ने रंग–भंग होने का कारण पूछा, तो लोगों ने बताया कि एक हाथी पर सवार व्यक्ति मेले में घुसकर उपद्रव कर रहा है। यह सुनकर महारानी आश्चर्यचकित होकर सोचने लगी कि ये ऐसा कौन सामर्थ्यवान व्यक्ति है, जो मेरे सामने मेले में उपद्रव करने की हिम्मत कर रहा है। इस घटना का वर्णन कविवर 'मदनेश' जी ने राछरे में किया है–

दोहा– मुरलीधर मंदिर बिसै, डारो तखत सुपान।
श्री महारानी लक्ष्मीबाई, तहाँ विराजी आन।।

कवित्त– ताही समैं चढ़कैं गजेन्द्र पै पठान आन।
घुसो घमासान आन, देत है उठेला कौ।
हाथी को महावती ने, बीच बिचलाय राखौ।
चारो ओर झूमें झुकैं, हल्ला भयो हेंला कौं।

कवि मदनेश' आय बाई के अगाड़ी अड़ौ।
हटतन पील लखौ, कारन झमेला कौं।

भगे नर–नारि भीर छटकैं मैंदान भई।
महा रस रंग कर दयौ भरे मेला कौ।

मेले का रंग–भंग होता हुआ देखकर महारानी जी ने तिलमिलाकर कहा –

दोहा– बाई ने दीनों हुकम, को यह काकों आय।
कहौ वेग लैं जाय गज, ऊधम रहो मचाय।

कवित्त– दीनों हुकम जाय कैं सिपाइ समझाय कई।
को हौ आये कासैं तुम नैंक नईं सरमात हौ।
मेला माह कैसों तुम ऊधम मचाय राखौ।
देख कैं पराओ सुख, नेंक न सिहात हौ।

कवि मदनेश' जगत रानी जू विराजी यहाँ।
तिनकौ हिये में तनक न भय खात हौ।
मान लेव जाऔ न घटाऔ मान मान जाव।
सोच कैं बताऔ अब जात कै न जात हौ।।

सुनते ही नत्थे खाँ क्रोधित होकर बोला–

दोहा– नत्थे खाँ बोला तबैं, वचन सहित अभिमान।
टीकमगढ़ दीवान हम, सुन अबला नादान।।

इतना कहकर नत्थे खाँ खून का घूँट पीकर बदला लेने की प्रतिज्ञा करते हुए मेला छोड़कर चला गया और उसने तत्कालीन अंग्रेज वायसराय से मिलकर झाँसी पर आक्रमण करा दिया। और तो और तत्कालीन टीकमगढ़ महारानी 'लड़ई सरकार' ने अंग्रेजों की सेना के साथ अपनी सेना भी भेजी थी। यही कारण है कि स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में टीकमगढ़ की तत्कालीन महारानी 'लड़ई सरकार को गद्दार की संज्ञा दी गई है। जाते–जाते नत्थे खाँ टीकमगढ़ महाराज की प्रशंसा करने लगा–

जानें बौ बुंदेलखण्ड मंडल महीपत खौं।
महीन्द्र जासौ महेन्द्र नाम पायो है।
छाजत छिती पै छत्र राजन में नाम बड़ौ।

छत्रिन के वंश में बुंदेला नाम गायो है।
ताके दीवान हम न जाने को जहान बीच।
जान कहें को जो कहाँ से कौन आयो है।।

नत्थे खाँ स्वयं सेना लेकर झाँसी पर जा धमका। कवि ने झाँसी की भवानीशंकर तोप का वर्णन किया है–

चतुरंगिनी सैन सज करकें, नत्थे खाँ चढ़ आया।
डेरा डाल दिया झाँसी पर, रण का बिगुल बजाया।
दुर्ग–द्वार पर बुंदेलों की, चमक उठीं तरवारें।
कर्ण भेदकर हृदय गूँजती, वीरों की हुंकारें।
देख दुर्ग चढ़ दृश्य वीर, बाला ने हुकम सुनाया।
शीघ्र गुलाम गोस खानें, झुककर आदाब बजाया।
चढ़ी दुर्ग पर तोप भवानी, शंकर सुमर भवानी।
और तोपची ने जिसके, पूजन की रीति बखानी।
चलती जब यह प्रथम, एक सैनिक की बलि लेती है।
फिर बन काल रूप अरिदल में, प्रलय मचा देती है।
सुन गाथा सैनिक दल से, इक वीर सामने आया।
और भवानी शंकर पर, बलि देने शीश झुकाया।
देख दृश्य रानी नयनों में, बही अश्रु की धारा।
शिथिल हुए सब अंग कमल वन, मानो तुषार का मारा।

रानी ने भाव–विभोर होकर कहा–

तुच्छ राज पर निरपराध का, खून नही बहने दूँगी।
विधवा के इस वीर बहादुर को, नहीं मैं मरने दूँगी।

अंत में लड़ते–लड़ते महारानी लक्ष्मीबाई की विजय हुई और नत्थे खाँ पराजित होकर टीकमगढ़ लौट गया।

राजा पारीछत कौ राछरौ

राजा पारीछत जैतपुर नरेश थे। ऐतिहासिक दृष्टि से यह भलीभाँति स्पष्ट है कि राजा पारीछत महाराज छत्रसाल के वंशज थे। महाराज छत्रसाल के पुत्र जगतराज के तीसरे पुत्र का नाम पहाड़ सिंह (सन् 1758–65 ई.) था। उनके पुत्र का नाम गजसिंह

और गजसिंह के पुत्र का नाम केशरी सिंह था और केशरी सिंह के पुत्र का नाम 'पारीछत' था। जो सन् 1839 ईं. में जैतपुर के राजा थे। उन दिनों बुंदेलखण्ड में अंग्रेजों का अनाचार और अन्याय बहुत बढ़ चुका था। बुंदेलखण्ड के राजा उनके विरोध में खड़े हो गये थे। सन् 1840 ई. में जैतपुर नरेश पारीछत ने सर्वप्रथम अंग्रेजों के विरूद्ध क्रांति का शंखनाद किया था। अतः उन्हें सर्वप्रथम स्वतंत्रता संग्राम सेनानी कहा जा सकता है। उनकी रगों में अपने पूर्वजों का शौर्य रक्त प्रवाहित हो रहा था तथा अंग्रेजों के अन्याय से तिलमिला उठे थे। क्रोधित होकर सन् 1834 ईं. में विरोध का बिगुल बजा दिया था। उन्होंने 'बुढ़वा मंगल' उत्सव का आयोजन करके राजाओं और जागीरदारों को एकत्रित किया था। उन्होंने सरीला, जिगनी, ढुरबई, विजना, चिरगाँव, ओरछा, छतरपुर, पन्ना, बिजावर, शाहगढ़, बानपुर, दतिया, समथर, अजयगढ़, गौरिहार, कालिंजर और बाँदा नरेश को सम्मिलित करके क्रान्ति का बिगुल फूँका था।

डॉ श्याम बिहारी श्रीवास्तव ने 'भारतीय इतिहास के कुछ पहलू, डॉ भगवानदास गुप्त स्मृति ग्रंथ के अपने शोध लेख पृष्ठ 337 पर लिखा है जिसमें जैतपुर के राजा पारीछत बुंदेला और अंग्रेजों के विरूद्ध सन् 1837 ई. में युद्ध का वर्णन है। इसी स्मृति ग्रंथ के पृष्ठ 300 पर डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने 'पारीछत कौ कटक' का संकेत किया है। और कटक के प्रमुख अंश प्रकाशित किये हैं। इसके रचयिता का नाम पं. भइया लाल दुबे छतरपुर अंकित है। कुछ विद्वान इसे द्विज किशोर का मानते हैं। कुछ विद्वान इसे पारीछत कौ राछरौ के नाम से पुकारते हैं। राछरे का शुभारंभ माँ सरस्वती और गणेश वंदना से प्रारंभ हुआ है–

दोहा– पती प्रबल प्रहार के, सब राजन सिरताज।
जाहिर जम्बू द्वीप में, पारीछत महाराज।

सोरठा– बुड़वा मंगल कीन, श्री रतनेश नरेश ने।
जुड़े सकल परवीन, कौल भगौती शीश पै।

दोहा– जब दीछत विनती करें, सुनो नाथ इक बात।
कैनो कितने आपके, पैसा कितनौ रात।

सोरठा– तुरत उठे खिसयाय, तुम मरबे को डरत हो।
गौरीनाथ सहाय कैउ, खजानें समझ लखाय।

दोहा– दीछत कहूँ जोई कीजिए, जैसो आप दिखाय।
हम हारे हर भाँत हूँ, अपनी समझ लखाय।

सैर– समझ कहीं दीछत नई आन तोड़ियों।
कलकत्ता से हुकम गिरे जोंन बाँटियों।
अँगरेज मुलक मालिक तासों ना रूठियो।
लाहौर धनी केते कछू नईं करत है।
होलकर समेत सिंधिया हिये डरत हैं।
राजा रईस बड़े–बड़े डंड भरत हैं।
गोरन की कठिन मार टारे न टरत हैं।।8।।

इस छंद में अंग्रेजों की शक्ति और सामर्थ्य का चित्रण किया गया है–

दोहा – दीछत डगर डाग का, इनसे भी मजबूर।
राव साव नानर के, दाखिल हाल हुजूर।।9।।

राजा पारीछत ने आसपास के राजाओं और जागीरदारों को एकत्रित करके अंग्रेजों की छावनियों को लूटने की तैयारी कर ली। सेनाओं को सुसज्जित कर लिया–

सैर– कर पास रची राजा फौजें हरावली।
धौसा पै हुआ धौसा पकरी सुगम गली।
बगमेला उठी रार कटीला की अत भली।
पनवारी के नगीच राव से धली।।10।।
सब कहैं चलो चलिए का अजब दाव है।
ललकार सुनी लौट परे धन्य राव है।
राजपूत से सपूत जौन जो उछाव है।
लर गये मर्द मर गये नहीं बचाव है।।11।।

समस्त बुंदेली वीरों ने एक साथ मिलकर अंग्रेजों के खजानों पर हमला बोल कर लूट लिया।

दोहा– गिरी डाक अंग्रेज की, लियो खजानों लूट।
मन भाई सी कर गये, गये तिलंगे फूट।।12।।

सैर– हुरदंग हल्ला हुल्ल कछु अये घाट में।
अंगरेज चला झाँसी से का करना हाट में।
पैला मुकाम किया आन मऊ सहार में।
दिन रात दौर दाखिल भये कुल पहार में।।13।।
तियै रतन सिंह लिखी किलों छोड़ दीजियो।

जो लड़ना मंजूर अगर जंग लीजियौ।
हुसयारी से अपनौ बंदोबस्त कीजियौ।
भली कहै डंगई के नाहक न सीजियौ।।14।।

संदेश प्राप्त होते ही सारे बुंदेला राजा अपने–अपने किलों से सुसज्जित होकर बाहर निकल पड़े–

जा खबर सुनी किलों छोड़ बाहर निकर परे हैं।
सजे साज–बाज तोप ज्वान जोस भरे हैं।
समज लई जिनने जे करम करे हैं।
कोई पंचम पारीछत क्या रन में भरे हैं।।15।।
इक खबर पाई फौज परी कोई ठौर पै।
रम पुरिया हैं दौरे बढ़े–चढ़े छोर पै।
बंद हुआ लाम लसकर साहब की गौर ना।
महराज किया कूच परें मोरो जोर ना।।16।।

पारीछत महाराज की क्रान्तिकारी गतिविधियों को देखकर अंग्रेजों की सेना ने जैतपुर के किले को घेर कर हमला कर दिया–

दोहा– आई फौज अंग्रेज की, लियो जैतपुर घेर।
खड़ा छबीला साह का, इकट–विकट चहुँ फेर।।17।।

गाथाकार ने कितने सुंदर ढंग से अंग्रेजों की सेना की साज–सज्जा का वर्णन करते हुए लिखा है–

चारउ फेर चमचमाती किरचें नंगी।
चकबंदी सा घेर लिया किलो फिरंगी।।18।।
लाला दिमान आन मिलो उनको अंगी।
कोई विगट बगौरा में परा बंका जंगी।
अंग्रेजन की फौजें आई बहुतई घनी।
दोनउं दल–दंगल की जुर आई अनी।
काल का उर जोगिनी आनंद की सनी।
छत्रसाली खुसयाली काली रहै बनी।।19।।
आ गई लिखा लाट की पाती विलात से।
इत कुछ किया सरजंट दोपहरण रात से।

बाँधे हैं विकट नाका महाराज घात से।
पैरी पसार क्लांत भई सिपाई हैं सात सैं।।20।।
थैली का ज्वान गाफिल छरीदा दिया गया।
नौ बेर दई बत्ती अपने हिया डगा।
आया हरीफ हर बल तब छोड़ कै भगा।
तासे हुसेन बगस तोप ने दई दगा।।21।।
इत फौज डगमगानी जित दिया चाल कौ।
अंग्रेजन की लोथें गई लाल–बाल कौ।
नैचें जिमी में पुरादेत जियत चाल कौ।
जे जखमी जस भागे ते असपताल कौ।।22।।

दोहा– खप्पर भरती कालका, शंभू भरते बैल।
विकट बगौरा समर में, जो गिनती जरनैल।।23।।

सैर– जरनैल कहूँ गिरतो नदी बहै रूछछी।
तरवार तुबक तीर चलै बल्लम बरछी।
जा मगर तोप ढाल कच्छ तेगा मछ्छी।
रूंड मुंड सुंड बिना हो गयो कछ्छी।।24।।
लाखौ ज्वान पूरब कौ सब कुछ भरतो।
जरनैल जंग जगी सो कैसो लरतो।
पंचम नरेस नख भर नई याखों डरतो।
देती न दगा तोपैं तौ भौ भारथ परतो।।25।।

दोहा– काट छबीना कट गये, उर छत्रिन कौ रंग।
पारीछत महाराज को, दओ पारीछत संग।।26।।

राजा पारीछत के क्रांति समर में केवल उनके स्वामी भक्त सिपाही ही सहयोग दे सके। अधिकांश लोग तो अंग्रेजों से भयभीत होकर उनका साथ छोड़कर चले गये।

सैर– जिन संग दियो उनकौ जिनकरी नौन की।
राखी न खबर आगर अपनें भवन–भौंन की।
अंगरेज जिमी जब्त करी जाजलौन की।
पारीछत की सुमी करें दम कौन की।।27।।

दोहा– लड़ई–गड़ई सी फूटकें देस नकियाऊ कोस।
लिडुआ पैलें पार के, गये राजा को गोस।।28।।

सैर– मजबूत सिंघ मूलका झाँसी में किया है।
छत्री न होई छत्री को सौंप दिया है।
अंगरेज लिख तीन महीने के टिया पर है।
दुरजन बिचार भजौ राम सिया पर है।।29।।

अंग्रेजों से भयभीत और अंग्रेजों की फूट नीति के कारण सारे बुंदेला राजाओं ने पारीछत का साथ छोड़ दिया और अब वे अकेले ही रह गये।

दोहा– कैसो दिन कैसी घरी, लओ बाम ने पूंछ
बन मृगया कौ मिस करो, राजा कर गये कूच।।30।।

राजा पारीछत जैतपुर छोड़कर बगौरा चले गये। इतनी भारी अंग्रेजों की सेना का सामना करना कठिन था।

सैर– कर कूच जैतपुर से बगौरा पै मेले।
चौगान पकर गये मंत्र अच्छौ खेले।
बगसीस भई ज्वानन खौं पगड़ी सेले।
सब राजा दगा दै गये नृप लड़े अकेले।।31।।
कर कुमुक जैतपुर पैचढ़ आयों फिरंगी।
हुसयार होउ राजा दुनिया है दुरंगी।
जब आन परी सिर पै भये कोउ न अंगी।
अरजट खात जफा हाथ राजा है जंगी।।32।।

दोहा– एक कोद अरजंट गओ, एक कोद जरनैल।
डांग बगौरा की घनी, भगत मिलें ना गैल।।33।।

सैर– अंगरेज कुमुक करी अगर आया चढ़कैं।
जेरिन को मिला नकसा आगे सें लड़कैं।
सूरन के मनै चैन खड़े कायर भड़कैं।
कर त्यारी भारी पारीछत ने मारे बड़कैं।
जांगा खौं जपत कर लेव न जानौ मरा।
अंग्रेज कहैं राजन खौं चढ़ गओ गरा।

पौंचे हैं डांग बीच कामदेव के करा।
तब एक बेर तोप कौ भर मारौ छरा।।34।।

दोहा– परजा में बैठे हते, कर राजा असनान।
बिगुल बजी अंगरेज की, भीर पौंच गई आन।।35।।

सैर– दो मारे कवि तान बिगुल बाँसुरी वालौ।
चढ़ आये ते लरबे को करें मन में लालौ।
मंत्रन नें मंत्र करो नहीं बोलो चालौ।
ना जियत जान पाबैं जौ टोपी वालौ।।36।।
इक इक बड़गैनिन ने दो दो फोरे।
दो हते तरवार घालैं मन में मोरे।
मंत्रिन ने मंत्र करो हाथ प्रभु से जोरे।
लागा के लगत भगे कटी पूँछ के घोरे।।37।।

दोहा– नृप पारीछत के लरें, गयो निखर कैं तेज।
जात हतो लाहौंर खौं, अटक रहौ अंगरेज।।38।।

सैर– सब सोच चलो राजा मन के बिचार में
मरबे खौं नई डरनै। करबे की रार में।।
मंत्रिन ने मंत्र करों भीर रहें हार में।
चौदया गये अंग्रेजन बुंदेलन की मार में।।39।।
तक लये पहार जिननें, खंदक करील ते।
भारत के सूरवीर खाँ ना हीन को हते।
कई को कैउ गवनें की करी है गतैं।
पैल बगौरा में राजा की भई हैं फतैं।।40।।

दोहा– सब राजा राजी लये, पर पारीछत भूप।
जात हती हिंदुवान की, राखौ सबकौ रूप।।41।।

पारीछत की पराजय का कारण उनके ही कामदार थे। उनके ही कर्ता–कामदारों ने उनके साथ धोखा किया था। प्राचीन काल से ही भारत की यही परंपरा रही है–

सैर– प्रथम जो नसाओ काम कामदार नें।
सुभ सोध चला राजा जप पूँछ बामनें।
टारे से न टरहै जो लिखी रामनें।

अंगरेज मुलक मालिक के लरों सामनें।।42।।
सुभ हुइहै नृपत कौ खरग लेत में।
अब चढ़ आयो अंगरेजई पै ज्वाब देत में।
मिलनें ना कछू हमकौ निसचर के हेत में।
तब सात सौ जवान चढ़ रहे हैं खेत में।।43।।

राजा पारीछत ने निर्भीक होकर अंग्रेजों की छावनियों में आग लगाकर तहलका मचा दिया था–

एक बेर फुकी छावनी, सब जुर मिल तापौं।
लरबे की सान मन में न कठरोई चापौ।
रघुवीर है सहाइ नाम हर कौ जापौ।
दूसरे सिमरिया पै डारौ छापौ।।44।।
छोरे ना हतयार नृपत दिना सात लौ।
तक–तक कै डारे छापें चूकैंना घात लौ।
सब कदू पास अपने जौ रही बात लौ।
राजा ने जंग मारी खबर है बिलात लौ।।45।।

दोहा– **बसत सरसुती कंठ में, जस–अपजस कवि गाइ।**
छत्रसाल के छत्र की, पारीछत पर छाइ।।46।।

सैर– **जोलों ना लक्ष्य डगा भरी सवनें हामी।**
जब काम परो सरक गये नमक हरामी।
माँ रच्छा करी आनकै और गरुण गामी।
जय राजा जैतपुर के भये ग्रामी नामी।।47।।
रन के निसान देखो चौगान में गड़े।
सूरवीर देखौ दोइ–कोद हो खड़े।
उनसे विमुख भये जो दरजे पै ना चढ़े।
तुम पारीछत राजा अंगरेज से लड़े।।48।।

दोहा– **द्रुपद केसरी सिंह ने, कछू न राखो मेर।**
आन परी ती सीस पै, काटी बल्लम टेर।।49।।

सैर– **जो प्रथम जंग मारी तो दई बावनी।**
जोलौ हाँतन पूजी लगती सुहावनी।।

काहू ने सैर भाखे काहू ने लावनी।
अबके हल्ला में फुकी जात छावनी।।50।।

दोहा– परसराम बावन भये, मच्छ रूप धर कच्छ।
हरि कीनों हर–भाँति सौ, परीछत कौ पच्छ।।
सुरभि चरावन हरि सुनें, कालिन्दी के तीर।
पारीछत महाराज की, पच्छ करी रघुवीर।।51।।

पारीछत कौ राछरौ साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से एक मूल्यवान कृति है। वे जन–जन के लिए एक लोकप्रिय और प्रजापालक शासक थे। जन–जन के मन में उनके प्रति अटूट श्रद्धा का भाव रहा है। लोक गाथा में सत्य ही कहा गया है–

बसत सरसुती कंठ में, जस–अपजस कवि गाइ।
छत्रसाल के छत्र की, पारीछत पर छाइ।
पढ़ते किसोर सैर, ढुलक बाजैं गतकी।
दिन–दिन सवाई साहवी, श्री पारीछत की।
वीर वंस छत्रसाल कौ, कीरति सुकवि सुकाहि।
पारीछत नर नाहि की, सब नृप जोहैं राहि।।

अनेक लोक कवियों ने उनके देश–प्रेम, शौर्य की प्रशस्ति का गायन करते हुए लिखा है–

पारीछत बड़े महाराज, किले के लानें जोर भांजई राजा नें
चरखारी मंगल रची, सब राजा लये बुलाय।
पारीछत मुजरा करें, राजा रये मुख जोर।
गुर्जन–गुर्जन रोई पतुरियां, गजमाला रोई खवास।
ठाँढ़ी बिसूरें मानिक चौक में, कोउ नइयाँ पीठ रनवास।
किले पार खाई खुदी, दोरे हते मसान।
भैसासुर छिड़िया थपें, दरवाजे पवन हनुमान।
कै सूरज गाहन परे, ना नगर में मच गई हूल।
कोउ ऐसों दानों पजो, सूरज भये अलोप।
ना सूरज गाहन परे, ना नगर में मच गई हूल।
महाराज उतरे किलें सें, सूरज भये अलोप।
पैली न्यांव धंधूवा भई, दूजी री कछारन माँह।

तीजी मानिक चौक में जहाँ जंग नची तलवार।
अरे बावनी में जोर भंजा लओ राजा ने।

(बुंदेलखण्ड की संस्कृति का इतिहास– डॉ नर्मदा प्रसाद गुप्त)

कल्याण सिंह कौ राछरौ

बुन्देलखण्ड में कुछ ऐसे साहसी और वीर अवतरित हुए हैं, जिनके मन में देश प्रेम की अटूट भावना भरी हुई थी। उन्होंने शत्रुओं से लड़ते–लड़ते प्राणार्पण कर दिये थे। इसी प्रकार के एक अमर वीर बलिदानी थे कल्याण सिंह कायस्थ। जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में महारानी लक्ष्मीबाई का साथ दिया था। टीकमगढ़ दीवान नत्थे खाँ ने प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर बुंदेलों की सेना सुसज्जित करके झाँसी पर धावा बोल दिया था। उस समय कल्याण सिंह ने लक्ष्मीबाई के पक्ष में नत्थे खाँ से सामना किया था।

कल्याण सिंह सुप्रसिद्ध धीर कुंडरा के वंशज थे, जो गढ़ कुंडार के कायस्थ परिवार में उत्पन्न हुए थे और पेशे से कानूनगो थे। आपके ईश्वरी प्रसाद और रंजीत नाम के दो पुत्र थे। उनके मन में वीरांगना लक्ष्मीबाई से अटूट श्रद्धा थी, उन्होंने दीवान नत्थे खाँ की सेना से घोर संग्राम किया था। जरा देखिये ये युद्ध का रौद्र रूप–बुंदेली शब्दावली में–

दिसा चारहू से हिंसा कीनौ।
दई दाग तौपैं करों कोट चीनौ।
उमंगै भरो जंग कौ अस्त्र लीनौ।
चढ़े घाट चाहत है नग्र छीनौ।
इतै नग्र रानी जुबानी उचारी।
सुनों सूर हौ पेज पालों हमारी।
लई सूर बर्छी कमानें कटारी।
बंदूकै गहीं जौंन सौ जौम धारी।
गजैं सूर सामंत मानें न हारी।।

युद्ध का भयानक दृश्य देखने योग्य है:–

भयौ सोर दुँह ओर ते सोर भारी।
खड़ी कोट औहै लखें उग्र नारी।

भले ओड़छे के भले हैं सिपाई।
मुबारक फतै तोप छारैं लगाई।
चले तीर पै तीर तोपैं तराई।
फटें हैं किवारे परी है लराई।
घलै बान बर्छी घलै तेग न्यारी।
सुगौलीन गोला कृपानें मलैती।
कटारी कमानें घलै बेग सैती।।

एक और युद्ध का वीभत्स दृश्य देखिये–

गुरज गुमानी गिरै गाज के समान।
तहाँ एके बिन मथ्थै एकैं ताके समरथ्थे।
एकै डोलें बिन हथ्थें रन माँचो घमसान।।
जहाँ एकै एक मारै एकै भुव में चिकारैं।
एकैं सुर पुर सिधारैं सूर छोड़ छोड़ प्रान।
तहाँ बाई नें संबाई अंगरेज सौं भजाई।
तहाँ रानी मरदानी झुक–झारी किरवान।।

रानी की वीरता का इतना सुंदर चित्रण अन्यत्र देखने को प्राप्त नहीं होता है। उनकी मोर्चा बंदी आज के योद्धाओं के लिए अनुकरणीय है–

लगो मोरचा रात कैं, गनपत गिर के द्वार।
आयो पुन रनधीर जहँ, राव पलेरा बार।
तोप तुपक चटकन लगी, भई भोरई रार।
कोट ओट तजकैं कड़ौ, कुंवर कटीली बार।।

गनपत पलेरावारे, राव रनधीर और जवाहरसिंह कटीला वारे आदि ने रानी झाँसी के साथ युद्ध में अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष किया था। कल्याण सिंह कुंडरा ने रानी के अदम्य साहस और शौर्य का वर्णन करते हुए स्वतंत्रता की अलख जगाई थी।

मथुरावली कौ राछरौ

बुंदेलखण्ड में कुछ ऐसी वीर बालाएँ अतरित हुई हैं, जिन्होंने अपनी आन–बान–शान, मान–मर्यादा, अपने पातिव्रत धर्म और सतीत्व की रक्षा हेतु प्राणार्पण कर दिये थे। उनमें से चंद्रावली और मथुरावली का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वीरांगना मथुरावली का आत्म बलिदान बुंदेली लोक साहित्य में विशेष स्मरणीय और मूल्यवान है। इसमें मध्य

काल के मुगलों के अनाचार और स्वेच्छाचारिता की स्थिति का चित्रण है। इनमें तत्कालीन पारिवारिक फूट और पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष भी प्रदर्शित की गई है। मथुरावली के सगे चाचा ने मुगल शासक से साँठ–गाँठ करके मथुरावली के डोले को पकड़वा लिया था। मुगल शासक तो विलासी हुआ ही करते थे। वे उसे बीबी बनाकर काबुल ले जाना चाहता था। मथुरावली के पिता, ससुर और भाइयों ने मुगल को अनेक प्रलोभन दिये, किन्तु वह उसे किसी भी तरह छोड़ने को तैयार नहीं हुआ। मथुरावली को अपनी आन–बान–शान और पातिव्रत का पूरा ध्यान था। उसने पानी का बहाना करके मुगल को तंबू के बाहर भेज दिया और अवसर पाकर तंबू में आग लगाकर प्राणार्पण कर दिये। भारतीय नारीत्व की परम्परा का इससे बढ़कर उदाहरण और क्या हो सकता है? गाथाकार ने गाथा के प्रारंभ में ही पारिवारिक फूट और ईर्ष्या–द्वेष की ओर संकेत किया है–

सगौरी काका बैरी भयौ,
ल्याओं तुरकिया चढ़ाय।
बंदी परी है मथुरावली।

इस भारत में विभीषण और जयचंद्र जैसे कुटुम्ब–द्रोही लोग पैदा हुए, जिनके कारण देश की पावनता में कलंक का काला दाग लगता आया है। बुंदेलखण्ड में इसी के आधार पर अनेक कहावतें भी प्रचलित हो गई हैं। जैसे– 'घर के कुरवा से आँख फूटत' या 'घर कौ भेदी लंका ढाबैं।' वियोगी हरि जी ने अपने एक दोहे में इसी प्रकार के भाव प्रकट किये हैं–

भरो विभीषण पुंजते, यह भारत ब्रह्मांड।
क्यों न होय गृह भेदते घर–घर लंका कांड।।

बीच मार्ग में उसके डोले को रोककर शिविर में रखवा दिया गया। वह अपने बंदी बनने का समाचार आसमान में उड़ती हुई चील के द्वारा प्रेषित करती है–

सरग उड़ती चिरहुली, आंधे सरग मड़राय।
जाय जौ कइयौ मोरे राजा ससुर सों।
सास सौ कइयों समझाय।
बंदी परी है मथुरावली।

ससुर को पुत्र–वधू के बंदी होने का समाचार प्राप्त होते ही घबड़ाहट हो गई। वे विविध प्रकार के उपहार लेकर मुगल के समीप उपस्थित हुए–

ससुर मिलाऔ हो चले।
लै चले हतिया हजार।

उपहार प्रस्तुत करके ससुर साहब ने मुगल से कहा–

लै रे मुगला के जे हतिया।
बहू तो छोड़ों मथुरावली।

किन्तु मुगल उनके हाथियों को अस्वीकार करते हुए कह उठता है–

तेरे हतियंन कौ मैं का करौं,
मेरे हैं गदहा हजार।
एक न छोड़ौ मथुरावली।

मुगल उसके आकर्षक सौंन्दर्य की प्रशंसा कर रहा है–

जाके लम्बे–लम्बे केश भोंहैं कटीली।
नैना रस भरे लै जाऊँ काबुल देश।
बीबी बनाऊँ मथुरावली।

मथुरावली को तुर्क ने भेंट लेकर छोड़ने से मना कर दिया तो वे सेना को लेकर मुगल पर चढ़ आये, किन्तु उस शक्तिशाली मुगल का कुछ भी नहीं बिगाड़ सके और पराजित होकर लौट गया। मथुरावली ने अपने भाई को आश्वासन दिया कि –भैया आप निश्चिन्त होकर घर लौट जाइयेगा, मैं अपने कुल, खानदान और मर्यादा की रक्षा करूँगी। आप अनावश्यक खून नहीं बहाइयेगा–

बिरन मिलाऔ हो लै चलें,
लै चले तेगा हजार।
बंदी परी है मथुरावली।

बहिन अपने भैया कौ समझाकर कहती है–

जाऔ बिरन घर आपने,
राखोंगी पगड़ी की लाज।
बंदी परी है मथुरावली।

मन में आत्म–बलिदान का दृढ़ संकल्प करते हुए मुगल के समक्ष प्यास का बहाना बनाकर मुगल से कहती है–

जारे मुगला पानी भर ल्या।
प्यासी मरें है मथुरावली।

मुगल मथुरावली की प्यार भरी बातें सुनकर लोटा लेकर शिविर के बाहर पानी भरने चला गया। इसी बीच में एकांत पाकर मथुरावली ने तम्बू में आग लगाई और खड़ी–खड़ी जलने लगी–

जोलौं मुगला पानी खौं गओ।
तम्बू में दै लई आग।
ठाँढ़ी जरै मथुरावली।

मथुरावली अपने आत्म बलिदान का प्रसार–प्रचार करना चाह रही थी। जिससे समस्त नारी समाज को सतीत्व और पातिव्रत की शिक्षा प्राप्त हो सके। उसने ढोलिया को नाक की बेसर देकर प्रसारण के लिए प्रोत्साहित किया–

नाक की बेसर ढोलिया तोय दऊं।
ऊँचे चढ़ ढोल बजाऔ।
ठाँढ़ी जरें मथुरावली।

आग के कारण मथुरावली के केश और अंग–प्रत्यंग सुलग रहे थे, वह निर्भीक होकर खड़ी–खड़ी जल रही थी–

अंग जरैं जैसे लाकड़ी,
केस जरें जैसें घास।
ठाँढ़ी जरें मथुरावली।

मथुरावली की मृत्यु का समाचार सुनकर उसके पतिदेव दुःखी होकर रोने लगे, किन्तु उसके भाई मान–मर्यादा की रक्षा के लिए आत्म–बलिदान की बात सुनकर प्रसन्न हुए–

रोय चले बाके बालमा,
विहँस चले बाके वीर,
ठाँढ़ी जरें मथुरावली।

उसका भाई अपनी बहिन की प्रशंसा करते हुए प्रसन्न होकर कहने लगता है–

राखी बहना पगड़ी की लाज,
ठाँढ़ी जरें मथुरावली।

अपना बुंदेलखण्ड इस प्रकार की अमर–बलिदानी नारियों के त्याग, तपस्या और बलिदान के लिए प्रसिद्ध रहा है। भारत ही नहीं सारा विश्व इस प्रकार की अमर वीरांगनाओं के चरणों में नत–मस्तक रहा है। धन्य वे माताएँ और बहिने जिन्हें शत्–शत् नमन।

लाखनसिंह कौ राछरौ

वीरगाथा काल में कुछ ऐसे महावीर पुरुषों और देश–प्रेमियों के उदाहरण सामने आये हैं, जिनकी दृष्टि में विषय–वासना और भोग–विलास की अपेक्षा देशप्रेम अधिक महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान था। वे नव–परिणीता वधुओं के प्रेम और आकर्षण को त्याग कर रणभूमि में कूदकर प्राणार्पण कर देते थे। लाखनसिंह, धनसिंह और हिन्दूपति नाम की लोक गाथाओं में इस प्रकार के अमर वीरों के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

कन्नौज के राजा जयचंद्र के राजकुमार लाखनसिंह का विवाह हुआ। वह अपनी नव–परिणीता परम सुंदर वधू के साथ चंद दिवस भी व्यतीत नहीं कर पाया और बीच में अचानक शत्रुओं ने उनके राज्य पर आक्रमण कर दिया। ऐसी स्थिति में राजकुमार लाखनसिंह को युद्ध स्थल में पदार्पण करना आवश्यक था। वे नव परिणीता सुंदर वधू को छोड़कर युद्ध भूमि की ओर प्रस्थान करने लगे। उस समय उनकी वधू के साथ मार्मिक संवाद हुआ, जो इस राछरे का मूल–विषय है–

रानी – हे महाराज! आप भूखे युद्ध स्थल की ओर प्रस्थान नहीं कीजिये। भोजन की सारी सामग्री सुसज्जित रखी है। आप कुछ समय के लिए रूक जाइयेगा, मैं जेवनार तैयार कर रही हूँ। आप भोजन पाकर ही पधारियेगा–

चाँउर चकोटन मैंने धोकैं धरै,
घी में मोकैं कनक उर दार।
घरियक बिलमों मोरे बालमा,
तुमरी धनियां तपै जेवनार।।

कितनी मधुर और मार्मिक पदावली है। शब्दावली की तरह उसकी भोज्य सामग्री में भी अधिक माधुर्य है।

लाखन – इस समय राजकुमार लाखनसिंह को भोजन करने के लिए अवकाश

नहीं है। उनकी दृष्टि में राज्य की रक्षा सर्वोपरि है। वे अपनी महारानी को सलाह देते हैं–

चाँउर चिरइयँन खौं चुनवा दियो,
बामनें दे दो कनक घी दार।
मोरौ पनवारौ उर ही में परो,
परसा ठाँढ़ो चौंड़िया राय।।

चौड़िया राय नाम सुनकर ऐसा लगता है कि जयचंद्र के किले पर पृथ्वीराज चौहान की सेना ने आक्रमण किया होगा। उन दिनों दिल्ली और कन्नौज में परस्पर विरोध चलता था।

रानी – महारानी का कुछ ही दिन पूर्व वैवाहिक संस्कार सम्पन्न हुआ था। उसके पाँवों का महावर और हाथों की मेहंदी अभी छूटी भी नहीं थी और उसका पति युद्ध के लिए प्रयाण कर रहा है। वह अपने पति के सामने प्रणय निवेदन कर रही है–

पाँव महावर अरे छूटे नईं,
छूटी नईं काजर की रेख।
दाग हरद के अरे छूटे नईं,
कन्ता लरन जात परदेश।
संग न छोडूं मैं पिय तुमरो,
जानें कहा रची करतार।
आगे–आगे डोला मोरौ चल है,
पाछूँ हथिनी चलैं तुमार।।

लाखन – अरे मेरी प्रियतमा! क्या तुम पागल हो गई हो। युद्ध क्षेत्र में जाने का कार्य तो केवल पुरुषों का ही होता है, महिलाओं का नहीं। आप तो आनंद से सतखण्डा पर बैठकर डब्बों के आनंद से पान चबाइयेगा। जब मैं विजय प्राप्त करके लौटूँगा, तब मोतियों से मैं तुम्हारी माँग भर दूँगा–

कब–कब छिरिया, अरे मरकऊ भई,
कबै अंडउवँन परे हैं सार।
कबै–कबै तिरियां जूझैं रन में,
जो तैं लैन चहत तरवार।
बैठी रइयों रानी सतखंडन,

सुख सैं खइयों डबन के पान।
जीत जँगरिया जब घर लौटें,
मोतिन मांग भरा दैहों आन।।

रानी – हे मेरे प्रियतम! जिस प्रकार चंदा के बिना रात, जल के बिना नदी और पुत्र के बिना परिवार निरर्थक सा लगता है, उसी प्रकार पुरुष के बिना नारी का जीवन किसी काम का नहीं है। आपके बिना आपके सतखण्डा डब्बे में रखे हुए पान किसी काम के नहीं हैं। आपके बिना सारा संसार मेरे लिये सूना है–

रैन विहूनी अरे चंदा बिना,
नदिया लगैं बिना जलधार।
बंस बिहूनों लगै बेटा बिना,
तैसई बिना पुरुष की नार।
बर जांय जर जांय तोरे सतखण्डा,
उर पानन पै परें तुसार।
एक अकेले तोरे जियरा बिना,
मोखों सूनौ लगे संसार।।

इस राछरे में संवादात्मक रचनाधर्मिता देखने को मिलती है। इसमें एक पत्नी के मर्म को स्पर्श करने वाली नारी के मार्मिक भाव प्रदर्शित होते हैं। एक ओर नारी का पातिव्रत और योद्धा का कर्मक्षेत्र युद्ध है। युद्ध में विजय प्राप्त होने पर यश प्राप्त होता है और यही एक वीर का श्रृँगार है। सच्चा योद्धा कभी युद्ध से विचलित नहीं हो सकता। लाखन सच्चे वीर के पुत्र थे। वे युद्ध से विमुख नहीं हो सकते थे। एक ओर कर्त्तव्य और दूसरी ओर नवोढ़ा पत्नी का आकर्षण। उन्होंने कर्त्तव्य को सर्वोपरि समझकर महारानी का परित्याग कर दिया था। यही सच्चा वीरत्व है।

ढोला–मारू कौ राछरौ

यह महाभारत कालीन लोक गाथा है। ऐसा कहा जाता है कि ढोला महाभारत कालीन नरवरगढ़ नरेश राजा 'नल' के पुत्र थे। राजा नल को चौपड़ के पाँसे सिद्ध थे। उन्हें द्यूत–क्रीड़ा में कोई पराजित नहीं कर सकता था। प्रायः ऐसा कहा जाता था–'राजा नल के पाँसे, जब परें साँसे के साँसे।' समय तो परिवर्तनशील है। एक बार द्यूत–क्रीड़ा में राजा नल अपने भाई 'पुष्कर' से पराजित हो गये और जुए में सारा राज–पाट हार गये। उन्हें नरवरगढ़ छोड़कर महारानी सहित परदेश जाना पड़ा। कुछ

विद्वानों का मत है कि राजा नल भटकते–भटकते सिंहल द्वीप पहुँच गये थे और वहाँ जाकर गंगू तेली के यहाँ नौकरी कर ली थी। गंगू के माध्यम से उनका परिचय सिंहल द्वीप के राजा 'बुध' से हुआ। उनके परिचय में इतनी घनिष्ठता हुई कि शैशवकाल में उनके पुत्र ढोला का विवाह मारू के साथ हो गया। कुछ विद्वान इस मान्यता को नकारते हुए यह मानते हैं कि राजा नल निर्वासित होकर 'मारवाड़' (राजस्थान) चले गये थे। वहीं महारानी 'दमयंती' से 'ढोला' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ था और वहीं शैशव–काल में मारवाड़ के राजा की राजकुमारी 'मारवणी (मारू)' के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। 'ढोला–मारू रा दूहा' नाम से राजस्थान की सुप्रसिद्ध और लोकप्रिय लोक गाथा है। राजस्थान की सम्पूर्ण गाथा दोहा छंद में वर्णित है। इसी कारण से नाम के साथ 'दूहा' जुड़ा हुआ है। बुंदेली लोक गाथा भी दोहा छंद में ही वर्णित है।

ऐसा कहा जाता है कि पिंगल देश के राजा बुध और राजा नल में घनिष्ठ मित्रता हो गई थी। उन दिनों दोनों राजाओं की महारानियाँ गर्भवती थीं। उन दोनों ने आपस में निर्णय लिया कि यदि हमारे यहाँ राजकुमार और आपके यहाँ राजकुमारी उत्पन्न होती है तो आपस में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर देंगे। अंत में ऐसा ही हुआ और दोनों का पालने में ही विवाह सम्पन्न हो गया। राजा नल का प्रवास काल समाप्त होने के बाद वे अपनी पुत्र–वधू 'मारू' को पिंगल देश में छोड़कर अपनी रानी और ढोला को साथ लेकर नरवरगढ़ लौट आये। और इधर मारू पिता के घर में बढ़कर युवती हो गई और उसे बार–बार पूर्व विवाहित पति का स्मरण होने लगा। इधर राजकाज में व्यस्त होने के कारण राजा नल अपनी पुत्र–वधू मारू को भूल गये। ढोला का तो पालने में ही विवाह हो गया था। उन्हें अपनी पूर्व विवाहिता पत्नी का कोई स्मरण नहीं था। पिंगल देश का मार्ग बहुत ही कठिन और दुर्गम था। उधर मारू अपने पूर्व विवाहित पति से मिलने के लिए लालायित रहने लगी। एक दिन एक हिरण और हिरणी के जोड़े को मृत पड़ा हुआ देखकर भाभी से प्रश्न किया–

बधत न देखे पायछे भौजी, घलत न देखे बान।
हम पूछें प्यारी भौजी तोसें, इनके कौन बिध कड़े प्रान।।

भाभी तुरंत ही उत्तर देती हैं–

जल धीरे नेहा लगे, लगी न समुद की धार।
तू पी तू पी कर दुई मरें, इनके ऐई विध कड़े प्रान।

उसने अपनी भाभी से फिर पूछा–

कै पिता कुल टाँचरे, कै दामन के बल हीन।
मोरी ज्वानी वय भई, बाबुल करे न ब्याव रे अलबेले.....

भाभी उसे सान्त्वना देती है–

ना पिता कुल टाँचरे, ना दामन के बल हीन।
डल्ली–डल्ला तोरी भाँवर परी, सो ढोलन के साथ रे।

यह जानते ही मारू व्याकुल होकर ढोला से मिलने का उपाय सोचने लगी। उसने हंस–हंसी के जोड़े द्वारा अपने प्रियतम ढोला के समीप प्रेम संदेश प्रेषित किया और वह रात–दिन प्रिय के वियोग में जलने लगी। रात–दिन उसकी आँखों से आँसुओं की धार प्रवाहित हुआ करती थी–

रोजऊं रसोइया रे मारू तपै, धुंआना के मिस रोय।
जब सुध आबै प्यारे छैल की, मन धरत नइयाँ धीर रे।

दूसरी बार तोते के द्वारा संदेश भेजकर वह रो–रोकर कह रही है–

काहे की कलमें करों, काहे की मसि जोत।

इसका उत्तर तोता देता है–

आँचर चीर कागज करों, नैनन की मसि जोत।
सो पैंती चीर कलमें करों, सो लिखों ढुलन के नाम रे।

मारू का संदेश लेकर तोता उड़ गया। उसे उड़ता हुआ देखकर मारू कहने लगती है–

उड़तन तौ गंगा ऐसे लगें, धरें न पाँव पछाँव।
खबर मोरी लै जइयों, जब गंगाराम कहाँय।

तोता उड़कर नरवरगढ़ पहुँच गया। उस समय ढोला एक वाटिका में विचरण कर रहे थे। तोता उन्हें पहिचानकर उनकी भुजा पर बैठ गया। ढोला ने उसके गले में बंधे हुए पत्र को पढ़ा। तब उसे अपनी पूर्व विवाहित पत्नी मारू का स्मरण हो आया। हालाँकि ढोला का विवाह रेवा के साथ हो चुका था। ढोला ने अपनी पत्नी रेवा से स्पष्ट

कह दिया कि यह तोता मेरी पूर्व पत्नी मारू का प्रेम संदेश लेकर आया है। तुम इसे प्रेमपूर्वक रखना। इतना कहकर तोते को रेवा को सौंपकर शिकार खेलने के लिए जंगल में चले गये। रेवा उसे अपनी सपत्नी का तोता समझकर उससे ईर्ष्या करने लगी। वह अवसर पाकर तोते को मार डालना चाहती थी। एक दिन वह ढोला का रूप धारण करके तोते के समीप पहुँची। तोते ने उसके सारे षड्यंत्र को समझकर कहा–

बोले गंगा जा कबैं, सुन ले राजा बात।
ऐसे राजा न तकें, जीके माथे पै बेंदी होय।

इतना कहकर तोता उड़ गया। कुछ समय बाद रेवा फिर भेष बदलकर पहुँची। उसे देखकर तोता फिर बोला–

बोले गंगा जा कबैं, सुन ले राजा बात।
ऐसे राजा न तके, जीकै नाक पुंगरिया होय।

कुछ समय बाद रेवा फिर उसके सामने पहुँचती है तो फिर तोता कहने लगता है –

बोले गंगा जा कबै, सुनले राजा बात।
ऐसे राजा हम न तकें, जीकी छाती गुमरियाँ होय।।

इतना कहकर तोता दूर भाग गया। रेवा अपने प्रयास में विफल हो गई और तोता उड़कर पिंगल देश पहुँच गया।

मारू ने तीसरा संदेश एक व्यापारी के द्वारा प्रेषित किया। मारू व्यापारी से प्रश्न करती है–

कोने देस जनमन रे तैंने धरे, कोना धरे औतार।
नाम सार दैरे भूमि कौ, फिर सारों धनी के नाम रे।
ना तौ हम तोरे ससुराल गैं, सुन लो लाला बात।
चीर भाँवर कौ लै जाइयों, सो दिइयों स्वामी के हात।

व्यापारी चीर लेकर चल दिया और नरवरगढ़ जाकर ढोला को सौंप दिया। मारू ने चौथा संदेश ढाँडू कक्का के द्वारा प्रेषित करते हुए कहा–

अँगना तौ सूके रे सूकनौ, वन सूकैं कचनार।
मारू धनिया सूकैं मायकें, जैसें हीन पुरुष की नार।
ढाँडू कक्का जात हौ, राजन कौं दियो समझाय।

जैसी तोरे रेवा बनी, तैसी मारू की लगी पनिहार।
ढाँडू कक्का जात हौ, राजन कौं दियो समझाय।
जैसी तोरी रेवा बनीं, मारू के तरवा होय।।
ढाँडू कक्का जात हौ, कंता कौं दियो समझाय।
मारू कलुरिया हो गई, लै लठिया चले आव।

अनेक संदेश प्राप्त होते ही ढोला, मारू से मिलने के लिए आतुर हो उठा। अंत में अपने पिता राजा नल की सहायता और देवीजी की कृपा से वह सकुशल पिंगल देश पहुँच गया और अपनी पूर्व विवाहिता रानी मारू को अपने साथ ले आया। इस गाथा में मारू के आदर्श और उत्तम चरित्र का चित्रण किया गया है। मारू एक भारतीय आदर्श चरित्र नारी थी। बाल–विवाहिता होते हुए भी उसने पातिव्रत और सतीत्व की रक्षा की थी। इस प्रकार की नारियाँ नारी समाज के लिए प्रेरणादायी होती हैं।

कुछ विद्वानों ने इसी गाथा के दूसरे रूप को प्रस्तुत किया है। राजकुमार ने जब होश सँभाला, तब उसे 'चंद्रावती' रानी के साथ विवाह होने का पता लगा। वे अपने एक प्रिय मित्र को साथ लेकर घोड़ों पर सवार होकर अपनी ससुराल के नगर की ओर चल दिये। चलते–चलते वे अपनी ससुराल के नगर के समीप पहुँच गये। वहाँ उन्हें तालाब के समीप एक अत्यंत सुंदर नारी दिखाई दी। राजकुमार उसे देखकर मोहित होकर बोला–

प्रीतम पाँव पलोंटियों गोरी, कर केसन की छाँव।
हमको गैल बताइयों गोरी, ऊँची करकैं बाँय।।

शीतल छाँह वाले गैल के वृक्ष खड़े हैं। उन्हीं के नीचे से गाँव की गैल जाती है। आप उसी के नीचे से चले जाइयेगा। मेरी बाँह में पीड़ा है, इस कारण से मैं अपनी बाँह नहीं उठा पा रही हूँ। राजकुमार को ऐसा उत्तर देकर वह घड़ा उठाकर चली गई। कुछ समय बाद वही पनिहारी राजकुमार को दूसरे कुआँ पर घड़ा लिये हुए दिखाई दे गई। राजकुमार ने उस पर व्यंग्य बाण छोड़ते हुए कहा–

बंद कुआं मुख साँकरों, उर अलबेली पनहार।
आँचर डारैं जल भरें, काऊ हीन पुरुष की नार।।

ऐसे व्यंग्य वचन सुनकर सहमते हुए पनिहारी ने उत्तर दिया, जो घुड़सवार के व्यंग्य वचनों से अधिक तीखा था, जिसे सुनकर राजकुमार लज्जित होकर बिना जल ग्रहण किये आगे बढ़ गया। पनिहारी ने कहा–

पीने होय पानी पियो, उर बोलौ वचन समार।
हम हंसन की हंसिनी, तुम कागा गैल गमार।।

अपने को हंस की हंसिनी और राजकुमार को काग कहने पर कुंवर साहब मन ही मन क्रोधित हो गये, किन्तु कर ही क्या सकते थे? क्रोध का घूँट पीकर रह गये। कुछ समय बाद चलते–चलते अपनी ससुराल के दरवाजे पर जाकर खड़े हो गये। कुछ देर बाद वही पनिहारी घड़ा लिए हुए वहीं पहुँच गई। घुड़सवार को दरवाजे पर खड़ा देखकर वह पिछवाड़े के दरवाजे पर खड़ी होकर खेप उतारने के लिए टेर लगाई। और वह मन ही मन सोचने लगती है–

जेइ घुड़ला तालन मिले, भौजी जेइ कुआं के पार।
जेइ घुड़ला दुआरैं ठाँढ़े, भौजी खिरकिन गगर उतार।

अपनी ननद की बात सुन विहँसती भाभी जी पाहुँने की पहुँनाई में लगी थी। वह जल्दी आई और ननद के सिर से गगरी उतारकर बोली–

चकई को चकबा मिले री ननदी, कमल सूरज की कोर।
आये तुमारे पाँवने री ननदी, जानें परहै भोर।।

इस संदेश को सुन ननदी आश्चर्य में पड़ गई और घुडसवार पुरुष को अपना राजा मान उसके साथ किये गये व्यवहार पर मन ही मन पछताने लगी। भाभी ने पाहुँने की आवभगत कर ठहराया और कुशलक्षेम पूछी। रात होते ही भाभी ने ननदी को चाँदी के थाल में छप्पन भोजन सजाकर राजा की बैठक में ले जाने को भेजा। वहाँ राजकुमार ने जब जान लिया कि तालाब और कुआँ पर मिली औरत ही उसकी रानी है, तो उसके व्यवहार से क्षुब्ध होकर उसको उसकी सजा देने की ठान बैठा था। इतने में उसकी रानी भोजन का थाल लेकर बैठक के द्वार पर खड़ी होकर कहने लगती है–

चंद्र वदन मृग लोचनी, राजा ठाँढ़ी आकैं द्वार।
कर जोर विनती करें, राजा खोलौ झँझर किवार।।

स्वयं अपने मुँह से अपने रूप का वर्णन करके पति के गुस्से को शांत करना चाहती थी। किन्तु राजा उसके अपमान से इतने अधिक आहत हो चुके थे कि क्रोध के कारण फिर किवाड़ ही नहीं खोला और न ही उसके हाथ का भोजन किया। और गुस्सा होकर कहने लगे–

तुम हंसन की हंसिनी, हम कागा गैल गमार।
तुम महलन मोती चुनों, हम जूठन करें अहार।।

रानी तो अच्छी तरह से समझ गई कि राजा हमारे व्यंग्य वचनों से क्रोधित हैं। किन्तु सच पूछा जाय तो उसकी कोई गलती नहीं थी। उसने तो परपुरुष जानकर ही ऐसे वचन कहे थे। वह बेचारी अपने पति को अच्छी तरह से पहचानती नहीं थी, किन्तु राजा को तो पुरुषत्व का घमण्ड था। उन्होंने नारी की विवशता को समझने का प्रयास नहीं किया। फिर भी अनजाने में अपनी भूल पर खेद व्यक्त करते हुए रानी ने फिर निवेदन किया–

अनजाने की बात कौ, राजा तुमई करो निरधार।
बीती ताय बिसार कैं, राजा खौलौ झँझर किवार।

इतना सब कुछ कहने के बाद भी राजा ने हठवश किवाड़ नहीं खोले तो रानी भोजन का थाल लेकर अंदर चली गई। भाभी उसको उदास देखकर पूछती है–

कैसे सुअना अनमने, उर कैसे वदन मलीन।
का भेटैं नईं साजना, जासों मुख–दुत छीन।।

ननद बिलकुल शांत बनी रही। अपनी भाभी को कोई उत्तर नहीं दिया। वे अपने मन की पीर को चुपचाप पीकर रह गईं।

सबेरा होते ही राजकुमार रानी की विदा कराकर चल देते हैं और रास्ते भर रानी से कोई वार्तालाप भी नहीं करते। चलते–चलते एक एकांत बगीचे में डोली को उतरवा कर रखवा देते हैं और कोई बहाना लेकर डोली को वहीं छोड़कर चले जाते हैं। ये नारी के साथ पुरुष की निष्ठुरता है। रानी का रंचमात्र भी अपराध नहीं था, फिर भी राजकुमार उसे जंगल में छोड़कर चले गये। रानी बहुत समय तक प्रतीक्षा करती है, किन्तु जब वे लौटकर नहीं पहुँचते तो रानी समझ गई कि राजा तो मुझे छोड़कर चले गये। बड़ी देर तक रोती रही। प्रतीक्षा करते–करते शाम हो गई। इसी बीच में उसे घोड़े की टाप सुनाई दी। तब कुछ आशा बढ़ी, किन्तु वह घुड़सवार उस बगीचे के राजा का सैनिक था, जो उस डोले में बैठी सुन्दरी का पता लगाने आया था। पूछने पर उसने सारी व्यथा कथा कह सुनाई–

कहाँ जाऊँ कैसी करों, कहा रची करतार।
निरजन वन में छोड़कैं, मोय गये भरतार।

राजा ने रानी की व्यथा सुनकर धैर्य धराया और उनसे राजमहल चलने का आग्रह किया। किन्तु वह सच्ची पतिव्रता नारी थी। जहाँ उसका पति छोड़ गया था, वह वहाँ से जाना नहीं चाहती थी। उसे विश्वास था कि मेरा पति अपनी भूल को ध्यान में रखकर एक न एक दिन यहाँ अवश्य ही आयेगा। अंत में ऐसा ही हुआ अपने मित्र के समझाने पर राजकुमार ने अपनी गलती स्वीकार कर ली और अपनी रानी को देखने के लिए बेचैन हो जाता है। वह अपने मित्र के साथ रानी को खोजने के लिए निकल पड़ते हैं। मार्ग में एक भीलनी के लकड़ी के गट्ठे को उठाने का प्रयास करते हैं। भीलनी उन पर व्यंग्य बाण छोडती है –

धरत हुइयौ कैसें कंधन तुम, दीन प्रजा कौ भार।
उठत नईं तुमसें कऊँ जो, एक नार कौ भार।
हम डाँगन की भीलनी, उर नैंची जात गमार।
देखत में मौंको लगें, तुम दोऊ राजकुमार।
हँसी करत में रम गये, रस में रस सरसाय।
सोंस–समझ ऐसी जगाँ, करों मस्करी आय।।

इस लोक गाथा में पुरुष के मिथ्याचरण, हठवादिता और नारी के साथ किये गये अन्याय का चित्रण है, जो सारे पुरुष वर्ग को कलंकित करती है। रानी का सतीत्व और पातिव्रत सम्पूर्ण नारी समाज के लिए आदर्श और अनुकरणीय चरित्र है। परित्यक्ता होते हुए भी उसने पर–पुरुष की ओर आँख उठाकर देखा नहीं था। साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से लोक गाथा मूल्यवान है। इस प्रकार की लोक गाथाओं को पढ़कर और सुनकर समाज प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। मार्गदर्शन के लिए इस प्रकार की गाथाओं का प्रसार–प्रचार आवश्यक है।

राजा हिन्दूपति कौ राछरौ

भारत में सैकड़ों वर्ष तक अंग्रेजों का शासन स्थापित रहा है। ऐसा कहा जाता है कि अंग्रेजों के शासन में कभी सूर्य नहीं डूबता था। किन्तु सन् 1857 में भारत के राजा और प्रजा अंग्रेजों के विरूद्ध भड़क उठे थे। सहनशीलता की भी सीमा होती है। सन् 1843 ई. में राजा पारीछत ने सर्वप्रथम क्रांति की ज्योति जाग्रत की थी। झाँसी में महारानी लक्ष्मीबाई, रामगढ़ में रानी अवंतीबाई, बानपुर में राजा मर्दनसिंह और शाहगढ़ में राजा बखतबली शाह अंग्रेजों के विरूद्ध भड़क उठे थे। यहाँ के वीर सपूतों ने अपनी तलवारों के बल पर शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये थे। बुंदेलखण्ड के राजाओं में लोहागढ़

के राजा हिन्दूपति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने वीरतापूर्वक अंग्रेजों की विशाल सेना का सामना किया था। उनकी सेना में मुसलमान सिपाहियों की अधिकता थी। वे बड़ी वीरता और साहस के साथ अंग्रेजों की सेना से युद्ध करते रहे। उन्होंने लड़ते–लड़ते प्राण त्याग दिये, किन्तु पाँव पीछे नहीं किये।

सन् 1857 ई. में अंग्रेज सेनापति सर ह्यूरोज ने लक्ष्मीबाई को पराजित करके झाँसी पर अधिकार कर लिया था। इसके बाद वह आसपास की रियासतों को जीतना चाहता था। इसी सिलसिले में उसने जानजेज के सेनापतित्व में लोहागढ़ पर चढ़ाई कर दी। लोहागढ़ का राजा हिन्दूपति बड़ा ही वीर उत्साही राजा था। उसने बुंदेली संस्कृति की आन–बान और शान की रक्षा करने हेतु अंग्रेज सिपाहियों को ललकारा था। उनकी सेना में हिन्दुओं की अपेक्षा मुस्लिम सिपाहियों की संख्या अधिक थी। वे हिन्दुओं के साथ कंधा से कंधा मिलाकर प्राणार्पण करने को तत्पर रहते थे। लोहागढ़ निवासी 'रज्जब बेग पठान' अपनी नव–परिणीता वधू को छोड़कर युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ा था। घमासान युद्ध हुआ और दोनों ओर से सैकड़ों सिपाही हताहत हुए थे। राजा हिन्दूपति अपने प्रयास में पूर्ण सफल रहे। लड़ते–लड़ते प्राण त्याग दिये, किन्तु पाँव पीछे नहीं किये। राछरे में उनके शौर्य का जीता–जागता चित्र अंकित किया गया है। अंग्रेजों को चुनौती देते हुए लोहागढ़ के वीर ललकार कर कह रहे हैं–

लोहागढ़ कठिन मवास, फिरंगी झाँसी भरोसे न रहौ।
जहाँ तोप चले गोला चले, भाला की हुइयैं मार।
फिरंगी झाँसी भरोसें न रहौ।

गाथाकार युद्ध का वर्णन कर रहा है–

भई भोरतें लराई, अधिकाई मनभाई,
भारी भीर मुरकाई, भये थकित रथ भान।
उमड़–घुमड़ दल वेग के साथ चले,
छड़े कड़ावीन मार–तोप अगवान।
पैदल सें पैदल लरें शूरन से शूर लरें,
कायर कपूत के मुख कुमलान।
देवी राय यों बखान सों लखत देवतान,
भई जाहर जहान लोहागढ़ की कृपान।

लोहागढ़ के वीरों की तलवार की प्रशंसा सारे संसार में की जाती थी। उनकी तलवारों के वार देखकर अंग्रेज सिपाही दंग होकर रह जाते थे। गाथाकार ने लोहागढ़ के वीरों के रण कौशल का वर्णन किया है। जरा देखिये–

जानाजेज अंग्रेज की, को ओटें रणधीर।
लोहगढ़ के धन्य हैं, कटे बराबर बीर।

लड़ते–लड़ते अनेक वीर धराशायी हो गये जो इस प्रकार आत्म–बलिदान कर चुके थे–

चारक कटें भदौरिया, रज रक्खन रजपूत।
दो निसान तिल वंस के, साबित कटे सपूत।

हिन्दू सिपाहियों की अपेक्षा मुसलमान वीरों का उत्साह अधिक प्रशंसनीय दिखाई देता रहा–

छै पठान साबित कटे, नगर लुहारी खेत।
जाफर खाँ औ नूर खाँ, मिर्जा जस के हेत।
रज्जब बेग बखानिये, मल्ल–जुद्ध जिहि कीन।
पकर शत्रु के टेंटुवा, डार–खास में दीन।

दिनभर भयंकर युद्ध हुआ। दोनों दलों के सैकड़ों वीर योद्धा धराशायी हो गये। शाम को युद्ध विराम हो गया।

संजा–होतन बंद भओ, युद्ध फिरे सब ज्वान।
रज्जब नें तब आनकैं, माँके परसे प्रान।
बीबी ने हँस गरे सों, पिय खौं लियो लगाय।
पाँव पलोटे रात भर, दियला नेह जराय।।

दूसरे दिन फिर सबेरे से युद्ध का नगाड़ा बज उठा। सभी सिपाही सुसज्जित होकर रण–क्षेत्र की ओर चल दिये–

बजो नगाड़ौ जुद्ध कौ, ऐंन होतनई भोर।
चले खेत खौं शूरमा, बाँध–बाँध सिर मौर।।
रज्जब नें उठ कमर में, अपनी कसी कटार।
हिन्दूपति के सामनें, आकैं करी जुहार।

गाथाकार नंदकिशोर ने वीरों की साज–सज्जा और साहस का वर्णन करते हुए लिखा है–

झर–झर परत झिलन बख्तर टोप,
कोप कर किले पै लोहागढ़ बलवान।
साकिन लुहारी तलवार कौ बखान करें,
दुरग मकुंद से हठीले हनुमान।
प्रबल पठान नोंक राखी सिरे जाफरान,
राखी मिरजानी मिर्जा नें भरी आन।
राजा महाराजा हिन्दूपति कौ प्रताप बढ़ो,
नन्द हू किसोर झुक–झारी है कृपान।

योद्धाओं की वंशावली का वर्णन करते हुए गाथाकार विस्तारपूर्वक लिख रहा है–

चंद्र वंश में अवतरे, डरूसिंह अनुरूप।
जाकी वान कृपान की, समता करें न भूप।

इसी संदर्भ में गाथाकार के दो छंद और प्रस्तुत हैं–

गिरे पील से वीर दो पील वीर,
घने झुण्ड गोरण्ड के मुण्डमाल।
सुनाय निधान बखानें सुनाके,
बड़े खेत सिंह सुगम वीर बांके।
सात दिना नों जुद्ध भओ लोहागढ़ दरम्यान,
फिरे फिरंगी बचाउत अपनें–अपनें प्रान।

एक और समसामयिक छंद देखने योग्य है–

जुद्ध अंग्रेज विरूद्ध कियो गुज्जार सौं,
छूटत अराव धुआँ छायो आसमान।
तोप तड़क गर्जन सुन गोलन की,
छूटत बड़े मुनीश साहबन के ध्यान।
भनत मकुंद इतै कछिल तमंक लरो,
काट–काट लीने गोरन के प्रान।
राजा महाराजा हिन्दूपति कौ प्रताप बढ़ो,
नंद हू किसोर झुक झारी है कृपान।
कटे शूर सामंत वर हिन्दूपति की वान,
प्रान–दान दै राख ली लोहागढ़ की शान।

हिन्दूपति के समान अनेक वीरों ने मातृभूमि के श्री चरणों में प्राण–प्रसून समर्पित कर दिये थे, जिनका विस्तृत वर्णन इतिहास में नहीं है। लगता है कि इतिहासकार इन हस्तियों की अनदेखी करते रहे हैं, किन्तु लोक साहित्य में यह मूल्यवान सामग्री बिखरी पड़ी है, जिसे बटोरने के लिए कर्मठ और लगनशील हाथ चाहिए और इसको देखने के लिए सूक्ष्म दृष्टि। तभी इनकी सुरक्षा संभव है, अन्यथा ये समस्त मूल्यवान सामग्री विस्मृति के गर्त में विलीन हो जायेगी।

राजा धनसिंह कौ राछरौ

बुंदेली संस्कृति में शकुन–अपशकुन को प्रमुख स्थान दिया जाता है। ये सारा अनुभवजन्य और भुक्त भोगी लोगों का ज्ञान है, जो सत्यता के बहुत समीप है। कहा भी गया है– 'प्रत्यक्षं किं प्रमाणं'। वयोवृद्ध लोगों की सलाह मान्य होती है अन्यथा– 'जो न मानें बड़न की सीख, लै खपरिया माँगै भीख।' इस गाथा में शकुन–अपशकुन पर विशेष विचार किया गया है। बाबा तुलसी ने मानस में अनेक स्थलों पर शकुन साधने की चर्चा की है। छींक, आँख फड़कना, सर्प, हिरण अथवा पशुओं का मार्ग काटना, खाली घड़ा, मार्ग में काना मिल जाना। अपशकुन सूचक माना जाता है। इस गाथा में शकुन पर विशेष विचार किया गया है।

यह बुंदेलखण्ड की प्रमुख लोकगाथा है। गाथा का कार्य क्षेत्र झाँसी और बरूआ सागर के आस–पास का है। इस लोक गाथा को इकतारे के साथ जोगी, फकीर और ब्रजवासी गा–गाकर भिक्षा माँगते हुए विचरण करते हैं। राछरे के कथानक को सुनकर ऐसा लगता है कि यह लोक गाथा ब्रिटिश कालीन है, जो सन् 1857 की क्रान्ति पर आधारित है। सन् 1857 में अंग्रेजों ने बुंदेलखण्ड के छोटे–छोटे रजवाड़ों पर हमला करके उन पर अधिकार कर लिया था। उस समय अनेक बुंदेला वीर मातृभूमि की रक्षा करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। उन्हीं वीरों में से एक 'राजा धनसिंह' थे, जिनका बुंदेलखण्ड के इतिहास में उल्लेख है। इतिहास में बताया गया है कि धनसिंह ओरछा और बरूआ सागर के बीच स्थित 'सुनौनिया' के जागीरदार थे। वे एक बहादुर और साहसी जागीरदार थे। अंग्रेजों ने उसकी जागीर की गढ़ी पर हमला कर दिया। इतना सुनते ही धनसिंह आग–बबूला हो गये और अकेले ही घोड़े पर सवार होकर सामना करने पहुँच गये। जाते समय अनेक अपशकुन हुए। माता, पत्नी और परिवार जनों ने उन्हें बहुत रोका, किन्तु सबकी अवहेलना करते हुए चले गये, जिसका दुष्परिणाम हुआ। कहाँ अकेले धनसिंह और कहाँ अंग्रेजों की विशाल वाहिनी। पहाड़ से सिर मारने पर सिर ही फूटेगा, पहाड़ का क्या बिगड़ सकता है? आक्रमण का समाचार पाते ही वह

सीधा सेना के बीच घुसकर भयंकर मारकाट करता रहा। उसे ओरछा और बरुआसागर के मैदान में विजयश्री प्राप्त हुई। वह आगे बढ़ता ही गया और विशाल सेना के बीच घिरने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। गाथाकार उसे बुद्धिहीन मानता है, जो बिना सोचे –समझे अकेला ही युद्ध करने को तैयार हो जाता है। इतिहास में तो इस गाथा का विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं है, किन्तु लोक–मुख में तो यह गाथा आज भी सुरक्षित है। गाथा का शुभारंभ भी धनसिंह की बुद्धिहीनता से हुआ है। जोगी इकतारे की धुन में गाते हुए दिखाई देते हैं–

तोरी मत कोंने हरी रे धनसिंह,
तोरी मत कोंने हरी रे.....!

उन्होंने युद्ध क्षेत्र में जाते समय शुभ शकुन का ध्यान नहीं रखा। इसी कारण से युद्ध क्षेत्र में उनकी मृत्यु हो गई थी। उन्होंने छींकते हुए घोड़े की सवारी की थी। यह बहुत बड़ा अपशकुन था।

छींकत बछेरा पलान्यो, बजत भये असवार।

परिवार जनों ने अकेले जाने से बार–बार रोका, किन्तु हठवश उन्होंने किसी की बात नहीं मानी। यह उसी हठ का दुष्परिणाम था। हालाँकि थे तो वे बहुत वीर, उन्होंने जाते ही अनेक वीर अंग्रेज सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया था–

जातन मारो गोर खौं,
गढ़ एरच के मैदान।
तोरी मत कोंने हरी रे धनसिंह.....!

जाते समय माता, बहिन और रानी ने बहुत ही रोका, किन्तु वे सबकी बातों को टालते हुए युद्ध क्षेत्र में अकेले ही चले गये और सेना से घिरकर उनकी मृत्यु हो गईः–

माता पकरें फेंट री, बैंन घोड़े की बाग।
रानी बोले धनसिंह की, मोहैं कौंन की करकैं जात।
तोरी मत कोंने हरी रे धनसिंह.....!

वे इतने अधिक आक्रोश में थे कि सबसे भला–बुरा कहकर घोड़ा बढ़ाकर चले गये–

माता खौं गारी दई, बैंदुल खौं दओं ललकार।

बैठी जौ रइयौ रानी सतखण्डा, मोतिन भरा दओं माँग।
तोरी मत कोंने हरी रे धनसिंह.....!

जाते समय अनेक तरह के अपशकुन हो गये, जिनको सारे बुंदेलखण्ड में अपशकुन की कोटि में रखा जाता है, जैसे– बायीं तरफ टिटहरी और दाहिनी ओर सियार का चिल्लाना और मुँह के सामने तीतुर का बोलना, बुंदेलखण्ड में अपशकुनों की ओर संकेत है–

डेरी बोलें टीटही, दाहिनी बोलें सिहार।
सिर के सामैं तीतुर बोलें, पर भू में मरन काहे जात।
तोरी मत कोंने हरी रे धनसिंह.....!

कुछ वीर अवसर देखकर शत्रु का सामना करते हैं। इन्होंने किसी भी तरह के बचाव का प्रयत्न नहीं किया। ये तो सीधे घोड़े पर चढ़े हुए अंग्रेज सेना के शिविर के बीच में जा पहुँचे और बिना सोचे समझे ही शत्रु सेना से जा भिड़े–

कोऊ जो मिले ढिल्ली–ढिल्ला, कोउ जिल्ला के बाग।
जो मेले धनसिंह जू, जाँ ठठे कसन के पाल।
तोरी मत कोंने हरी रे धनसिंह.....!

प्रारंभ में तो उनकी लगातार जीत होती गई, किन्तु अंत में चारों ओर से शत्रु सेना से घिरकर उनकी मृत्यु हो गई–

पैंले फते भये ओरछा, दूजे बरुआ के मैंदान,
तीजे फते भये पाल में, सो मारे गयो कुँवर धनसिंह।
तोरी मत कोंने हरी रे धनसिंह.....!

अंग्रेज सिपाहियों ने इतना घोर संग्राम किया कि धनसिंह के सारे साथी मैदान छोड़कर भाग गये। धनसिंह का मृत शरीर रण–क्षेत्र में पड़ा रह गया और उनका घोड़ा खाली पीठ लौट आया–

भागन लगे भगेलुवा, उड़ रई गुलाबी धूर,
रानी देखैं धनसिंह की, घोरौ आ गऔ उबी नी पीठ,
तोरी मत कोंने हरी रे धनसिंह.....!

खाली पीठ घोड़े को आता हुआ देखकर रानी वास्तविक स्थिति से परिचित हो

गई और स्वामी भक्त घोड़े से भला–बुरा कहने लगीं–

काटो बछेरा तोरी बचखुरी, मेटों कनक औदार,
मेरे स्वामी जुझवाय कैं, तैं आय बँधो घुड़सार।
तोरी मत कोने हरे रे धनसिंह.....!

घोड़ा दुःखी होकर रानी के समक्ष अपना साक्ष्य प्रस्तुत करता है। महारानी जी आप मुझे कोई दण्ड मत दीजियेगा, इसमें मेरी कोई गलती नहीं है। शिविर में उनके साथ धोखा हो गया है। वे मुझ पर सवारी नहीं कर पाये थे–

काय खौं काटों रानी बजखुरी,
काय खौं मेटों कनक औ दार।
दगा जो हो गओ पाल में, मो पै हो नई पाये असवार।
तोरी मत कोंने हरी रे धन सिंह....!

इस गाथा में बुंदेली वीरों के शौर्य और साहस का चित्रण किया गया है। यहाँ के वीर शत्रु के समक्ष जीते जी पीठ दिखाना नहीं जानते। धनसिंह अंग्रेजों की विशाल वाहिनी से भिड़ गये। लड़ते–लड़ते प्राण त्याग दिये, किन्तु पाँव पीछे नहीं रखे। उनके कार्य और चरित्र जन–जन के लिए अनुकरणीय हैं।

साके

साके भी बुंदेली लोकगाथाओं के एक महत्त्वपूर्ण प्रकार हैं। बुंदेलखण्ड की कुछ लोकगाथाएँ 'साकौ' के नाम से प्रचलित हैं। उनमें प्रायः वीर पुरुषों, समाज कल्याण करने वाले धार्मिक और निष्ठावान व्यक्तियों की प्रशस्ति का गायन किया जाता है।

साके का अर्थ एवं प्रमुख लक्षण– बुंदेलखण्ड में लोकगाथाओं के रूप में साके गाये जाते हैं। साके वीर और आदर्श प्रधान राजाओं की यश–गाथाएँ हैं। वैसे 'साका' का अर्थ होता है प्रशंसा या यश–गायन। आदिकाल में राजाओं के यश गायन का कार्य प्रायः चारण और भाट लोग ही किया करते थे। यह उनका एक जीविकोपार्जन का साधन था। राजस्थान में यह प्रथा आज भी प्रचलित है। समस्त वीरगाथाकालीन काव्य चारण और भाट कवियों के द्वारा लिखा गया है। सच पूछा जाये तो रासो ग्रंथ का एक प्रकार साके ही थे। यह प्रथा बुंदेलखण्ड में अनेक वर्ष से प्रचलित रही है। यहाँ भी अनेक वीर, कर्त्तव्यनिष्ठ और आदर्शवान राजाओं के साके गाये गये हैं, जिनमें अमरसिंह, राजा मधुकर शाह, राजा मर्दनसिंह और लाला हरदौल कौ साकौ विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रायः वैवाहिक अवसरों पर पंडित लोग साकोच्चार करते हैं। उसके अन्तर्गत वर और कन्या पक्ष के पूर्वजों की प्रशस्ति का गायन किया जाता है। लोक–साहित्य के सुप्रसिद्ध अध्येता पं. कन्हैयालाल शर्मा 'कलश' के अनुसार किसी वंश परंपरा के यश गायन को साकौ कहा गया है। यह शब्द भारतीय वाङ्मय में दो स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है– एक विवाह के समय साकोच्चार के रूप में दूसरे गुह्यकों के वंश वर्णन के रूप में। गुह्यक लगभग 20–25 हजार वर्ष पूर्व इस देश में एक विशेष जाति निवास करती थी। श्री रामचन्द्र जी के मामा श्री सुमन्त जी गुह्यक वंश के ही थे। कुछ विद्वानों का मत है कि कुबेर के लघु भ्राता गुह्यक थे। वे कुबेर के कोषागार के मुनीम थे। अब ये गहोई वैश्य के नाम से जाने जाते हैं। इन्हीं लोगों के शासन संबंधी यश–पट्टिका को 'साको' कहा जाता है। कुछ विद्वान साके की व्युत्पत्ति 'शक' शब्द से मानते हैं। भारत

में शक संवत् का भी प्रचलन है। यह शक संवत् तत्कालीन राजाओं की प्रशस्ति का गायन ही है। भारत में विक्रम, शक, ईसा और हिजरी सन् का प्रयोग किया जाता है। यह भी उस समय के प्रभावशाली राजाओं के यश को स्मरण कराता है। मुख्य रूप से शाके शालिवाहन राजा की स्मृति है। लोक साहित्य मर्मज्ञ डॉ. हरगोविन्द जी साकौ का अर्थ यशोगाथा ही मानते हैं। उनका कथन है कि इसका संबंध शक से है, जिसके आध ाार पर शक संवत् चलता है। जिस प्रकार विक्रमादित्य की यशोगाथा का स्मारक विक्रम संवत् है, उसी प्रकार शालिवाहन की यशोगाथा का स्मारक शक सम्वत् है। अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'साके' का अर्थ है राजाओं और महापुरुषों की यशगाथा।

साके के प्रमुख लक्षण

साकों की कथावस्तु का विधिवत अध्ययन करने पर उनमें निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं–

- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- कल्पना प्राचुर्य
- प्रशस्ति गायन
- शैक्षिक दृष्टिकोण
- लोक मंगल की भावना

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– गाथाकारों ने साको की रचना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर की है। साको का कथानक चाहे पूरा ऐतिहासिक न हो, किन्तु उनमें वर्णित पात्र इतिहास प्रसिद्ध ही होते हैं। कुछ स्थानों के नाम और कुछ वर्णित घटनाएँ तो इतिहास प्रसिद्ध होती ही हैं। उनमें कुछ पात्र ऐतिहासिक और कुछ काल्पनिक जुड़ जाते हैं, जिसके कारण कुछ विद्वान इन्हें अनैतिहासिक मानने लगते हैं। राजा मर्दनसिंह, राजा मधुकर शाह, रानी गणेश कुँवरि, प्रवीणराय और लाला हरदौल आदि इतिहास प्रसिद्ध पात्र हैं। यहाँ अमरसिंह कौ साकौ भी प्रचलित है, जो एक इतिहास प्रसिद्ध राजा थे। कुछ लोग उन्हें राजस्थान का राजा मानते हैं, किन्तु थे तो इतिहास प्रसिद्ध ही। लाला हरदौल से कौन परिचित नहीं है। इनके अतिरिक्त धनसिंह, सुजान सिंह और वीरसिंह के साके भी समय–समय पर गाये जाते हैं।

कल्पना प्राचुर्य– साकौ की पृष्ठभूमि तो ऐतिहासिक ही है, किन्तु उनमें कल्पना की प्रचुरता है। उनमें रोचकता और सरसता स्थापित करने के लिए गाथाकारों ने काल्पनिक पात्र और घटनाएँ गढ़कर एक नया ठाट खड़ा कर दिया है। काल्पनिक

घटनाएँ सत्य होने का तो कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, वे केवल तिलस्मी और तोता–मैंना के कहानी–किस्सों की तरह मनोरंजन के साधन मात्र रह जाते हैं। अधिकांश साकौ के कथानक कल्पना और इतिहास के मिले–जुले रूप ही होते हैं। अवध में प्रचलित लोकगाथाओं के आधार पर अधिकांश प्रेमाख्यानक महाकाव्य लिखे गये हैं। ये सब के सब ऐतिहासिक दृष्टि से अप्रामाणिक हैं। राजस्थानी लोक गाथाओं के आधार पर जो रासो ग्रंथ लिखे गये हैं, वे सबके सब अप्रामाणिक हैं। इनमें कल्पना की ऊँची उड़ानें भरी गईं हैं। अपने आश्रयदाताओं की अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा करना ही उनका प्रमुख उद्‌देश्य रहा है। वैसे इतिहास और काव्य में बहुत अंतर होता है। इतिहास नीरस और काव्य सरस होता है। इसी कारण से इतिहास और काव्य का तालमेल मिलाने के लिए कल्पना का आश्रय लिया जाता है। कल्पना के कारण कथावस्तु में सरसता आ जाती है। कवि काव्य में कुछ मौलिक उद्‌भावनाओं का समावेश करता है, जिससे काव्य में नवीनता और रोचकता आ जाती है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने रामकाव्य परंपरा से हटकर उर्मिला–विषयक साकेत महाकाव्य की रचना की थी। लोक कवि का चिंतन अधिक स्वाभाविक और अकृत्रिम होता है। साकेतकार लोक कवि ही थे। अमरसिंह के साके में नाम और स्थान तो सत्य हैं, किन्तु बीच–बीच में रोचकता लाने के लिए कल्पना का समावेश किया गया है। साके कार ने बुंदेली संस्कृति और आन–बान–शान की सुन्दर परिकल्पना की है। मधुकर शाह के साके में हिन्दू धर्म और संस्कृति की दृढ़ता पर बल दिया गया है। लाला हरदौल के साके में लाला–भाभी के निश्छल प्रेम की परिकल्पना की गई है। अतः साके के कथानक में रोचकता लाने के लिए कल्पना का आश्रय लेना आवश्यक है।

प्रशस्ति गायन– सच पूछा जाये तो 'साके' शुद्ध रूप में प्रशस्ति गायन ही है। किसी लोकप्रिय राजा की यश गाथा का गायन करने के लिए इनकी रचना की जाती है। कुछ साके तो चारण और भाट कवियों के द्वारा गाये जाते हैं और कुछ साकों की रचना समाज करता आया है। समाज में कुछ ऐसे चरित्रवान और आदर्श पुरुष अवतरित हुए हैं, जिनके कार्य कलापों से प्रभावित होकर लोक मुख से अचानक प्रशंसा पूर्ण पंक्तियाँ निःसृत हुईं, जो कुछ समय बाद 'साके' के रूप में प्रसिद्ध हो गईं। भारत के हर अंचल में इस प्रकार के प्रभावशाली व्यक्ति अवतरित होते रहे और रहेंगे, जिनका यश–गायन साधारण जनता ही करती रही और रहेगी। यही कारण है कि हर अंचल में इस प्रकार की यश गाथाएँ प्राप्त होती हैं। यदि इन्हें मार्ग–दर्शक और शिक्षाप्रद कहा जाये तो अनुचित नहीं होगा। बुंदेलखण्ड में अमानसिंह, धनसिंह और हिन्दूपति के साके गाये जाते हैं। साकेकार साके के प्रारंभ में ही कह उठता है–

तोरी मत कोंने हरी रे धनसिंह, तोरी मत कोंने हरी रे

ब्रिटिश शासन काल में मातृभूमि की रक्षा करते हुए लड़ते–लड़ते प्राणार्पण कर दिया था। इसी प्रकार लोहागढ़ के राजा हिन्दूपति की यशोगाथा इस क्षेत्र के जन–जन की ज़बान पर है, गाथाकार लिखता है–

कटे सूर सामंत वर, हिन्दूपति की बान।
प्राण दान दै राख लई, लोहागढ़ की शान।

हिन्दू संस्कृति की लाज बचाने वाले जिन्हें बादशाह अकबर ने 'टिकैत' की उपाधि से विभूषित किया था, ऐसे राजा मधुकर शाह की हठधर्मिता से तो सारा बुंदेलखण्ड भली भाँति परिचित ही है। लोग बड़े चाव से उनके साके का गायन किया करते हैं। उनकी निर्भीकता को देखकर बादशाह अकबर ने कहा था–

आपके ही नाम से, लगाया अब जायेगा।
मधुकर शाही यह टीका कहलायेगा।।

आचार्य केशवदास जी की शिष्या प्रवीणराय ने अपनी प्रत्युत्पन्नमति के द्वारा अकबर जैसे बादशाह को लज्जित कर दिया था। उसके एक दोहे को सुनकर बादशाह ने प्रसन्न होकर उसे पुरस्कृत करते हुए ससम्मान विदा कर दिया था। यह बुंदेली संस्कृति का बहुचर्चित दोहा है –

विनती राय प्रवीन की, सुनिये शाह सुजान।
जूँठी पातर भकत को, बारी वायस श्वान।

इस बुंदेली विदुषी बाला की प्रशस्ति का गायन आज सारा विश्व कर रहा है।

शिक्षा की प्रधानता – बुंदेली साके प्रशंसा पूर्ण होते हुए भी शिक्षा प्रधान हैं। किसी महापुरुष या प्रजापालक राजा की यशगाथा गायन करने पर श्रोताओं को उनके कार्य–कलापों से परोक्ष रूप में मूल्यवान शिक्षा प्राप्त होती है। वे एक प्रकार के मार्ग–दर्शक उपकरण हैं। बीच–बीच में साकेकार शिक्षा की ओर संकेत भी करते हैं। हरदौल साके का गायन करते हुए गाथाकार कह उठता है –

नजरिया के सामने तुम, हरदम लाला रइयौ।
जैसी लाल नाँय निभाई, ऊसई सदा निभइयौ।

गाथा का श्रवण करते ही जन–जन को आदर्श चरित्र और मर्यादा की शिक्षा प्राप्त होती है। देवर–भाभी के निश्छल प्रेम का उच्चादर्श बुंदेलखण्ड जैसा अन्यत्र दुर्लभ है। यही स्थिति हिन्दूपति के आत्मबलिदान की है। गाथाकार संकेत करता है– **प्राण दान दै राख लई, लोहागढ़ की शान।** उनके अमर बलिदान से राष्ट्रीयता की उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है। उसी प्रकार धनसिंह भी देश की रक्षा करते हुए मर गया था। बुंदेलखण्ड तो वीर पुरुषों की पुण्य भूमि है ही। इस प्रकार के सैकड़ों अमर बलिदानी इस धरती पर अवतरित हुए हैं। प्रवीणराय भले ही वेश्या थी किन्तु वह ओरछेश इंद्रजीत को अपना पति स्वीकार कर चुकी थी। अपने पातिव्रत और सतीत्व की रक्षा करने हेतु उसने बादशाह अकबर का आग्रह ठुकरा दिया था। राजा मधुकर शाह की हठ से तो सारा विश्व परिचित ही है। बादशाह अकबर ने उन्हें 'टिकैत' की उपाधि से विभूषित किया था। यह सब उन्हीं अमर गाथाओं का सुपरिणाम है कि विषम परिस्थितियों के महासागर को पार करते हुए आज भी सनातन धर्म और हिन्दू संस्कृति अपनी कीर्ति–पताका फहरा रही है।

लोक मंगल की भावना– संपूर्ण भारतीय संस्कृति लोक–मंगल की भावना से आपूरित है। भारतीय धर्म और संस्कृति का मूल ग्रंथ गीता इस भावना का प्रसार करते हुए कहता है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुखभाग भवेत्।

लोक साहित्य तो प्राचीनकाल से ही इसी भावना का प्रचार करता आ रहा है। चाहे लोकगीत हों, चाहे कथा या लोक गाथा हो, सभी में इसी भावना के दर्शन हो रहे हैं। यहाँ तक कि बुंदेली बालाएँ कभी–कभी जब किसी देव मंदिर में जाती हैं, तब देवताओं से प्रार्थना करती हुईं कहने लगती हैं कि –हे भगवान! सबखौं खुशी राखियौं। साकों में अनेक स्थानों पर इस भावना के दर्शन होते हैं। सच पूछा जाये तो उन सबका मूल उद्देश्य लोक मंगल ही है।

साके की प्रमुख विशेषताएँ

'साके' बुंदेली लोक गाथाओं के एक प्रमुख प्रकार हैं। इसी कारण से इनकी विशेषताएँ लोकगाथाओं से मेल खाती हैं। वैसे अधिकांश लोक गाथाओं की रचना आदर्श–पात्रों की प्रशस्ति गायन के लिए हुई है। चाहे वे रासो, राछरे या पंवारे हों, किन्तु हैं तो वे सबके सब आदर्श पात्रों के प्रशस्ति गायन ही। यही कारण है कि वे सब के

सब एक से दिखाई देते हैं। बहुत से साके तो ऐसे हैं, जो राछरों और पंवारों से मिलते–जुलते हैं। बुंदेलखण्ड के साकों में निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई देती हैं – अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन, अप्रामाणिकता, लोक संगीतात्मकता, मौखिक परंपरा, सांस्कृतिक चेतना, आदर्श प्रधानता और राष्ट्रीय विचार धारा।

अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन– किसी व्यक्ति के कार्य–कलापों का वर्णन बहुत बढ़ा–चढ़ाकर करने की प्रथा तो बहुत प्राचीन है। सारा का सारा पालि, प्राकृत और संस्कृत का साहित्य इस प्रवृत्ति से भरा पड़ा है। आर्या सप्तशती और गाथा सप्तशती में तो इसके उदाहरण भरे पड़े हैं। हिन्दी के रीतिकालीन काव्य की आधार भूमि तो अतिशयोक्ति ही है। कुछ विद्वान इसी प्रवृत्ति के कारण रीतिकालीन काव्य को अप्रामाणिक और असाहित्यिक मानते हैं। लोक साहित्य में अनेक स्थलों पर इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। लोक गाथाओं में तो इस प्रवृत्ति की अधिकता है ही। साकेकारों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा तो खूब बढ़ा–चढ़ाकर की है। उन दिनों किसी भी कायर राजा को शक्तिशाली सिद्ध करना और किसी बुद्धिहीन राजा को सर्वगुण संपन्न करना साकेकारों के बायें हाथ का खेल था। यही कारण है कि साकों का वर्णित विषय अतिशयोक्ति पूर्ण है।

अमानसिंह की लोकगाथा में कहा गया है कि राजा अमानसिंह अपनी बहिन को लिवाने के लिए 'धेंगुवा–अकौड़ी को चल देते हैं। बहिन का डोला निकालने के लिए मार्ग में पड़ने वाले घने–घने जंगलों को कटवाते हैं। मल्लाह बुलाकर गहरी नदियों में नावें डलवाते हैं। साके में कहा भी गया है –

धेंगुवां अकोड़ी की डागें परतीं हैं, डोला कहाँ होकैं जायें।
धेंगुवां अकोड़ी की गैरी हैं नदियां, बढ़ई बुढ़ाये मइया।
डागें कटायें डोला ओई होकैं जाये,
मल्ला बुलाहैं नाव डराहैं, डोला होई होकैं जायें।।

हरदौल के साके में कहा गया है कि हरदौल मरने के बाद भी अपनी बहिन कुंजावती की पुत्री की शादी में विविध सामग्री सहित उपस्थित हो जाते हैं– **'हरदौल चीकट लैकैं आये कुंजावति के द्वारे।'** मृत्यु के बाद व्यक्ति को और क्या कहा जा सकता है? इसे अतिशयोक्ति कहें या झूठोक्ति। राजा हिन्दूपति की लोकगाथा में कहा गया है कि हिन्दूपति की तलवारों के वार देखकर अंग्रेज सैनिक दंग रह जाते थे। रज्जब बेग पठान की वीरता का वर्णन भी अतिशयोक्ति पूर्ण है –

लड़े शूर सामन्त वर, लोहागढ़ की आन।
प्रान–दान दै राख लई, लोहागढ़ की शान।।
सात दिना नौ जुद्ध भओ, लोहागढ़ दरम्यान।
फिरे फिरंगी बचाऊत, अपनें अपनें प्रान।

अप्रामाणिकता– हालाँकि गाथाओं की मूल आधार भूमि तो इतिहास ही है। किन्तु कल्पना प्रचुरता के कारण मूल पात्रों और मूल घटनाओं के अतिरिक्त अनेक अनैतिहासिक पात्र और मूल घटनाएँ जुड़ गईं हैं, जिनके कारण उनकी ऐतिहासिकता में संदेह होने लगा है। अमानसिंह के साके में वर्णित घटनाएँ काल्पनिक सी प्रतीत होती हैं। धेंगुवा अकौड़ी में उनकी बहिन का विवाह हुआ था। वे उन्हें लिवाने के लिए गये थे। भोजन करते समय किसी कारणवश साले–बहनोई का विवाद हो गया। अमानसिंह ने क्रुद्ध होकर बहनोई की छाती में कटार भोंक दी, जिससे स्थल पर ही बहनोई की मृत्यु हो गई और उनकी बहिन उनके कारण ही विधवा हो गई, किन्तु अपनी बहिन की दीन दशा को देखकर आत्मग्लानि के कारण आत्महत्या कर ली। बुंदेलखण्ड के इतिहास में पन्ना के राजा अमानसिंह और उनके द्वारा लड़ी गई एकाध लड़ाई का वर्णन है किन्तु मुख्य घटना का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। इसी कारण से अधिकांश विद्वान इस गाथा को अप्रामाणिक ही मानते हैं।

इतिहास में दीवान हरदौल के कार्यों का विधिवत् उल्लेख किया गया है। वे इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति थे। उनकी वीरता और स्वाभिमान प्रियता के कारण उनके बड़े भाई जुझारसिंह के कुछ सामंत और सरदार उन्हें ईर्ष्या–द्वेष की दृष्टि से देखने लगे थे। हिदायत खाँ की शिकायत के कारण ही जुझार सिंह ने हरदौल की हत्या का प्रपंच रचा था। वीरसिंह देव के तीन विवाह हुए थे। प्रथम रानी से जुझारसिंह और दूसरी रानी से हरदौल हुए थे। ये सब ऐतिहासिक घटनाएँ ही हैं। हैदर खाँ से तलवार का सामना करने और कुंजावती की पुत्री के विवाह में जाने वाली घटनाएँ तो काल्पनिक ही हैं। यही स्थिति लोहागढ़ के राजा हिन्दूपति की है। लुहारी (लोहागढ़) के जागीरदार हिन्दूपति तो थे और उनकी मुठभेड़ अंग्रेजों के साथ हुई थी। ये सब तो बुंदेलखण्ड के इतिहास में भी उल्लेख है। किन्तु वीरता अतिशयोक्ति पूर्ण और काल्पनिक ही है। कल्पना की ऊँची–ऊँची उड़ानों के कारण ऐतिहासिकता कुछ धुंधली सी पड़ जाती है।

लोक–संगीतात्मकता– समस्त बुंदेली साके लोक संगीतबद्ध हैं। ये सबके सब बुंदेली लोक–ध्वनियों में आबद्ध हैं। अमानसिंह कौ साकौ प्रायः ढोलक के साथ वर्षा

ऋतु में गाया जाता है। जब आकाश में काले–काले बादल घनघोर गर्जना करने लगते हैं, तब संध्या के समय साकेकार ऊँची आवाज में ढोलक के स्वर में तीव्रता लाते हुए साके का आलाप भरने लगता है–

सदा तों तुरइया हाँ अरे फूलें नईं,
सदा न सावन होय। रे हा..... हा.....हा

ये टेर सुनते ही गाँव के लोग चारों ओर एकत्रित होकर आनंद लेने लगते हैं।

राजा धनसिंह कौ साकौ इकतारे की ध्वनि के साथ गाया जाता है। इसकी लोक ध्वनि कहीं–कहीं द्रुत और कहीं–कहीं मंद होती है। प्रायः इसका गायन सम पर ही होता है। वसुदेवा, भाट लोग द्वार–द्वार पर इसका गायन करते हुए भिक्षा माँगते हैं। जब इस गाथा को मधुर–ध्वनि में गाया जाता है, तब अधिक रूचिकर प्रतीत होता है। इस को सुनने में लोगों को बहुत रूचि है। राजा हिन्दूपति कौ साकौ ढोलक, झाँझ और झेला के साथ गाया जाता है। इसको गाते समय प्रायः गायकों का स्वर उच्च होता है। ढोलक की कड़क के साथ लोक ध्वनि भी उच्च होती जाती है।

ऐ..... हाँ.....हाँ.....हाँ.....हाँ..... प्रान दान दै राख लई,
हाँ.....हाँ.....हाँ.....हाँ..... ऐ.....हाँ.....हाँ..... लोहागढ़ की शान।

हरदौल के साके की स्थिति बड़ी विचित्र है। यह विविध लोक ध्वनियों में हर समय गाया जाता है। यदा–कदा बुंदेली बालाएँ इसे समवेत स्वर में गाया करती हैं– **'नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ'** प्रायः विवाहोत्सव के अवसर पर इन गीतों की विशेष उपयोगिता है। ये साकौ कभी गारी के रूप में, कभी फाग के रूप में और कभी कवित्त और सवैया के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। ये हर प्रकार से लोक संगीतबद्ध तो है ही, गेयता और संगीतात्मकता इसका प्रमुख गुण है।

मौखिक परंपरा– भारत का अधिकांश लोक साहित्य मौखिक है। इस क्षेत्र में डॉ. रामनरेश त्रिपाठी, देवेन्द्र सत्यार्थी, डॉ. सत्येन्द्र, पं.शिवसहाय चतुर्वेदी, पं. गौरीशंकर द्विवेदी, श्री कृष्णानंद गुप्त और हरगोविंद गुप्त का काम विशेष सराहनीय है। उपर्युक्त विद्वानों के प्रयास इतने अधिक होते हुए भी अत्यल्प दिखाई दे रहे हैं। ऐसा लगता है कि उस महासागर में से लोग अभी तक चंद बूंद ही संचित कर सके हैं। लोग अभी तक तो ऊपर ही ऊपर तैर पाये हैं, मोती तो सच्चे गोताखोर को ही प्राप्त हो सकेंगे। जो मूल और स्वाभाविक लोक साहित्य है, वह तो अभी भी मौखिक है। उसे लिपिबद्ध करने में सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो जायेंगे। कुछ इसी तरह की स्थिति लोक गाथाओं की

भी है। कुछ लोकगीत, लोकोक्तियाँ और लोक गाथाएँ तो लोगों ने संकलित कर ली हैं, किन्तु अभी तक लोग लोकगाथाओं के विषय में ज्यादा नहीं जानते। कुछ लोगों ने तो साकों का नाम सुना भी नहीं होगा, लिपिबद्ध करने की तो बात ही अलग है। गाँवों में आज भी कुछ ऐसे वयोवृद्ध व्यक्ति विद्यमान हैं, जिन्हें अनेक साके कंठस्थ हैं। यदि उनके मुख से सुनकर लिपिबद्ध किया जाये तो यह मूल्यवान सामग्री सुरक्षित रह सकती है, अन्यथा ये सब विस्मृति के गर्त में विलीन हो जायेगी। साके प्रायः अलग–अलग लोक ध्वनियों में गाये जाते हैं। अतः उन ध्वनियों को टेप करके सुरक्षित रखना आवश्यक है, जिससे उनका वास्तविक स्वरूप नष्ट न हो सके।

सांस्कृतिक चेतना– लोक गाथाओं में तत्कालीन भारतीय सांस्कृतिक चेतना सुरक्षित है। साके इस क्षेत्र में आगे हैं। अमानसिंह के साके में डोला का संकेत है। उन दिनों राजाओं और जागीरदारों की वधुएँ और बेटियाँ डोला में बैठकर ही आया–जाया करती थीं। कहार डोला के भार को कंधे पर वहन किया करते थे। गाथा में कहा गया है –

धेंगुवां अकोड़ी की डाँगें परतीं,
डोला कहाँ हो जाय।

भोज्य सामग्री में माँडला, बरा और पकौरी का विशेष स्थान रहा है। अमानसिंह की बहिन अपने भाई के स्वागत के लिए सुस्वादु व्यंजन तैयार करती है –

तीते–मीते गेंहुआं पिसाये बैंन नें,
मँडला पकाये झक–झोर।
कचिया उड़द के बरला पकाये,
दहियँन दये हैं बुझवाय।

ऐसा लगता है कि उन दिनों जाँघिया पहिनने का प्रचलन था। लाल पोशाक अच्छी मानी जाती थी। कहार लोग पचरंग पोशाक धारण किया करते थे।

सारन बँधें है लाल उड़न बछेरा,
घुल्ला पै टँगी है लगाम।
बक्सन धरे लाला तुमरे जाँघियाँ।
उतई टंगे हतयार।

हरदौल के साके में चीकट का वर्णन है –

हरदौल चीकट लैंकें आये, कुंजावति के द्वारे।

मरने के बाद भी हरदौल प्रेत के रूप में कुंजावति के घर चीकट लेकर उपस्थित हुए। साके में चीकट की सामग्री का वर्णन तत्कालीन संस्कृति का परिचायक है। आज भी बुंदेलखण्ड में उस चीकट की प्रथा का प्रचलन है। उन दिनों तलवारों, भालों और तोपों से युद्ध होता था। हिन्दूपति की लोकगाथा में उन सारे अस्त्र–शस्त्रों का वर्णन किया गया है –

तोप की तड़क गरज सुन गोलन की,
छूटत मुनीश बड़े साहिबन के ध्यान।
भनत मुकुंद इतै काछिल तमंक लरो,
काटि–काटि लीन्हें उन गोरन के प्रान।
राजा महाराजा हिन्दूपति कौ प्रताप बढ़ौ,
नंदहू किसोर झुकि–झारी कृपान।

उन दिनों शकुन–अपशकुन का विशेष ध्यान दिया जाता था। वीर युद्ध में प्रयाण करते समय छींक का विशेष विचार किया करते थे। धनसिंह की लोकगाथा में इसका स्पष्ट उल्लेख है –

छींकत घोरा पलान्यो, बरजत भये असवार।
जातन मारों गोर खौं, गढ़ एरच के मैंदान।

उसी गाथा में अपशकुन की भी चर्चा है–

डेरी बोलैं टीटही, दाहिनी बोलें सियार।
सिरके सामैं तीतुर बोलें, पर भू में मरन काहे जात।।

खाली घड़ा, एकाक्ष व्यक्ति, सर्प के द्वारा रास्ता काटना आदि स्थितियों को बुंदेलखण्ड में अपशकुन सूचक माना जाता है। यहाँ के अधिकांश साकों में लोक–चेतना के दर्शन होते हैं।

आदर्श प्रधानता– हमारी संपूर्ण बुन्देली संस्कृति ही आदर्श प्रधान है। इस पुण्य वसुन्धरा पर अवतरित होने वाले महापुरुषों ने जीवन के ऐसे अनेक आदर्श प्रस्तुत किये हैं, जिन्हें आज सारा भारत मान्यता प्रदान कर रहा है। भारत ही नहीं अन्य देशों के लोग भी उन आदर्शों पर चलने का प्रयास कर रहे हैं। साकों की मूलाधार भूमि तो उच्चादर्श ही है। अमानसिंह की गाथा में कहा गया है कि पन्ना के राजा अमानसिंह

सावन के महीने में अपनी बहिन को लिवाने के लिए 'अकोड़ी' चले जाते हैं। भोजन करते समय साले–बहनोई में विवाद हो गया। विवाद इतना अधिक विद्रूप हुआ कि अमानसिंह ने क्रोधित होकर अपने बहनोई की छाती में कटार भोंक दी, जिससे घटनास्थल पर ही उनकी मृत्यु हो गई। पति की मृत्यु का समाचार पाते ही उनकी बहिन विलाप करने लगी, अमानसिंह से बहिन का विलाप नहीं देखा गया और क्षुब्ध होकर छाती में कटार भोंककर प्राण त्याग दिये। ऐसे सहृदय राजा की यशगाथा आज भी जन–जन की ज़बान पर है –**'काँ गये राजा अमान, काँ गये राजा अमान तुम खौं जे रो रई चिरइयाँ।'**

लाला हरदौल का बलिदान तो सारे बुंदेलखण्ड का गौरव है। अपने उज्ज्वल चरित्र का परिचय देने के लिए जान–बूझकर भाभी के रोके जाने पर भी विष मिश्रित भोजन करके प्राण–त्याग देते हैं। अपनी भाभी को रोता हुआ देखकर कह उठते हैं –

भौजी कैसी सिर्रन हो गई, भइया की कई करनें।
साँसी आ जा नायं मांय की बातन में नई परनें।
विष कौ कौर बिना कयें खा लओ बात बड़े की मानीं।
जी के कारण भारत भरमें हो गई अमर कहानी।

उनके उच्चादर्श के कारण ही उन्हें सारे बुंदेलखण्ड में देवतुल्य पूजा जाता है। आज भी बुंदेली बालाएँ सम्मान सहित गाया करती हैं–

नजरिया के सामनें तुम हरदम लाला रइयौ।

प्रवीण राय की बुद्धिमत्ता और उच्चादर्श से कौन परिचित नहीं है। ऐसे महापुरुषों के चरित्र–चित्रण करने के लिए साकों की रचना हुई है।

राष्ट्रीय विचार धारा – बुंदेलखण्ड में प्रचलित अधिकांश साके इस विचारधारा से ओतप्रोत है। उस समय सारे देश की राजनैतिक स्थिति ठीक नहीं थी। देश की अखण्डता कुछ–कुछ खंडित सी होने लगी थी। देश छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था। राजा गण पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष के कारण एक दूसरे को फूटी आँखों नहीं देख रहे थे। इस फूट का लाभ विदेशी जाति को प्राप्त हुआ। अनेक वर्ष तक भारत में मुगलों का शासन रहा, जिससे कुछ देशभक्त राजा हमेशा लड़ते रहे। महाराणा प्रताप, शिवाजी और छत्रसाल से तो सारा देश परिचित ही है। कविवर भूषण ने अपनी लेखिनी के द्वारा उन्हें अमर कर दिया है। राजा छत्रसाल के साके विविध लोक ध्वनियों में गाये जाते हैं। चाहे आप हिन्दूपति, चाहे धनसिंह और चाहे मधुकर शाह का साकों देखें, उनमें

राष्ट्रीयता के दर्शन अवश्य ही होते हैं। राजा हिन्दूपति ने अंग्रेजों के साथ घोर संग्राम किया था। लड़ते–लड़ते मातृभूमि की बलिवेदी पर प्राण न्यौछावर कर दिये। साके में कहा गया है–

पैलाँ मारो गोर खों, गढ़ एरच के मैंदान।
धोकौं हो गओ पाल में, सो मारे गये कुँवर धनसिंह।

महाराज मधुकरशाह 'टिकैत' की राष्ट्रीय भावना से कौन परिचित नहीं है? राजा मर्दनसिंह और राजा बखत वलीशाह, जिन्होंने मातृभूमि के श्रीचरणों में प्राण प्रसून अर्पित कर दिये थे। चाहे मुगलकाल रहा हो या चाहे ब्रिटिश काल, बुंदेलखण्ड के अमर सपूतों ने अपने शौर्य का परिचय अवश्य दिया है।

साके के प्रमुख भेद

वैसे 'साकों' की रचना का मूलाधार तो प्रशस्ति ही है, किन्तु उनके प्रदेय को दृष्टि पथ में रखते हुए साकों के तीन भेद दिखाई देते हैं– शौर्य प्रधान, आदर्श प्रधान और प्रशस्ति प्रधान।

शौर्य प्रधान – बुंदेलखण्ड में प्रचलित साकों में वीरों की वीरता का वर्णन ही प्रधान है, चाहे उन्होंने वीरता का प्रदर्शन आत्म–सम्मान की रक्षा या स्वदेशी रक्षा के लिए किया हो, उनमें प्रमुख रूप से वीरों के ही आक्रोश का वर्णन है।

महाराज छत्रसाल के शौर्य और साहस से तो सारा संसार भली–भाँति परिचित ही है। उन्होंने मुगलों के छक्के छुड़ा दिये थे। रीवा में आज भी बुंदेला दरवाजा बना हुआ है। कविवर भूषण उनसे बहुत प्रभावित थे। भूषण ने उनकी प्रशंसा में दस छंद लिखे थे। उन्होंने कहा था–

लाल छितिपाल छत्रसाल महावीर बाहुबली।
कहाँ लौ बखान करों तेरी करबाल को।

बानपुर नरेश महाराजा मर्दनसिंह ने अंग्रेजों को पीछे खदेड़ दिया था। महारानी लक्ष्मीबाई के मार्ग का अनुगमन करते हुए आगे बढ़ते गये। उनकी वीरता को देखकर अंग्रेज चकित हो गये थे। उनके साके में उनके शौर्य का अद्‌भुत वर्णन है। बखतवली शाह जिनके नाम से शाहगढ़ नगर बसा हुआ है। वे सन् 1857 में अमर स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे। उन्होंने अपने क्षेत्र में स्वराज आंदोलन का शुभारंभ किया था। महारानी अवंतीबाई की शौर्य गाथा तो सारे कौशल प्रदेश में गाई जाती है। राजा हिन्दूपति ने

लोहागढ़ के मैदान में अंग्रेजों से डटकर सामना किया था, जिनमें रज्जब बेग पठान का शौर्य विशेष उल्लेखनीय है–

संजा होतन बंद भओ, जुद्ध फिरे सब ज्वान।
रज्जब ने तब आनकर, माँ के परसे पान।
बजो नगाड़ो जुद्ध कौ, ऐंन होत नईं भोर।
चले खेत खौं सूरमा, बाँध–बाँध सिर मोंर।
रज्जब ने उठ कमर में, अपनी कसी कटार।
हिन्दूपति के सामनें, आकैं करी जुहार।

राजा धनसिंह ने अंग्रेजों से घमासान युद्ध किया था। यदि उनके साथ धोखा नहीं होता, तो उन्हें कोई मार नहीं सकता था। कहाँ तो अंग्रेजों की विशाल वाहिनी और कहाँ अकेले धनसिंह? वे कहाँ तक युद्ध करते? अंत में लड़ते–लड़ते उनकी मृत्यु हो गई। इसी कारण से गाथा के प्रारंभ में ही कहा गया है–**'तोरी मत कौंने हरी रे धनसिंह, तोरी मत कौंने हरी रे।'**

आदर्श प्रधानता– वीर व्यक्तियों का चरित्र उज्ज्वल होता है। वे महान कार्य करके समाज के समक्ष उत्तम आदर्श प्रस्तुत करते हैं। वे स्वार्थ वृत्ति जैसी विचार धारा से कोसों दूर रहते हैं। उनका त्याग और बलिदान अपने लिए नहीं सारे समाज के लिए ही मूल्यवान होता है। वे महान तपस्या और परिश्रम के बल पर ऐसे मार्ग निर्मित कर गये हैं, जिन पर आज के लोग चलने का प्रयास कर रहे हैं। मधुकरशाह की टिकैत से तो सारा भारत भली भाँति परिचित ही है, जिन्होंने अकबर जैसी महान शक्ति से टकराकर हिन्दू संस्कृति की रक्षा की थी। इससे बड़ा आदर्श और क्या हो सकता है? प्रवीण राय ने अपने पातिव्रत धर्म का पालन किया था। उसने अपने गुरूदेव आचार्य केशवदास जी से मंत्रणा करते हुए स्पष्ट ही कहा था–

आई हों बूझन मंत्र तुम्हें, जिन स्वासनसों सिगरी मति खोई।
देहत जो कि तजों कुल कानि, हियेन लजों लजि हैं सब कोई।
स्वारथ औ परमारथ कौ पथ चित्त बिचार कहों तुम सोई।
जाय रहें प्रभु की प्रभुता, अरू मोरों पतिव्रत भंग न होई।

देखिये एक वेश्या को अपने पातिव्रत धर्म के भंग होने का कितना अधिक भय है? अपने पातिव्रत की रक्षा के लिए प्रवीण राय अपने गुरूदेव से मंत्रणा करती है। जब बादशाह अकबर उसे अपने दरबार में स्थाई रूप से रखने का प्रस्ताव रखते हैं, तब उसे गुरूदेव जी की मंत्रणा का स्मरण हो आता है और तुरंत ही दरबार में कह देती है –

विनती राय प्रवीन की, सुनिये शाह सुजान।
जूठी पातर भकत को, बारी बायस श्वान।

ये एक भारतीय नारी का आदर्श अनुकरणीय है।

लाला हरदौल का प्रेम तो सारे बुंदेलखण्ड का आदर्श ही था। वह अपनी सत्यता की परीक्षा देने के लिए स्वेच्छा से विष मिश्रित भोजन करके प्राण त्याग देते हैं। राजा जुझार सिंह ने अपनी रानी पार्वती से स्पष्ट कह दिया था, यदि तू सच्ची पतिव्रता नारी है, तो मेरी आज्ञानुसार हरदौल को विष दे दे। साके में इस स्थिति का वर्णन है–

एक ओर है पति की आज्ञा, एक ओर देवर प्यारौ।
करों प्रभू अब निनवारौ।

अंत में वह पातिव्रत धर्म को श्रेष्ठ समझकर हरदौल को विष दे देती है। उसकी करूण कथा को सुनकर लोग आज भी रो पड़ते हैं। हरदौल विष मिश्रित भोजन करने के लिए स्वतः ही तैयार हो जाते हैं। यह बुंदेलखण्ड का अनुकरणीय आदर्श है। हरदौल के त्याग का स्मरण करते हुए आज सारा देश बुंदेलखण्ड को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है।

प्रशस्ति प्रधान– सच पूछा जाय तो साके का मूलाधार तो प्रशस्ति ही है। साकों की रचना तो बुंदेलखण्ड के महापुरुषों और आदर्श पुरुषों की प्रशस्ति गायन के लिए ही की जाती है। जिन महापुरुषों ने अपने शौर्य, त्याग, तपस्या और बलिदान का परिचय दिया था, वे सबके सब प्रशंसा के योग्य थे। तत्कालीन लोक गायकों का ध्यान उनके उत्तम कार्यों की ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने उनकी प्रशंसा में अनेक लोकगाथाओं की रचना कर दी। हालाँकि उन लोक गाथाओं को विद्वानों ने लिपिबद्ध करने का प्रयास नहीं किया फिर भी पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक परम्परा के कारण आज तक सुरक्षित हैं। समय–समय पर उनमें कुछ परिवर्तन और संशोधन भी होता रहा। इसी कारण से उनके मूल रूप का पता लगाना कठिन है। कुछ तो ऐतिहासिकता से इतनी दूर हट गईं हैं कि लोग उन्हें संदेह की दृष्टि से देखने लगे हैं। यदि उन सबका विधिवत विश्लेषण किया जाये, तो लोग सत्यता के बहुत कुछ समीप पहुँच सकते हैं।

वैसे यह प्रशस्ति गायन की परंपरा बहुत प्राचीन है। इस पावन वसुंधरा पर अवतरित होने वाले महापुरुषों का यश बहुत समय से गाया जा रहा है। राजा हिन्दूपति, धनसिंह, मर्दनसिंह, महारानी लक्ष्मीबाई के बलिदान को लोग कैसे भूल सकते हैं। स्व. सुभद्राकुमारी चौहान की कविता ने तो उन्हें अमर कर दिया था–

बुंदेले हरबोलो के मुख, हमनें सुनीं कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह तो, झाँसी वाली रानीं थी।।

इस प्रकार की यश गाथाएँ बुंदेलखण्ड में अनेक हैं। लाला हरदौल, वीरसिंह जू देव, छत्रसाल, मधुकरशाह, प्रवीण राय और आचार्य केशव की यश गाथाएँ इस देश के वयोवृद्ध व्यक्ति समय–समय पर गायन किया करते हैं। हर साके में किसी न किसी महापुरुष की प्रशस्ति का गायन किया जाता है। हिन्दूपति की प्रशस्ति का वर्णन करते हुए साकेकार कह उठता है–

कटे सूर सामंत वर, हिन्दूपति की वान।
प्रान–दान दै राख लई, लोहागढ़ की शान।

हरदौल के साके में नारियाँ गाया करती हैं–

जैसी लाला नाय निभाई, ऊसई सदा निभइयौ।
नजरिया के सामनें तुम हरदम लाला रइयौ।

यह प्रशस्ति प्रधान गाथा लेखन की परम्परा आज भी चल रही है।

बुन्देलखण्ड के प्रमुख साके

बुन्देलखण्ड में कुछ ऐसी लोक गाथाएँ प्रचलित हैं जो राछरे और साके दोनों रूपों में प्रचलित हैं। जिन गाथाओं में मुख्य रूप से युद्ध और संघर्ष का वर्णन है, उनको 'राछरे' की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। जिन लोक गाथाओं में राष्ट्रीयता, धर्म परायणता, जनकल्याण और प्रजावत्सत्ता के दर्शन होते हैं, उन सबको 'साके' की कोटि में रखा जाना चहिए। इसी धारणा को दृष्टि पथ में रखते हुए बुन्देलखण्ड में प्रचलित साकों का विवेचन किया जा रहा है –

महाराज मधुकरशाह कौ साकौ– बुंदेलखण्ड की प्राचीन राजधानी ओरछा में स्थापित थी। राजा भारती चन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उनका लघु भ्राता मधुकरशाह गद्दी पर बैठा। उन दिनों भारत में बादशाह अकबर का शासन था। समस्त राजाओं को समय–समय पर शाही दरबार में उपस्थित होना पड़ता था। मुगलों के अधीनस्थ होते हुए भी मधुकरशाह पर मुगल संस्कृति का रंचमात्र भी प्रभाव नहीं था। वे सच्चे धार्मिक और भक्त राजा थे। सदैव भक्ति भावना में लीन रहा करते थे। वे सदैव मस्तक पर रामानंदी तिलक और गले में तुलसी की माला धारण करते थे। वे बादशाह की धार्मिक नीति से जरा भी भयभीत नहीं होते थे। जब कभी शाही दरबार में उपस्थित होते तो

उसी वेशभूषा में। किन्तु अकबर को उनकी धार्मिक कट्टरता और हठधर्मिता जरा भी पसंद नहीं थी। वे मन ही मन मधुकरशाह से जलते थे।

एक बार अकबर ने यह आदेश प्रसारित किया कि मेरे दरबार में कोई भी राजा तिलक लगाकर और माला पहिनकर नहीं आयेगा। किन्तु मधुकरशाह पर उनके आदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे पहले की अपेक्षा और लंबे और गहरा तिलक लगाकर और अधिक मालाएँ पहिनकर शाही दरबार में उपस्थित हुए। अपनी आज्ञा की अवहेलना देखकर बादशाह बहुत ही क्रोधित हुआ और ओरछा राज्य पर अधिकार करने की योजना बनाने लगा। अकबर ने उन्हें पराजित करने के लिए दो बार फौजें भेजीं। उन फौजों के साथ न्यामत अली खाँ, अली कुली खाँ और जामकुली खाँ को सेनापति बनाकर ओरछा पर चढ़ाई की, किन्तु मधुकरशाह ने उन सबको पराजित करके लौटा दिया। राजा तो परम भक्त थे ही, किन्तु उनकी रानी गणेश कुँवरि भी परायण नारी थीं। राजा मधुकर शाह की निर्भीकता और धार्मिक कट्टरता को देखकर अकबर बादशाह ने उन्हें 'टिकैत' की उपाधि से विभूषित किया था। यही कारण है कि बुंदेलखण्ड के इतिहास में राजा मधुकरशाह 'टिकैत' के नाम से प्रसिद्ध हैं। स्व. मुंशी अजमेरी जी ने अपने सुप्रसिद्ध काव्य ग्रंथ 'मधुकरशाह' में इस गाथा का संकेत किया है–

एक दिन आके बादशाह बहार में,
बोले बादशाह उसी खास दरबार में।
राजा महाराजा यह हुकम सुनें मेरा सब,
तिलक लगाकर आना ठीक नहीं होगा अब।
देखिये किसी का नहीं यह घरबार है,
जानें आप लोग यह मेरा दरबार है।
तिलक लगाना मुझे सख्त नागवार है,
आपसे इसी से यह इसरार है।
तिलक लगा के यहाँ कोई अब आयेगा,
दाग गर्म लोहे से लिलार दिया जावेगा।
कह गये बादशाह यह बातें गंभीर हो,
रह गये राजा सब शिथिल शरीर हो।
लौट दरबार से विचार किया सबनें,
दोष बादशाह को यथेष्ट दिया सबनें।

अकबर बादशाह की आज्ञा का मधुकरशाह पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि

उन्होंने दूसरी बार और अधिक बड़ा सा तिलक लगा लिया और शाही दरबार में उपस्थित हुए। गाथाकार ने इस घटना का वर्णन करते हुए लिखा है –

ओरछेश प्रातकाल नित्य कृत्य करके,
पूजा में प्रवृत्त हुए ध्यान धरके।
तिलक लगाते नित्य माथे पर छोटा सा,
उस दिन नाक से लगाया मोटा सा।

उनकी निर्भीकता को देखकर बादशाह ने प्रशंसा करते हुए लिखा कि–

आपके ही नाम से लगाया अब जायेगा।
मधुकरशाही अब ये टीका कहलायेगा।

बुंदेली संस्कृति की रक्षा करने वाले महान भक्त राजा मधुकरशाह का नाम बुंदेलखण्ड के जन–जन के मानस पटल पर अंकित है। राजा मधुकरशाह की रानी गणेश कुँवरि की भक्ति भावना से सारा भारत भलीभाँति परिचित है। इस गाथा का सम्बन्ध ओरछा के राम राजा से माना जाता है। कहा जाता है कि रानी गणेश कुँवरि ही राम राजा को अयोध्या से ओरछा ले आईं थीं। राजा मधुकरशाह कृष्णोपासक थे और उनकी रानी रामोपासक थीं। आराध्यों में अंतर होते हुए भी पति–पत्नी के सम्बन्धों में कोई विरोध नहीं था। एक बार राम भक्ति में लीन होने के कारण रानी को कुछ विलम्ब हो गया। राजा कहने लगे कि मैं तुम्हारी कब से प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तुम तो राम के अनुराग में इतनी तन्मय हो जाती हो कि जैसे वे तुम्हारे सब कुछ हों। हालाँकि महाराज का यह कथन परिहास मात्र था, किन्तु महारानी को उनकी यह बात चुभ गई। वे शांत होकर रह गई और मन ही मन राम को पाने की योजना बनाने लगीं। वे अपनी सच्ची भक्ति का परिचय देकर पतिदेव को लज्जित करना चाहतीं थीं। वे मन ही मन प्रतिज्ञा करके अयोध्या नगरी को चल दीं। उनकी उस महत्त्वपूर्ण यात्रा पर आधारित एक पद प्रचलित है –

प्रणत हित करत सदा रघुराई।
संवत् सोलह सों इकतिस में, अवधपुरी को जाई।
श्री सरजू अस्नान करत में, आन मिले रघुराई।
मधुकर शाह नरेश भक्तिमय, भक्तिमाल में गाई।
तिनकी रानी गनेस कुंवरि दे, राम ओरछा ल्याई।
प्रणत हित करत सदा रघुराई।

रानी अयोध्या नगरी में जाकर निवास करने लगीं और वहाँ भक्ति में लीन रहकर उन्हें प्राप्त करने का प्रयास करने लगीं। वे भगवान राम को ओरछा में ही लाना चाहती थीं। बहुत दिनों तक निवास करते–करते जब उन्हें भगवान राम नहीं मिले तो वे बहुत निराश हुईं। वे सरयू में डूबकर प्राण त्यागने को तत्पर हो गईं। एक दिन प्राण त्यागने के उद्देश्य से ज्यों ही उन्होंने सरयू में डुबकी लगाई, त्यों ही उनकी गोद में भगवान राम आ गये। उन्हें देखते ही रानी का ह्रदय गद्गद् हो गया। वे भगवान राम को छाती से लगाकर जल के बाहर निकली।

रात्रि में उन्होंने स्वप्न देखा कि कोई उनसे कह रहा है कि देखो मैं केवल पुष्य नक्षत्र में ही यात्रा करूँगा। तुम मुझे पुष्य नक्षत्र में ही ले जाना। कहा जाता है कि रानी उन्हें पुष्य नक्षत्र में ही लेकर चलीं थीं। जब पुष्य नक्षत्र का समय निकल जाता, तब वे वहीं रूक जाती और पुनः पुष्य नक्षत्र आने पर यात्रा आरंभ कर देतीं। इस प्रकार अयोध्या नगरी से ओरछा तक आते–आते उन्हें कई वर्ष बीत गये। किन्तु ईश्वर की कृपा से उनकी इच्छा पूर्ण हो गई। अपनी रानी की भक्ति भावना देखकर मधुकरशाह को बहुत आनंद प्राप्त हुआ। राजा ने राजा राम की स्थापना हेतु एक मंदिर का निर्माण करवाया। बड़ी ही धूमधाम से मंदिर में मूर्ति की स्थापना की थी। ओरछा में राजा राम की मूर्ति और वह मंदिर आज भी विद्यमान है। हमारी बुंदेली संस्कृति, भक्ति, आदर्श और त्यागशीलता से आपूरित है। मधुकरशाह और रानी गणेश कुँवरि का उदाहरण हमारे समक्ष है। यहाँ के ग्रामों में मधुकरशाह और रानी गणेश कुँवरि की यश गाथाएँ बड़े ही चाव से गाईं जातीं हैं। झाँसी निवासी लोक कवि भगवानदास 'दास' जी ने एक प्रसंग को ध्यान में रखते हुए एक 'गारी' बुंदेली लोकगीत की रचना की थी, जो आज भी बुंदेली बालाओं की ज़बान पर है –

राजाराम खौं लेंन गईं गनेसबाई,
धन्न पूरब पुन्न की कमाई।
करकैं चलीं प्रतिज्ञा मन में,
धरकैं ध्यान प्रभू चरनन में,
जो लों करों नईं भोजन में,
जों लौं मंजु मूरत श्रीराजू की नईं पाई,
धन्न पूरब पुन्न की कमाई।
आओ भोले भाले राम,
संगै चलों ओरछा धाम,

तुममें बसे हमाये प्रान,
इतनी कैकैं सरयू में डुबकी लगाई,
धन्न पूरब पुन्न की कमाई।
डूबा साधो धरकैं ध्यान,
गोदी में आ गये भगवान,
रानी खौं भओ सुक्ख महान,
लगा छाती सें रामचन्द्र निकर आई,
धन्न पूरब पुन्न की कमाई।

संवत् 1661 चैत्र शुक्ल सोमवार को रानी अपने राम लला सहित ओरछा पधारी थीं। उसी समय से चैत्र शुक्ल 9वीं तिथि को ओरछा के मंदिर में रामनवमी का पर्व मनाया जाता है। पुराणों में यह तिथि रामजन्म के नाम से प्रसिद्ध है। यह संस्कृति का प्रमुख केन्द्र है।

महाराज मर्दनसिंह कौ साकौ– स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में बानपुर नरेश मर्दनसिंह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। राजा मर्दनसिंह ने झाँसी वाली रानी लक्ष्मीबाई के साथ मिलकर अंग्रेजों के साथ घोर संग्राम किया था। अंग्रेजों का दृष्टिकोण पहले से ही मर्दनसिंह के प्रति अच्छा नहीं था। वे उनके साथ शत्रुवत् व्यवहार करते थे और सदैव उनसे सशंकित रहते थे। 8 जून सन् 1857 को राजा मर्दनसिंह ने झाँसी के मैदान में अंग्रेजों के सेनापति सर ह्यूरोज की सेना के साथ युद्ध किया था। बुंदेली गाथाकार ने उनकी वीरता का वर्णन करते हुए कहा है :–

राजा वीर बानपुर वारौ, भरन लगो अपनी हुंकार।
धक–धक छाती होंन लगी जब, मर्दनसिंह नें दई ललकार।।
जैसें शेर दहाड़ें वन में, जरियंन–जरियंन दुकें सियार।
जैसें चूहा दुकें बिले में, वन में बड्डो देख बिलार।।
दुकें चिरइयाँ डारन–डारन, जई सें सामैं देखैं बाज।
खैंच सनाकौ रै गये गोरा, जैसें टूट परी हो गाज।।
बटन टूट गये पैन्ट सूट के, फीकौ पर गओ मौकौ रंग।
मनई–मनईं मुस्काय बुंदेला, देख–देख गोरन के ढंग।।
औंधे डर रये पौंद उगारें, कछू जनें रै गये मौं बांय।
पाछे सें पिचकारी छोड़ें, मौ हुन धूरा–कूरा खांय।।
ओ माइ गाड कहें आड़े भये, मौ हुन गिरें करूला चार।

आँखें मिच–मिच जायें उनन कीं, मर्दनसिंह की सुन ललकार।
आँखें नीलीं पीलीं फारें, ऊपर उड़ रये भूरा बार।।

जरा उनका युद्ध–कौशल देखिये –

दो–दो हाथ चले वीरन के, आड़े हो गये पाँव पसार।
आकैं चढ़ गये वीर–बुंदेला, दोइ–दोई हाँतन लयें तलवार।
भागे गोरा खेत छोड़ कैं, अपनें डार–डार हतयार।
धरनी रंग गई रकत धार सें, कई अक लासें दईं बिछाय।
महाकाल कौ रूप धरो है, निंठुअई नईं वे देसत खांय।।
धन्न–धन्न कै उठो अचानक, सामैं सें भागो ह्यूरोज।
प्रात अमावस जैसें आ गई, कुजनें कबैं दिखानें दोज।।
सन–सन सन–सन तेगा छूटे, छपक–छपक चलबैं तलवार।
छक–छक–छक–छक बरछीं चल रईं, भक भक भाला की है मार।
भन–भन भन–भन तोपें छूटें, सन–सन सन–सन चलबैं तीर।
पाछें पाँव धरें नईं कैसऊ, फेंटा कसें दिखा रये वीर।।
प्रलय मचा दओ महावीर नें, एकई हो गये दिन अरू रात।
अपनी–अपनी परी सबन खौं, करें न कोउ–कोउ सैं बात।
टन–टन टन–टन डंका बाजें, डम–डम डम–डम बाजे डोल।
भगे सिपाही अंगरेजन के, दुकबे ढूंढ़त फिरबैं पोल।।
कोउ पुछइया नइया भैया, की की कितै डरी है लास।
कछू कतन नई बनबैं ऊसें, हो गओ तो ह्यूरोज निरास।।
लौट न आबैं अब झाँसी खौं, अबकी बचें हमारे प्रान।
बड़े लड़इया झाँसी वारे, दै रये जीवन कौ बलिदान।।

–(पं. ज्वाला प्रसाद दीक्षित से साभार प्राप्त)

इस प्रकार मर्दनसिंह ने झाँसी के मैदान में अंग्रेजों से घमासान युद्ध किया था। और अपने बाहुबल से विजयश्री प्राप्त की थी। उन्होंने ह्यूरोज की सेना के साथ झाँसी के अतिरिक्त मोंठ और कालपी में भी युद्ध किया था और अंग्रेजी सेना के छक्के छुड़ा दिये थे। अंग्रेज उस अमर वीर के सामने कभी टिक नहीं पाये थे। झाँसी वाली रानी उन्हें ज्येष्ठ भ्राता का सम्मान प्रदान करती थीं। महाराज साहब भी रानी साहिबा की रक्षा हेतु प्राणार्पण करने हेतु तत्पर रहते थे। इसी कारण से अंग्रेज उनसे रूष्ट रहते थे। अंग्रेजों की सेना ने बानपुर के दुर्ग पर चढ़ाई करके उसे ध्वस्त कर दिया था। मर्दनसिंह

ने अंग्रेजों से लड़ते–लड़ते मातृभूमि के श्री चरणों में अपने प्राण–प्रसून अर्पित कर दिये थे। वीरों की भाँति वे जीवन भर अंग्रेजों से युद्ध करते रहे, किन्तु शत्रुओं के सामने अपना मस्तक नहीं झुकाया। जामनेर नदी के समीप स्थित बानपुर का दुर्ग ध्वस्त हो गया और उनके पड़ोसी राज्य टीकमगढ़ की महारानी लड़ई सरकार तमाशा देखती रही। यहाँ तक कि तत्कालीन दीवान नत्थे खाँ ने दुर्ग ध्वस्त करने वाले उन अंग्रेजों का सम्मान किया था। इसी कारण से स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास टीकमगढ़ नरेश को राष्ट्रद्रोही मानता है। नत्थे खाँ के मन में महारानी लक्ष्मीबाई और राजा मर्दनसिंह के प्रति विद्वेष भाव था। राजा मर्दनसिंह एक असाधारण वीर थे। उसके शौर्य को देखकर अंग्रेज वीर सदैव भयभीत रहा करते थे। उनके शौर्य की प्रशंसा करते हुए कविवर रत्नेश लिखते हैं –

सुमिल सरूपी शुद्ध, सरल सुटार टारी,
मानो विधि–विधि सों बजाती सर्वराती है।
श्रवन सुनेते शब्द अस्त्रन के डारे सब,
शत्रुन की चमू चहूँओर भर्भराती है।
कहें 'रत्नेश' वेश तिनकी अराजें सुन,
सकल अचेतन की छाती धर्धराती है।
तोपीवीर मर्दन महाराज तोरी,
धन के समान ये धरा पर गर्गराती है।

ऐसे थे वे वीर बाँकुरे महाराज मर्दनसिंह जू ।

प्रवीण राय कौ साकौ– बुंदेलखण्ड में राय प्रवीण की गाथा बहुत प्रचलित है। इस लोकप्रिय कथानक के आधार पर अनेक उपन्यासों की रचना की गई है, जिनमें कल्पना और इतिहास का मिला–जुला रूप दिखाई देता है। रीतिकाल के प्रथमाचार्य केशवदास जी की शिष्या राय प्रवीण से तो सारा बुंदेलखण्ड भलीभाँति परिचित ही है। कुछ विद्वानों का विचार है कि वह ग्राम 'वरदुवाँ' के माधौ लुहार की अत्यन्त सुंदर पुत्री थी। राजा इन्द्रजीत उसे देखते ही आकृष्ट हो गये थे और उसे पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया था। हिन्दी साहित्य का इतिहास इस मान्यता की भलीभाँति पुष्टि करता है कि आचार्य केशव ने प्रवीण राय को काव्य शास्त्र की शिक्षा देने के लिए कवि प्रिया और रसिक प्रिया नाम के लक्षण ग्रंथों की रचना की थी। राजा इंद्रजीत के दरबार को सुशोभित करने वाले आचार्य केशव का सरस होना स्वाभाविक था। इन्द्रजीत का दरबार तो परियों का अखाड़ा था। वह सदैव कंचन कामिनी से घिरा रहता था। इतने अधिक

रसिक कवि की शिष्या रसिक क्यों नहीं होगी? रसिकता के साथ ही उन्हें संगीत और काव्य शास्त्र का अच्छा ज्ञान था। वह सर्वगुण संपन्न होने के कारण दरबार की नर्तकी तो थी ही, साथ ही वह राजा इन्द्रजीत की नायिका भी थीं। जब वह समस्त आभूषणों से सुसज्जित होकर दरबार में उपस्थित होती थीं, तब समस्त दरबारी हतप्रभ हो जाते थे और राजा इन्द्रजीत ललचाई और तृषित सी आँखों से उसकी ओर देखते रहते थे। बसंत ऋतु के अवसर पर बसंतोत्सव का आयोजन किया जाता था। सर्वत्र हास–परिहास, विनोद, संगीत और काव्यमय वातावरण रहता था। कहा जाता है कि आचार्य केशव ने अपनी शिष्या की काव्य प्रतिभा की परीक्षा ली थी। उन्होंने अपनी शिष्या से कुछ प्रश्न पूछे थे –

केशव – **कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।**
प्रवीण राय – **कटिकौ कंचन काटि कैं कुचन मध्य धर दीन।।**
केशव – **जो कुच कंचन के बनें, मुख कारो किहि कीन।**
प्रवीण राय – **जीवन ज्वर के जोर में, मदन–मुहर कर दीन।**

अपनी शिष्या की परीक्षा लेकर केशव पूर्ण संतुष्ट हो गए थे। राजा इंद्रजीत राय प्रवीण को प्राप्त करके अपने आपको धन्य और गौरवशाली समझते थे। उसने अपनी प्रेमिका के लिए सुन्दर भवन का निर्माण कराया था और चारों ओर एक पुष्प वाटिका लगवाई थी। ओरछा का फूलबाग और प्रवीण राय का महल आज भी विद्यमान है, जो आज ध्वस्त और जर्जर स्थिति में है। उन दिनों देश में बादशाह अकबर का शासन था। वे उदार एवं समस्त धर्मों का सम्मान करते थे। उनके दरबार में सभी धर्मों के विद्वान सुशोभित होते थे। कुछ सरदारों ने अकबर के समीप जाकर ओरछा की राज नर्तकी राय प्रवीण के रूप–गुण और सौन्दर्य की भरपूर प्रशंसा की। उन लोगों ने यहाँ तक कहा कि जहाँपनाह वह नर्तकी आपके दरबार की शोभा के योग्य है। अतः आप उसे अपने ही दरबार में बुला लीजियेगा। अकबर तो अपने दरबार में इस प्रकार की हस्तियों और प्रतिभाओं को रखना ही चाहता था। ओरछा तो उनके अधीन ही था। अकबर ने फौरन ही राजा इन्द्रजीत के पास यह फरमान भेजा कि तुम शीघ्र ही राय प्रवीण को शाही दरबार में उपस्थित करो। फरमान पाते ही राजा इन्द्रजीत हतप्रभ हो गये, किन्तु कुछ ही समय बाद उनमें बुंदेलों का शौर्य जाग्रत हो उठा और वे क्रोधित होकर कहने लगे–

हम न दैहैं सुन लो भइया, अपनी प्यारी राय प्रवीन।
हम बुंदेला वीर–बाँकुरे, हमें न समझौ कैंसऊँ दीन।।

इतनीं कै कै इन्द्रजीत में, जाग उठों क्षत्रिन कौ तेज।
अपनी प्यारी रानी के बिन, सूनी रहें हमाई सेज।।
पानी अमर बेतवा कौ है, अमर रहे क्षत्रिन की शान।
जान दैहैं अपनी लक्ष्मी, चाहें भली छूटबैं प्रान।
उनके कारन ई धरनी पै, बैकैं रहें खून की धार।
खट्टे दाँत करें मुगलन के छपक–छपक चलबैं तलवार।।
मौरा मुरकैं मुगलन के जब, छूटैं कैउ अगनिया बान।
लूट न पाबैं कोउ लुटेरों, वीर बुंदेलन की जा शान।।
नगर ओरछा सूनों हुइयै, जब कउं जैहैं राय प्रवीन।
कइयों अब तुम बादशाह सौं, हमें न जानों निर्बल दीन।।
राजा बोले दूत सों, हमें न जानौ हीन।
इंद्रजीत के जियत लों, मिलें न राय प्रवीन।

ऐसा कहकर दूत को इन्द्रजीत ने वापिस लौटा दिया। अब आदेश की अवहेलना का समाचार सुनकर बादशाह बहुत क्रोधित हुए और इन्द्रजीत पर एक करोड़ रूपये का जुर्माना कर दिया। एक करोड़ का जुर्माना सुनकर राजा इंद्रजीत घबड़ा गये। केशवदास जी ने महाराज को सांत्वना देते हुए कहा कि आप चिन्ता मत कीजिए। मैं बीरबल से मिलकर जुर्माना माफ करवा दूँगा। आप जिद मत कीजिए, हठ छोड़ दीजिए। हम लोगों में बादशाह से टक्कर लेने की सामर्थ्य नहीं है। आप हमारे साथ राय प्रवीण को शाही दरबार में भेज दीजिएगा। मुझे उसकी चतुरता और बुद्धिमत्ता पर पूर्ण विश्वास है। वह अपने वाक्चातुर्य के बल पर अपनी मर्यादा की रक्षा कर लेगी। राजा केशवदास जी के विचार से पूर्ण सहमत हो गये। आचार्य केशव की बीरबल से घनिष्ठ मित्रता थी। उन्होंने बीरबल से मिलकर इन्द्रजीत का जुर्माना माफ करा दिया। राय प्रवीण को शाही दरबार में उपस्थित होने का वचन भी दे दिया।

अपने वचनों का परिपालन करने हेतु आचार्य केशव की शिष्या को विदा करते समय राजा इन्द्रजीत की छाती धक–धक करने लगी। गाथाकार ने उस दृश्य का वर्णन करते हुए लिखा है –

बै रई बै रई है अंसुवन की धार, जिया में धीरज नईं बंदबैं।

× × × ×

मौकौ रंग परो है फीकौ, पीरी पर गई मुइयां।

कबै मिलें मोइ सगुन चिरइयां, मन पिंजरा की टुइयां।
तुम बिन जीवन जौ भओ बेकार, जिया में धीरज नईं बंदबैं।

× × × ×

जैसें मनी बिना मनिहारों, जल बिन मरें मछरिया।
ऊसई बिना तुमारे सजनी, सूनीं रनें नगरिया।
तुम बिन सूनौं है संसार, जिया में धीरज नईं बंदबैं।

× × × ×

को अब गीत सुनाबै नोंने, को अब चित्त चुराबैं।
को अब मोरे राज–भवन में, चाँदी सी बरसाबैं।
सूनौ हुइयै सबई दरबार, जिया में धीरज नईं बंदबैं।

× × × ×

कै नईं सकत काय आंखन सें, नदी बेतवा बै रई।
अपनी ऊ कल–कल की धुन में, मन की पीरा कै रई।
हो गई अब की मोई मुगलन सें हार, जिया में धीरज नईं बंदबैं।

(श्री कोमलचंद्र जैन, बल्देवगढ़ से प्राप्त)

महाराज को व्याकुल होता हुआ देखकर राय प्रवीण उन्हें सांत्वना देती हैं–

चिन्ता जिन करियौ मोरे महाराजा,
जल्दी घरै लौट आंय मोरे लाल।
अपनों धरम हम पालें हो राजा,
छुयें न कोउ मोइ छांय मोरे लाल।
गुरू केशव से हैं मोय राजा,
उनके रहें नईं भांय मोरे लाल।
भौतई सीख लई विद्या हमनें,
अब नईं दैसत खांय मोरे लाल।

(श्री रमेश शंकर सक्सेना, बल्देवगढ़ से साभार प्राप्त)

राय प्रवीण ने अपने प्रेमी राजा को भलीभाँति सांत्वना तो दे दी, किन्तु मन ही मन सोचने लगी कि यदि किसी कारणवश बादशाह ने मुझे दरबार में ही रोक लिया तो मेरे पातिव्रत धर्म का निर्वाह कैसे होगा? अपनी शंका का निवारण करने हेतु वह अपने गुरुदेव जी के समीप जाकर कहने लगी–

आई हों बूझन मंत्र तुम्हें, निज स्वासन सों सिगरी मति खोई।
देह तजों कि तजों कुल कानि, हियें लजौ लजि हैं सब कोई।
स्वारथ औ परमारथ कौ पथ, चित्त विचार कहों तुम सोई।
जाय रहें प्रभु की प्रभुता, अरू मोरौ पतिव्रत भंग न होई।

आचार्य केशवदास जी ने भलीभाँति समझाकर सांत्वना दे दी और कहा– कि तुम निश्चिन्त रहो। तुम्हारे धर्म का पूरा–पूरा पालन ही होगा। आचार्य केशव की आज्ञा का उल्लंघन कौन कर सकता था? अंत में केशवदास अपनी शिष्या सहित अकबर के शाही दरबार में उपस्थित हो गये। बादशाह के समक्ष पहुँचकर दोनों ने झुककर प्रणाम किया। आदेश पाते ही दोनों शांत होकर बैठ गये। इसी बीच बीरबल ने उपस्थित होकर एक समस्या पूर्ति हेतु प्रवीण राय के समक्ष प्रस्तुत की। समस्या दी गई थी– **'अकब्बर तेरे'।** वह तो महान विदुषी थी ही। उसने शीघ्र ही समस्या की पूर्ति कर दी–

अंग–अंग नहिं कुल सम्भु सुकेहरि लंक गयंदहिं घेरे।
हैं कच राहु तहीं उदैं इंदु, सुकीरकि विंबन चौंचन फेरे।
भौहें कमान तहीं मृग लोचनि, खंजन क्यों न चुगें तिल नेरे।
कोउ न काहु सें बैर करें, सु डरे डर शाह अकब्बर तेरे।।

इतनी सुंदर और कलामय पूर्ति तो बड़े–बड़े विद्वान कवि भी नहीं कर सकते। समस्त दरबारी और अकबर के नौ रत्न स्तब्ध रह गये। समस्त विद्वानों ने इस काव्य कला की भूरि–भूरि प्रशंसा की और गुरुवर केशव को हार्दिक बधाई दी। कुछ समय पश्चात् अकबर ने राय प्रवीण से निम्नलिखित प्रश्न पूछे और उसने शीघ्र ही उन प्रश्नों का काव्य मय उत्तर दे दिया –

अकबर – **युवन चलत तिय देह की, कहक चलति केहि हेत।**
प्रवीण राय– **मंमथ वारि मशाल सों, सेत सिहारे लेत।।**
अकबर – **ऊँचे हुयैं सुरवसि किये, समुहैं नर बस कीन।**
प्रवीण राय– **अब पाताल बस करनि को, छरकि पयानों कौन।**

अब अकबर शांत होकर रह गये। वे मन ही मन प्रवीण राय की काव्य कला की प्रशंसा करने लगे। अकबर के मन में बार–बार यह इच्छा जागृत होने लगी कि इस प्रकार की अनन्य विदुषी तो शाही दरबार के ही योग्य है। उसे हमारे रत्नों के मध्य ही सुशोभित होना चाहिए।

बादशाह ने उससे प्रश्न किया कि क्या आप हमारे दरबार की शोभा बढ़ा सकती हो? प्रवीण राय ने उत्तर दिया कि हाँ! महाराज मेरा अहोभाग्य है जो मुझे आपके शाही दरबार में आश्रय प्राप्त हो, किन्तु महाराज मैं आपसे एक निवेदन करना चाहती हूँ। आप तो महान विद्वान और गुणग्राही बादशाह हैं। जरा मेरी एक विनती सुन लीजियेगा–

विनती राय प्रवीन की, सुनिये शाह सुजान।
जूठी पातर भकत को, बारी वायस श्वान।।

इस काव्यमय भर्त्सना का उत्तर बादशाह के पास कुछ भी नहीं था। वे शांत चित्त होकर रह गये। उन्होंने उसे अपने दरबार में रखने का विचार छोड़ दिया। बादशाह ने आचार्य केशव से कहा– कि आचार्य जी आप निश्चित ही बधाई के पात्र हैं। वह बुंदेल–वसुंधरा धन्य है और उस पवित्र वेत्रवती का शीतल जल भी धन्य है, जिसके किनारे राय प्रवीण जैसे श्रेष्ठ रत्न अवतरित हुए हैं। अंत में उन्होंने राय प्रवीण को बहुमूल्य पुरस्कारों से पुरस्कृत करके ससम्मान विदा किया। जाते समय गुरु और शिष्या ने बादशाह को प्रणाम किया और कहा– कि आपकी आज्ञा पाते ही हम लोग शाही दरबार में उपस्थित हो जाया करेंगे। इतना कहकर वे अपने नगर ओरछा की ओर चल दिये।

राजा इन्द्रजीत राय प्रवीण की चिन्ता में सूखकर काँटा हो गये थे। रात–दिन उनकी दृष्टि उसी मार्ग की ओर लगी रहती थी। उन्हें भय था कि कहीं बादशाह उसे दरबार में न रख लें। किन्तु संयोगवश वे दोनों सकुशल ओरछा लौट आये। समाचार पाते ही इन्द्रजीत में नवजीवन का संचार हो गया। उन्होंने आचार्य केशव और राय प्रवीण का हार्दिक अभिनंदन किया। सारे ओरछा नगर में आनंद की लहर दौड़ गई। सारा नगर सुसज्जित हो गया। घर–घर दीप मालिका मनाई गई।

नगर ओरछा जगमग हो रओ, खुशियां छाई हो।
अपने घर की गुमी गुमाई, लक्ष्मी पाई हो।
अष्ट सिद्धि नव निधियां, जैसे संगै लाई हो।
अकबर जैसे बादशाह नें, गाथा गाई हो।।

सर्वत्र आनंद का वातावरण निर्मित हो गया। ओरछा नगर की अनुपम विभूति का प्रसार और प्रचार सारे भारत में हो गया। जिस विदुषी महिला ने बुंदेलखण्ड का मस्तक ऊँचा किया है, वह निश्चित ही प्रशंसा के योग्य है। नगर ओरछा में आज भी उसके स्मृति चिन्ह विद्यमान हैं। इस लोकप्रिय कथानक के आधार पर कल्पना और इतिहास

के मिश्रण से आज उपन्यासों की रचना की गई है, जिनके विषय में विद्वानों का चिंतन और मनन लगातार संचालित है।

कारसदेव कौ साकौ– बुंदेलखण्ड के हर गाँव में कारसदेव की पूजा की जाती है। उन्हें गोपालक देव मानकर अहीर, गड़रिया और गूजर जाति के लोग उनकी पूजा किया करते हैं। दूध, दही और शुद्ध घृत चढ़ाकर उनकी पूजा की जाती है। कारसदेव सच्चे गौ रक्षक वीर थे। यही कारण है कि उनकी मढ़िया के सामने घोड़ों के प्रतीक बने रहते हैं। कारसदेव उन घोड़ों पर चढ़कर गोहंता शत्रुओं से युद्ध करते थे। वे राजपूत कालीन हैहयवंशीय अजयपाल के आश्रित और समकालीन थे। इनका समय ग्यारहवीं–बारहवीं सदी के मध्य माना जाता है। उनके साथ ही हीरामन का उल्लेख है। कारसदेव, हीरामन के साथ जंगल में गायें चराया करते थे। ऐसा कहा जाता है कि बुंदेलखण्ड के झाँझ ग्राम के एक गूजर परिवार में माता सरनी थीं। वे निःसंतान थीं। माता सरनी ने संतान प्राप्ति के लिए बारह वर्ष तक निराहार रहकर भगवान शंकर की कठोर तपस्या की थी। शंकर जी की कृपा से उन्हें प्रातःकाल सरोवर में एक कमल के विशाल फूल पर लेटा हुआ सुंदर बालक दिखाई दिया। सरनी समझ गई कि भगवान शंकर की कृपा से यह सुंदर बालक मुझे ही प्राप्त हुआ है। यह सोचकर उसने उस बालक को पुचकारकर गोद में उठा लिया और मन ही मन कहने लगीं कि भगवान शंकर ने मेरी मनोवांछा पूर्ण कर दी है। यह सारी की सारी लोक गाथा बुंदेली के लोकप्रिय गोटों के रूप में वर्णित है। ये गोटें बुंदेली की विचित्र लोक ध्वनि में डौरू (डमरू) लोकवाद्य के साथ गाई जाती हैं। पहली ही गोट से माता सारनी और बहिन ऐलादी का परिचय प्राप्त होने लगता है। जरा सुनिये गोट के बोलों को –

बारा बरस तपिया तपी, करे न अन्न अहार।
सरनी गई असनान खौं, अहेले तला के पार।
कमल पै पोंढ़ों राजकुमार।
सौ सौ दल कमला खिले, भ्रमर रहे गुंजार।
एक कमल पै ऐसें लगैं, जैसें दियला जले हजार।
कमल पै पोंढ़ों राजकुमार।

माता सरनी अपनी तपस्या पूर्ण होने पर भगवान शंकर का वरदान मानकर शिशु को गोदी में उठाकर पुचकारने लगीं –

उठा सरनी ओली लये, कारस को पुचकार।
जप–तप सब पूरन भये, मोरी शिव ने सुनी पुकार।
कमल पै पोंढ़ों राजकुमार।

पुत्र प्राप्त होते ही सरनी का घर प्रकाशित हो गया। मानो सरनी के घर का जन्म–जन्म का सारा अंधकार एक साथ ही दूर हो गया हो–

सुरजा थके चंदा थके, मौं की जोत निहार।
जनम–जनम कौ सरनी घर कौ, मिट गओ सब अँधियार।
झूलना झूलें राजकुमार।
कमल पै पोंढ़ों राजकुमार।

कारसदेव के हीरामन और सूरजपाल नाम के दो चचेरे भाई थे। वे भी वीर और साहसी पुरुष थे। उनके पास अपार गौनिधि थी। वे तीनों मिलकर गायें चराने जाते थे। एक गोट में कहा भी गया है–

धौरी ठाँढ़ी कान उठाय,
कारस नें दुदुआ पियों।
मन में भरैं उमाव,
सुमर भवानी को चलैं।

कुछ गोटों में कारस की बहिन ऐलादी की तपस्या का भी वर्णन किया गया है–

जनम से कारसदेव कनइया,
पतों भेंद काउयें नइयाँ।
ऐंलादी ने बारह बर्ष सेवा कर लई,
भोला अड़बंगे नाथ की।
तारी खुली भोला अड़बंगेनाथ की,
आज कौ माँगों पाव।
ऐंलादी ऐसे वीर माँग रई,
गइयंन के चरइया धौरी के रखइया।
सूरज पाल के भइया, जेठी बल पाय।

शंकर जी ने प्रसन्न होते हुए ऐलादी से कहा–

गूजर की बिटिया तैनें, मौसें माँग लये अड़बंगे वरदान।
जा आजई कौ मांगौ पाय।
इतनें बचना सुन लये, भोले अड़बंगे नाथ के
जा आजई कौ मांगौ पाय।

बिटिया घर–घर बुलौवा दै रई, माना सी झाँझ,
ओ बाई बैन हों, कातक अनालो सीते सीपार।

गाथा में कारसदेव के द्वारा गौ चारण का वर्णन है। वे भगवान कृष्ण की भाँति मुरली लिए हुए जंगल में गायें चराया करते थे। गोटों में गौ चारण का वर्णन किया गया है–

धौरी ठाँढ़ी कान उठाय, कारस नें दुदुआ पियो।
मन में भरैं उमाव,
सुमर भवानी को चलैं, मुरली में उचारैं नाव।
हीरामन मुरली बजाय।
मुरली के धुन में धौरी, कजरी गाय।।

एक बार गायों की रक्षा करते समय उन्हें भुवन सिंह (भुवना) से घोर संग्राम करना पड़ा था। भुवन सिंह गायों का चोर था। वह गायों को चुराकर व्यवसाय करता था। एक बार कारसदेव के साथ उसकी मुठभेड़ हो गई। कारसदेव महान वीर और शक्तिशाली योद्धा थे। उन्होंने भुमना का डटकर सामना किया और उसे परास्त करके खदेड़ दिया था। एक गोट में उस मुठभेड़ का चित्रण किया गया है –

बढ़ा दये बछेरा अपनें खिरक के,
कारस पौंचे भुवन के दोर।
रूरूर–खुरूर बच्छा डारे, ठाँढ़े बदलों लै लियो बहोर।
सुन लै भुमना कान लगाय।
बिजुरिया ऐसों खांड़ो कांड़ो, जैसें जीभ काड़ै करिया नाग।
भुमना आग बबूला भयौ, आओ सामैं मार छलांग।
बोलो दैहों मजा चखाय।
कारस सुन भुमना की बात, मनैं मन रहो मुस्काय।
कर लै दो–दो दावरे, बोलो खांड़ो उठाय।
अपनौ बदलों लेबैं चुकाय।
भुमना धरन गिरो रे ऐसें, जैसें गिरें टूट कैं डार।
बारा बरस कौ कारस खेलैं, लै कैं नगन तलवार।
झाँझ के मिट गये दुक्ख अपार।

कारसदेव गौ रक्षा के साथ लोकरक्षा में भी संलग्न रहे थे। इसी कारण से आज

बुंदेलखण्ड के गाँव–गाँव में उनके चबूतरे और मढ़िया बनी हुई हैं। पशु पालक लोग उन्हें देवता की तरह पूजते हैं। भाद्रपद शुक्ल पक्ष चतुर्थी को उनकी विशेष पूजा की जाती है। रात भर डौरू (डमरू) की ध्वनि के साथ विचित्र धुन में गोटें गाईं जाती हैं, जिनमें कारस के शौर्य और जनकल्याणकारी कार्यों का चित्रण होता है।

राजा गढुवाढार की बेटी जमदेव का सौन्दर्य वृत्त सुनकर कारस उसे प्राप्त करने के लिए लालायित हो गये। माता ने बहुत समझाया कि बेटा बाँगर जाने की बात छोड़ दो। अभी तुम बच्चे हो, वहाँ जाने योग्य नहीं हो। एक गोट में उस स्थिति का चित्रण किया गया है –

इतनें बचना सरनी माता नें सुन लये,
वीरन के धर्मन के द्वार।
वीरन बाँगर की रटना छोड़ दो।
वीरन तोरी छोटी उमर कइये लिलोर, टूटे नइयाँ दूद के दाँत।
तोपैं ऐंड़न सें बछेरा दबेंना, तोपैं सदें ना दुधारों सेल।
बाँगर में बारा कोस कौ जंगल कइये,
सरगन में मड़राय रये कटंगी बाँस मोरे वीरन।
पैलें पारे सिंहन के लगे, दूजे पारे नाथन के लगे।
है झाड़ी बीच मझार।
तीजे पारे कइये पाँचों कलइया के, लगे मैंढ़े मझार।
चौथे पारे लगे हथियंन के, राजा रहो है लगवाय।
राजा नें गेर गढ़िया खाई खुदवा दई।
उर गेर गढ़िया कोट दओ फिरवाय।

ज्यादा हठ करते हुए देखकर अंत में माताजी ने कारस को बाँगर जाने की आज्ञा दे ही दी। आज्ञा पाते ही कारस घोड़े पर सवार होकर चल दिए। एक गोट में कारस के उत्साह का वर्णन किया गया है –

पाँच परिकम्मा बछेरा खौं दै दये,
उचट कैं हो गये बछेरा पै सवार।
तोरे बल भरोसे जा रये बछेरा, बाँगर सी बैरी भूमि खौं
बछेरा कारस वीरन खौं समझा रये,
कै ऐसें झुला दओ,
जैसें सरनी नें झुलाये पलना म झार।

गाथाकार ने कारस के शौर्य और स्फूर्ति का वर्णन करते हुए कहा है–

कारसदेव नें बदल दयें बछेरा बैरी की भूमि लौं,
कछुअक बछेरा धरनी चले, कछुअक चले असमान।
पैले पारे पै सिंहा मारे कारसदेव ने,
दूसरे पारे पै नाथन के फोर डारे मौन बाजे।
तीसरे पारे पै सिंहा मारें कारसदेव नें,
कसइया की लगी है जीकी दुकान, मेड़ै पै दई ढड़काय।
चौथे पारे हथियंन के कारसदेव ने दये हुमसाय।
हथियंन के पारे हुमसा दये आड़ी बारी नाकी बछेरा नें।
उड़–उड़ कैं पौंच गये, जाँ पलका डरे बेटी जमदेव के।
उड़कें बछेंरा बदलत जा रये माना सी झाँझ।
इक वन चाले दूजे वनचाले, तीजे चाले माना सी झाँझ।

अवसर पाकर कारसदेव बेटी जमदेव का अपहरण करके अपने ग्राम झाँझ ले गये। समाचार पाते ही राजा गढुवाढार बहुत क्रोधित हुआ और कारसदेव के मारने का उपाय सोचने लगा। किन्तु कारस के शौर्य और शक्ति को देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें अवतारी मानकर, मन ही मन हार मानकर बेटी का समर्पण कर दिया। एक गोट में कहा गया है –

राजा गढुवाढार ने सोदे लगा लये।
अपनी बेटी जमदेव के।
राजा गढुवाढार बदलत आ रये, माना सी झाँझ लौ।
हात जोर विनती कर रये, चरन छू रये माफी मांग रये।
राजा समजा रये कारसदेव खौं, मैं रहों हौं मानुस भरोसें।
मैं नई जानत तो कोनऊं औतारी नें लै लओ जनम।
माना सी झाँझ लौ।
इतनी दीनता देख लई राजन की धरमन के द्वार।
भिजवा दई राजन की बेटी, राजन के साथ।

इतना सब कुछ होने के बाद भी राजा ने बैर–भाव नहीं छोड़ा और मन ही मन कारस की मृत्यु का उपाय सोचने लगा। उसने एक ब्राह्मण के बालक को चुरेरे के रूप में ग्राम झाँझ भेजा। वह बालक झाँझ जाकर कारस की मृत्यु का उपाय खोजने लगा। एक गोट में इस स्थिति का चित्रण किया गया है–

बामुन के वारे नें चुरियां खरीद लईं,
धर लओ चुरेरे कौ भेष।
चुरियंन के पसारे धर लयें मूँढ़ मझार।
बदलत जा रये माना सी झाँझ में, माना सी झाँझ में।
की खोरन में लम्मी दै रये अवाज, ओ बाई बैनें हरों।
चुरियां तो पैर लो बड़े भारी मोल की।
सरनी माता भीतर सें बाहर कड़ आई, समजा रई चुरेरे कों।
बैंन ऐलादी चुरेरें खौं समजा रई।
मोरे कारस खौं पेर में पदम, माथे पै चंद्रमा होय।
जिन के बछेरा उड़ आसमान खौं जाय।
जीकौ मरइयां नइयाँ कोनऊं लोक में।
इतनें बचना चुरेरे नें सुन लये।

ये सारे समाचार सुनकर चुरेरे के लड़के ने राजा को दे दिये। उनकी शक्ति और पौरुष के विषय में जानकर राजा संतुष्ट हो गये। बेटी के लिये सुयोग्य वर जानकर बहुत प्रसन्नता हुई।

हरदौल कौ साकौ– बुंदेलखण्ड का यह एक कारूणिक कथानक है। इसमें बुंदेली संस्कृति का त्याग, तपस्या और बलिदान दिखाई देता है। इस प्रकार का उच्चादर्श अन्यत्र दुर्लभ है। इसमें देवर–भाभी का प्रेम, माता और पुत्र की भाँति पवित्र रूप में प्रदर्शित किया गया है। हरदौल अपनी आन–बान और मर्यादा की रक्षा के लिए हँसते–हँसते विष मिश्रित भोजन करके प्राण त्याग देते हैं। यदि इसे बुंदेली संस्कृति का जीता जागता उदाहरण कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह इतनी अधिक लोकप्रिय और प्रभावपूर्ण गाथा है कि सुनते ही लोग रो पड़ते हैं। नारियाँ राजा जुझार सिंह को कोसने लगती हैं–

जे भैया भैया खौं मारें, तिनपै गाज पर जइयो।
नजरिया के सामनें, तुम हरदम लाला रइयौ।

यह लोक गाथा आज भी बुंदेलखण्ड के नर–नारियों को उत्तम चरित्र का पाठ पढ़ाती हैं। आज बुंदेलखण्ड में ही नहीं, बल्कि भारत के गाँव–गाँव में हरदौल के मंदिर और चबूतरे बने हुए हैं। यहाँ की जनता उनकी देवता की तरह पूजा करती है।

वैसे लोकगाथा ऐतिहासिक ही है। जुझार सिंह, हरदौल, पार्वती और हैदर खाँ

आदि सभी ऐतिहासिक पात्र हैं। हरदौल को विष देने की घटना का उल्लेख गोरेलाल कृत बुंदेलखण्ड के इतिहास में है। हरदौल का भांजी के प्रति अत्याधिक स्नेह रहा है। यह धारणा सत्य हो सकती है, किन्तु प्रेत के रूप में विवाह में सम्मिलित होने की घटना काल्पनिक ही है। प्रायः बुंदेलखण्ड में इस प्रकार की काल्पनिक घटनाएँ गढ़ने की प्रथा है, जिससे गाथा में रोचकता का समावेश हो जाता है। जुझारसिंह और हरदौल वीरसिंह बुंदेला के पुत्र थे। वीरसिंह के तीन विवाह हुए थे। पहला विवाह श्याम सिंह धंधेरे की पुत्री अमृत कुँवरि के साथ हुआ था, जिनसे जुझार सिंह, पहाड़सिंह, नरसिंह, तुलसीदास, बेनीदास नाम के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे। दूसरा विवाह प्रभारसिंह की कन्या गुमान कुँवरि के साथ हुआ था, जिनके चार पुत्र और एक कन्या हुई, जिनमें हरदौल और कुंजावति का नाम प्रमुख था। वीरसिंह ने अपने पुत्रों को अलग–अलग जागीरें दे रखी थीं, जिनमें हरदौल को बड़ागाँव, भगवानदास को दतिया, चंद्रमान को जैतपुर और कोंच की जागीर दी गई थी। वीरसिंह की मृत्यु के बाद ओरछा का राज्य जुझार सिंह को दे दिया गया और हरदौल को दीवान बना दिया गया। दीवान हरदौल प्रजाप्रिय होने के साथ ही धर्मपालक भी थे, जिसके कारण जुझारसिंह की रानी पार्वती उन्हें पुत्रवत् प्रेम करतीं थीं। लाला हरदौल रानी को माता के समान सम्मान देते थे। बुंदेलखण्ड में हरदौल के सम्बन्ध में एक जनश्रुति प्रचलित है, जिसका उल्लेख इतिहास में स्पष्ट नहीं है।

अधिकांश विद्वान हैदर खाँ तलवार बाज की घटना को विष देने का मूलाधार मानते हैं, जबकि इतिहास में हैदर खाँ की घटना का कोई उल्लेख नहीं है। हो सकता है कि देवर–भाभी के घनिष्ठ प्रेम को देखकर जुझार सिंह ने संदेह किया हो या कुछ ईर्ष्यालु दुष्ट लोगों ने उल्टी–सीधी मिलाकर जुझारसिंह के कान भरे हों। कुछ भी हो किन्तु विष देने की घटना ऐतिहासिक है। ये सारी की सारी लोक प्रचलित गाथा काल्पनिक और असत्य नहीं हो सकती।

बुंदेलखण्ड में 'हरदौल साके' से संबंधित अनेक लोकगीत प्रचलित हैं, जिनमें बुंदेल बालाओं की ज़बान पर यह गीत सर्वाधिक झंकृत होता रहता है। वे अकेली भाभी पार्वती के ही लाला नहीं थे, वे सारी बुंदेली बालाओं के ही लाला हैं। एक गारी लोक गीत इसी मुख्य पंक्ति से प्रारंभ होता है–

नजरिया के सामनें, तुम हरदम लाला रइयौ,
जैसी लाला की है प्रीत,
तैसी सब दुनिया की रीत,

तनकऊ करी नईं अनरीत,
जैसी लाला नाय निभाई, ऊसई सदा निभइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।
न्योंतों करन खबासन आई,
दीनी लाला खौं दरसाई,
तुमरी रोवत है भौजाई,
काउ विधर्मी ने दयो सिखायों, चित्त में एक न दइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।
बहिनी नौंनी रच जिवनारी,
जी में साग परें अतकारी,
शक्कर घी गुर और खटारी,
जे मोये लाला प्रानन प्यारे, इनखौं विष जिन दइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।
छींकत भई है आय अबारी
कुसगुन भये भीतर सैं भारी
कैसें परसैं विष की थारी
भौंजी गिरी मोरछा खाकैं, प्यारे प्रान बचइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

पति की आज्ञानुसार महारानी पार्वती विष मिश्रित भोजन तैयार कर लेती हैं, किन्तु थाली परसते समय मूर्छित हो जाती हैं। उनके समक्ष विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। अंत में थार परस ही देती हैं। विष मिश्रित भोजन करते ही उनके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। अपने भाई की मृत्यु का समाचार सुनकर उनकी बहिन कुंजावती सिर पटक–पटककर रोने लगती हैं–

कुंजा हाल सुनें–सुन सोई,
तुरतई मूँढ़ पटक कैं रोई,
आप न आय उतैं सैं कोई,
भइया विष कौ कोर न छिइयौ, जो भइया सैं कइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

हरदौल की मृत्यु का समाचार पाते ही उनकी सारी सेना और उनके पालतू पशुओं ने एक ही साथ प्राण त्याग दिये–

फौज भीर सब संगै आनें,
लवा कबूतर तीतुर जानें,
सुवना नें तज दिये पिरानें,
अपुन चले अब तीन लोक खौं, खबर हमाई लइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

अचानक हरदौल की भांजी के शुभ विवाह का अवसर आ जाता है। लाला हरदौल की ओर से दहेज के रूप में सामग्री भेजी जाने लगी। गाड़ियों में भर–भरकर सामान जाने लगा।

तुरतईं गाड़ी साठ मंगाई,
शक्कर घी गुर और खटाई,
संगै सब सामान भराई,
जीतन पैजें गाजैं पर गई, मरतन काज बनइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

सामग्री के साथ लाला का आगमन हो गया। समाचार मिलते ही सारे नगर में खलबली मच गई। बहिन कुंजा, भैया से भेंट करने के लिए दौड़ पड़ी।

जब लाला की भई अबाई,
खलबल मची नगर में भाई,
बहिनी भेंट करन को आई,
खंभा फटो तेज के मारैं, नयन न भीर दिखइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

लोक में ऐसी किंवदन्ती है कि हरदौल प्रेत के रूप में शादी में पधारे थे। लाला ने टीका किया था और पंगत में घी परोसने का काम किया था। कल्पना ही सही, किन्तु हरदौल का अपनी बहिन के प्रति बहुत लगाव था। गाथा को कोरी कल्पना नहीं कहा जा सकता?

टीका करन लगे हैं लाला,
दीनी कंठनि मोतिन माला,
सिर पै पगड़ी और दुशाला,
ऐसों दूला बिरजन बिरजो, पलक ओट जिन रइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

(श्रीमती राजाबेटी, सरकनपुर से प्राप्त)

बुंदेलखण्ड के प्राचीन और नवीन कवियों ने इस कारुणिक कथानक को काव्य स्वरूप प्रदान किया है। कविवर बोधा ने रानी पार्वती की दीन दशा का चित्रण करते हुए लिखा है–

ग्रीष्म सी तन में लसैं, असुवन में बरसात।
रानी मधु रितु के सरिस, पीरी परी दिखात।
ग्रीष्म सी बनीं सुनकैं पिय की, गई सूखि कैं पान की बीरी।
कान्त गई तन की कुम्हला, अति हो गई इंद्रनि की गति धीरी।
धीरज खोय गयो हिय सौं, गिरि भूमि परी अति हो गई सीरी।
देखति–देखति बोधा जुझार के, रानी बसंत सी हो गई पीरी।

रानी की दुविधापूर्ण स्थिति को देखकर राजा जुझार सिंह ने रानी को ललकारते हुए कहा। भैयालाल व्यास के शब्दों में–

यदि साँचो धरम पतिव्रत है, तो तोय परीक्षा दैनें हैं।
हरदौल लला खौं बिष के भोजन, अपनें हाँतन दैनें हैं।
सुनकैं रानी हो गई सुन्न, झकझोर झमा सो आन लगो।
धरती घूमत सी दिखन लगी, नभ टूटत सों दरसान लगो।
कानन में जैसों सीसों पिघला कैं, भर दओ हो काहू नें।
हिरदे में उथल–पुथल मच गई, सारौं शरीर झुलसान लगो।
पिंजरा में जैसें बंद सुआ, बिन पंखन के घबरान लगो।
आँखन की पुतरी अधर टंगी, असुवन सें हो गई जोत मंद।
तालू सैं चिपकी जीभ और, ओंठन के तारे भये बंद।
सावन भादों सी लगी झरी, अँसुवन सें आँचर गीलो भओ।
कचनार कली सी रानी हरदी, जैसों रंग पीरौ हो गओ।

कुछ समय पश्चात् थोड़ा सा धैर्य बटोरकर रानी ने हाथ जोड़कर अपने पति से कहा–

हाय दई कैसी कहा, होनी होत दिखात।
कही भ्रात सों भ्रात नें, विष दैबे की बात।
धीरि–धरि बोली हू उठि पिय सों नवाय शीश।
जानकैं अजान बन, कुमति कमइयौ ना।
सुमति सुजान गुनवान हों बुंदेला वीर।

सूर–सूर्य वंश खौं कलंक लगइयौ ना।
बोधा कवि लाला हरदौल सों भ्रात।
ताहि विष दैबे की, कुटेक अजमइयौ ना।
चुगल चबाइन के परि कैं कुचक्र माहि।
चनन के धोकैं कउं मिर्चे चबइयौ ना।।

इसी भाव को अमर लोक गायक भगवती शरण 'दास' ने अपने एक लोकगीत में व्यक्त किया है–

निरदोषी हरदौल लाला खौं, बिष भोजन करवावत काय।
प्रीतम पाप कमाउत काय।
चुगल चबाइन की बातन में, जान बूझकैं आवत काय।
आज अपनेई हाँतन से अपनी, भुजा कटाउत काय।
पुत्र समान लला हैं मोरे, ताहि कलंक लगाउत काय।
शत्रु गर्व गारन कुलतारन, बिना मौत मरवाउत काय।
'दास' कहैं पतिव्रता धर्म खौं, जा किरया अजमाउत काय।

रानी दुविधा में पड़कर सोचने लगती हैं –

पति की कही करों तो देवर, बिना मौत जाबैं मारौ।
जो पति की आज्ञा न पालों, धरम बिगर जाबैं सारौ।
इतै जाव तौ कुआं, उतै जाव पुखरी कौ दल–दल भारौ।
करों प्रभु अब निनवारौ।।

रानी के अंतिम निर्णय का वर्णन करते हुए बुंदेलखण्ड के सुप्रसिद्ध कवि घनश्याम दास जी पाण्डेय लिखते हैं–

पति आज्ञा सिर पर धरी, पतिव्रता सी नार।
विषमय देवर के लिए, भोजन कर तैयार।
कूट–कूट कालकूट कंद औ कचौड़ियों में।
मालपुवा मोदक में माहुर मिलाया था।
सागों औ शक्कर में सान दिया शंखिया।
पूड़ी पय पापड़ों में पन्नगी पिलाया था।
'विप्र' घनश्याम बालूसाई में बच्छ नाग।
हलुबे में हरताल हल्दिया हिलाया था।

सेवों में सिंगिया अमृतियों में अही फेन।
गंगा जल के गढुबे में गरल गलाया था।

अंत में लोक कवि दास ने उनकी मृत्यु का वर्णन करते हुए लिखा है–

घर–घर में हो गओ शोर, लला हरदौल मरे विष खाकैं।
छायो शोर ओरछा भीतर,
मर गये सुनतन नौकर चाकर,
मर गओ मैंतर जूठन खाकर,
मर गओ श्वान शिकारी संगै, रये सब रूदन मचा कैं।
मरे संग साथी बलवान,
तोता मैना तज दये प्रान,
प्रजा लगी हिय में बिलखान,
गज घोड़ा मर गयों थान पै, गइयाँ मरी रंभा कैं।
भावज सिर धुन–धुर पछताबैं,
नरपति जुझार सिंह दुख पाबैं,
बाहर आबैं भीतर जाबैं
अपनी करनी पै पछताबैं
जुगयानें सइयाँ दरवाजें, दई फिर चिता लगा कैं।
लाला चिता सेज पै सो गये,
जग में बीज सुजस के बो गये,
मन कौ मैल भ्रात कौं धो गये,
'दास' कहें दई पंच नकरिया, उनके गुन–गन गाकैं।
घर–घर में हो गओ शोर, लला हरदौल मरे विष खाकैं।

हरदौल बुंदेलखण्ड की एक अमरगाथा है। वैवाहिक अवसरों पर हरदौल के गीतों का सर्वाधिक गायन किया जाता है।

डारे पार पै डेरा, दिमान बाबा बड़े अलबेला।
दरस खौं भरों है मेला।
पान बताशा के भोग लगाए,
डार गरे में सेला।
दिमान बाबा बड़े अलबेला।

सबकी विपत में हैं रखवारे,
करबें नईं तनकऊ झेला।
दरस खौं मेलों है मेला।

लाला हरदौल बुंदेली मर्यादा और आन–बान की जीती जागती प्रतिमा थे। उनका त्याग और बलिदान अनुकरणीय है।

पंवारे की परंपरा

पंवारे के संबंध में यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि यह शब्द कहाँ से आया है? ब्रज–अंचल में पंवारे का अर्थ झगड़ा या झंझट है। इसे युद्ध का पर्याय भी कहा जा सकता है। कुछ विद्वानों ने पंवारे को परमार वंश से संबंधित माना है। परमार वंशीय क्षत्रियों का प्रमुख कार्य युद्ध ही था। वे युद्ध करते–करते सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देते थे और अंत में वीरगति को प्राप्त हो जाते थे। धीरे–धीरे उनकी जाति युद्ध का पर्याय बन गई और उनकी वीर गाथाओं का नाम पंवारे पड़ गया। अतः अब यह निश्चित ही किसी वीर का शौर्य चित्रित किया जाता है। कुछ समय बाद यह शब्द युद्ध के अर्थ में रूढ़ हो गया। परमार वंश के पश्चात् हर क्षत्रिय के शौर्य का वर्णन पंवारों के रूप में होने लगा। ये सबकी सब ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखी जाने वाली लोक गाथाएँ हैं। इनमें वर्णित पात्र ऐतिहासिक ही होते हैं। कल्पना के मिश्रण से उनको रोचक बनाया जाता है। जब कभी इनका ऐतिहासिक विश्लेषण किया जाता है, तो कल्पना प्राचुर्य के कारण अप्रामाणिक से प्रतीत होने लगते हैं। इसमें गाथाकार दोषी नहीं है। कल्पना और लोक रूचि के कारण इस प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। कुछ घटनाएँ और कुछ तिथियाँ इतिहास से तालमेल नहीं खाती। पंवारों की संख्या अनेक हैं। किसी भी क्षत्रिय की शौर्य गाथा का नाम पंवारा रख दिया गया, जबकि पंवारों का नामकरण परमार वंशीय क्षत्रियों की लोक गाथाओं के आधार पर हुआ है। ये प्रायः वीर क्षत्री शक्ति के उपासक रहे हैं। माँ शक्ति की ही कृपा से उनमें शौर्य और शक्ति का संचार हुआ था। आल्हा–ऊदल माँ हिंगलाज के भक्त थे। छत्रपति शिवाजी और महाराज छत्रसाल युद्ध में प्रयाण करने के पूर्व शक्ति की आराधना किया करते थे। उन दिनों पशुबलि और नरबलि की प्रथा थी। कभी–कभी कोई भक्त माँ के चरणों में अपना शीश भी काटकर चढ़ा देता था। ब्रज और बुंदेलखण्ड में जगदेव कौ पंवारों बहुत ही लोकप्रिय और प्रसिद्ध है। जगदेव ने देवी जी को प्रसन्न करने के लिए अपना सिर

काटकर चढ़ा दिया था। किन्तु देवी जी की कृपा से उनके धड़ में से नवीन सिर उत्पन्न हो गया था। बुंदेलखण्ड के पंवारे में तो यह कहा गया कि जगदेव के धड़ पर जब सिर रखा गया, तभी वह जीवित हुआ था। किन्तु पंवारे में तो यह बताया गया कि जगदेव के धड़ में से नया सिर उत्पन्न हुआ था। उसका सिर तो हवन कुण्ड में जलकर भस्म हो गया था। जगदेव देवी जी का अनन्य भक्त था। इसी कारण से जगदेव के पंवारे का गायन देवी जी के गीतों के साथ किया जाता है। बुंदेलखण्ड में जगदेव के अतिरिक्त अमरसिंह, अमानसिंह और सुजानसिंह के पंवारे गाये जाते हैं। कारसदेव की गोटों के साथ कारस की वीर गाथा भी पंवारे का ही रूप हैं।

ब्रज में जगदेव, अमरसिंह, बलवंत, जयमाल, फतेहसिंह और होमपाल नाम के पंवारे गाये जाते हैं। ये सब के सब वीर रस के उत्तम उदाहरण हैं। इनमें युद्ध कौशल का सुंदर चित्रण है। ब्रज लोक साहित्य के प्रमुख अध्येता डॉ. सत्येन्द्र ने लिखा है कि –'बुंदेलखण्ड के पंवारे का अर्थ है परमार वंशीय क्षत्रियों का युद्ध या युद्ध पर आधारित कोई लम्बा कथानक।' मराठी में यह शब्द वीर गाथा के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ये सभी अर्थ, यह मूल अर्थ नहीं है बल्कि लक्ष्यार्थ के रूप में प्रयुक्त होते हैं। ये गाथाएँ प्रारंभ में परमार वंशीय क्षत्रियों तक सीमित रही होंगी। धीरे–धीरे ये हर वीर क्षत्री के शौर्य के चित्रण के लिए लिखी जाने लगी। इन पंवारों का गायन प्रायः नवरात्रि के अवसर पर किया जाता हैं। बुंदेलखण्ड के काछी, लोधी और बुनकर जाति के लोग नवरात्रि के अवसर पर ढोलक, नगरिया, झेला, झाँझें आदि लोक वाद्यों के साथ गाया करते हैं। लोग इन्हें 'भक्तें' या भजन कहते हैं। हर भजन के अंत में 'राजा जगत से माँ भले हो माँय' कहा जाता है। नवरात्रि के अवसर पर ज्वारे बोये जाते हैं। रोज रात्रि में गाँव के लोग एकत्रित हो जाते हैं और गाते–गाते नाचने भी लगते हैं। और कभी–कभी घुटनों के बल खड़े हो जाते हैं। इनके गायन के लिए एक विशेष लोकध्वनि निश्चित होती है। दूर से सुनकर लोग अनुमान लगा लेते हैं कि अमुक स्थान पर भक्तें हो रहीं हैं। पंवारों में देवी जी के भक्तों की गाथाएँ होती हैं। उनमें कभी पाण्डवों, कभी आल्हा–ऊदल और कभी राजा जगदेव की यश गाथाएँ गाईं जाती हैं। हर भजन में आदि–शक्ति की महिमा का गायन किया जाता है।

पंवारे की उत्पत्ति और विकास क्रम

कुछ गाथाओं का नामकरण जाति–विशेष के आधार पर किया जाता है। पंवारे 'परमार वंशीय', क्षत्रियों के पौरुष के आधार पर रचे गये हैं। राजपूत काल में क्षत्रियों

का मुख्य कार्य युद्ध करना था। अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए राजपूत घमासान युद्ध करते हुए प्राणोत्सर्ग करते रहे हैं। अपनी आन–बान और मर्यादा की रक्षा के लिए राजपूत क्षत्राणियाँ जौहर करतीं रहीं हैं। सच्ची वीरांगना बनकर युद्ध में शत्रुओं के छक्के छुड़ाती रही हैं। उन महान वीरों की पौरुष गाथाएँ आज किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं। मौखिक परंपरा और कल्पना की उड़ान के कारण ऐतिहासिक तत्त्व विलीन सा हो गया है। लोग उन्हें कोरी कल्पना कहकर उपेक्षित दृष्टि से देखने लगे हैं, किन्तु वे सबकी सब किसी न किसी रूप में इतिहास से संबंधित अवश्य हैं। इन सबके विकास क्रम का आकलन निम्नलिखित कालों के आधार पर किया जा सकता है।

महाभारत काल– समस्त महाभारत कौरवों और पाण्डवों की कथाओं से भरा पड़ा है। यह कथाओं का महासागर है। यह प्राचीन इतिहास का एक प्रमुख ग्रंथ है। यह युद्ध का पर्याय है। इसमें युद्धों का सर्वाधिक वर्णन है। कुछ विद्वान इसे अनीति पर नीति की विजय और अधर्म पर धर्म की विजय मानते हैं। कौरव वंश के प्रथम राजा के दो पुत्र उत्पन्न हुए। ज्येष्ठ पुत्र देवर्षि ने वैराग्य धारण किया और लघु भ्राता 'शांतनु' ने राज सिंहासन अधिग्रहण किया। शांतनु के ज्येष्ठ पुत्र भीष्म ने जीवन भर ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। उनके दो पुत्र चित्रांगद और विचित्रवीर्य की मृत्यु हो गई थी। शांतनु के दो पौत्र धृतराष्ट्र और पाण्डु थे। धृतराष्ट्र जन्म से अंधे थे। इस कारण से शांतनु की मृत्यु के बाद पाण्डु को राज्य प्राप्त हुआ, किन्तु असमय पांडु की मृत्यु होने के कारण अंधे धृतराष्ट्र को राज्य–सिंहासन प्राप्त हुआ था। पांडु की कुंती और माद्री नाम की दो रानियां थीं। कुंती से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्री के नकुल और सहदेव नाम के जुड़वां पुत्र उत्पन्न हुए थे। पाण्डु की संतान को पांडव कहा गया। धृतराष्ट्र की गांधारी आदि रानियों से सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्हें कौरव कहा गया।

धृतराष्ट्र महत्त्वाकांक्षी और लालची शासक सिद्ध हुआ। कौरव और पांडवों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर थे, इसलिए राज्य का अधिकारी उन्हें ही होना चाहिए था, किन्तु दुर्योधन की पद–लोलुपता और धृतराष्ट्र के कपटाचरण के कारण पाण्डवों के साथ अनेक अत्याचार किये गये और उन्हें राज्यमार्ग से हटा दिया गया। भरी सभा में द्रोपदी की लाज लूटने का प्रयास किया गया। लाक्षागृह में पाण्डवों को आग लगाकर भस्म करने का प्रयास और उन्हें वनवास दिया गया। भगवान कृष्ण की कूटनीति के कारण कौरवों के कुचक्र पर पानी फिर गया और अंत में महाभारत युद्ध हुआ, जिसमें भारी जन–धन की हानि हुई, किन्तु अंत में धर्म की ही विजय हुई। अनाचार और अनीतियों के प्रतीक

कौरवों का सर्वनाश हुआ था। मुख्य कथा के अतिरिक्त अन्य लघुकथाओं का महासागर है यह ग्रंथ सैकड़ों महाकाव्यों, नाटकों, उपन्यासों और कथाग्रंथों का उपजीव्य है, यह विशाल ग्रंथ महाभारत। फिर यह सारा लोक साहित्य इससे अछूता कैसे रह सकता है। हर अंचल के हजारों लोकगीत, लोक कथाएँ और लोक गाथाएँ इस मूल्यवान सामग्री से भरी पड़ी हैं। छत्तीसगढ़ की पण्डवानी और बुंदेलखण्ड, ब्रज, राजस्थान के ढोला–पण्डवा महाभारत के ही कथानक हैं। महाभारत के अन्य कथानकों के आधार पर सैकड़ों लोक कथाएँ और लोक गाथाएँ सारे उत्तर भारत में बिखरी पड़ी हैं।

मौर्य काल– ऐतिहासिक दृष्टि से इसका समय ईसा–पूर्व चौथी सदी माना गया है। जैन जनश्रुति के आधार पर कुछ विद्वानों का कथन है कि चन्द्रगुप्त एक ऐसे गाँव के प्रधान की कन्या का पुत्र था, जहाँ मुख्य रूप से मौर्य निवास करते थे। इसी कारण से उस वंश का नाम मौर्य रखा गया है। मौरिय का संस्कृत रूप मौर्य है। मौर्यों का राज्य कोलियों के राज जनपद और मल्लों की राजधानी कुशीनगर के मध्य स्थित था। मध्यकालीन ग्रंथों में भी मौर्यों को सूर्यवंशी क्षत्रिय कहा गया है। इस वंश का सबसे अधिक पराक्रमी और शक्तिशाली राजा चन्द्रगुप्त मौर्य हुआ है। वह तत्कालीन श्रेष्ठ अर्थशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ आचार्य चाणक्य को अपना गुरू मानता था। वह अपने पिता के हत्यारे नंद से बदला लेना चाहता था, उसने अपने शौर्य के द्वारा नंद का वध किया और मगध का सम्राट बन गया। उसी समय विश्व विजेता बनने की महत्वाकांक्षा लिए सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया। चंद्रगुप्त तो गुरूदेव जी के मार्ग दर्शन में युद्ध के लिए तैयार ही था। उसने प्राणों की बाजी लगाते हुए वीर सिकंदर का सामना किया और उसके प्रधान सेनापति सेल्यूकस को पराजित करके पीछे लौटा दिया। वह एक सहज राष्ट्रभक्त और महावीर सिद्ध हुआ। सेल्यूकस, चंद्रगुप्त से इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी पुत्री कोर्नलिया का विवाह उसके साथ कर दिया। इस प्रकार दो संस्कृतियों का समन्वय हुआ और मेगस्थनीज भारतीय राजदूत के रूप में भारत में ही निवास करने लगा। अनेक कवियों, नाटककारों और उपन्यासकारों ने चंद्रगुप्त मौर्य की राष्ट्रभक्ति और समन्वयवादी सिद्धांतों को साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया है, जिनमें महाकवि जयशंकर प्रसाद का प्रमुख स्थान है। समस्त उत्तर भारत में उनसे सम्बन्धित लोक गाथाएँ भरी पड़ी हैं।

गुप्तकाल– ऐतिहासिक दृष्टि से इस काल का समय तीसरी शताब्दी माना गया है। इस साम्राज्य का संस्थापक चंद्रगुप्त था। गुप्तों को इतिहासकार क्षत्रिय मानते हैं। वे लिच्छिवि वंश के क्षत्रिय थे। चंद्रगुप्त की मृत्यु के बाद समुद्रगुप्त शासक बना। वह

एक महान विजेता था। उसकी दिग्विजयों के कारण 'विंसेन्ट स्मिथ' ने उसे भारतीय नेपोलियन की पदवी से सुशोभित किया था। वह स्वयं एक महान विद्वान और अपने दरबार में विद्वानों का सम्मान करता था। वह कवि था। जन–कल्याण के लिए सुंदर कविताओं की रचना करता था। वह श्रेष्ठ शास्त्रीय संगीत का पंडित था। उसकी मुद्राओं में वीणा के चित्र अंकित थे। प्रेम, करुणा और उदारता की वे जीती–जागती प्रतिमा थे। समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद उनका पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय सिंहासन पर बैठा। उस समय उसे अनेक शत्रुओं से जूझना पड़ा। उन्होंने अपनी शक्ति और शौर्य के बल से अपने राज्य का विस्तार किया। उनका राज्य दक्षिण में नर्मदा नदी तक, उत्तर में हिमालय की घाटियों तक, पूर्व में बंगाल से लेकर काठियावाड़ तक फैला हुआ था। वे चंद्रगुप्त–विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध थे। वह एक न्यायप्रिय, विद्वान और प्रजापालक शासक थे। उनके दरबार में विद्वानों का मेला लगा रहता था। उनके दरबार के नवरत्न प्रसिद्ध थे, जिनमें भवभूति, कालिदास और धन्वन्तरि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने राज्य की राजधानी उज्जयिनी को बनाया था। सारा का सारा संस्कृत साहित्य उनकी यश गाथाओं से भरा पड़ा है। सिंहासन बत्तीसी, बेताल पच्चीसी और विक्रम चरित्र नाम के ग्रंथ तो उनके ही चरित्र के आधार पर लिखे गये हैं। देश का आंचलिक साहित्य उनसे बहुत प्रभावित रहा है। न जाने कितनी लोककथाएँ, लोकगाथाएँ उनके चरित्र को उजागर करती हैं। बुंदेलखण्ड में ऐसी अनेक लोक कथाएँ और लोक गाथाएँ प्रचलित हैं, जिनमें विक्रमादित्य के चरित्र की विशेषताओं का वर्णन है। विक्रम कौ सिंहासन, विक्रम कौ न्याय, विक्रम और कालिदास के प्रसंगों पर आधारित अनेक गाथाएँ प्रचलित हैं। इस क्षेत्र में ऐसे अनेक लोकगीत गाये जाते हैं, जिनमें विक्रम की उदारता, दया और परोपकार के उदाहरण भरे पड़े हैं।

वर्धनकाल– ईसा की छठी शताब्दी में वर्धन साम्राज्य का शुभारंभ हुआ। गुप्त साम्राज्य के पश्चात् भारत में बहुत समय तक ऐसी सार्वभौम सत्ता का अभाव रहा है, जो भारत को राजनैतिक एकता के सूत्र में बाँधने में सक्षम होती। अनेक वर्षों के बाद भारत में वर्धनकाल आया, जिसका संस्थापक 'पुष्पभूति' था। वह शिव का उपासक था। इसके बाद उसका पुत्र 'नरवर्धन' राज्य सिंहासन पर बैठा। आदित्य वर्धन की मृत्यु के बाद प्रभाकर वर्धन नाम का यशस्वी और शक्तिशाली राजा हुआ, उसने थानेश्वर को अपनी राजधानी बनाई थी। उसे महाराजाधिराज की उपाधि से विभूषित किया गया था। उसकी सभा में संस्कृत के श्रेष्ठ कथाकार विद्यमान थे, जिनमें बाणभट्ट का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सन् 605 में प्रभाकर वर्धन की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्धन द्वितीय थानेश्वर के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। उसने अनेक युद्ध किए और अपने राज्य का विस्तार कान्यकुब्ज से लेकर बंगाल तक कर लिया। अंत में कुचक्रों में फंसकर उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद उनका लघु भ्राता 'हर्षवर्धन' थानेश्वर के राज्य सिंहासन पर बैठा। वह एक प्रतापी राजपूत वीरों के शौर्य और क्षत्राणियों की जौहर गाथाओं से भरा पड़ा है। अवध प्रान्त में अवधी लोक–गाथाओं के आधार पर सूफी काव्य की संरचना हुई है। राजस्थान में ऐसी अनेक गाथाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें राजपूतों के शौर्य और आत्म बलिदान का विस्तृत वर्णन है। बुंदेलखण्ड की मथुरावली, ब्रज की चंद्रावली, भोजपुरी की कुसुमादेवी और राजस्थान की भगवती देवी की बलिदान गाथाएँ राजपूत काल से ही संबंधित हैं। इस काल में प्रतिहार, गहरवार, चौहान, चंदेल, चालुक्य, कलचुरी और परमार वंश के क्षत्री राजा विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रतिहारों में महेन्द्रपाल, गहरवारों में जयचंद, चौहानों में दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान, चंदेलों में राजा परमाल, चालुक्यों में पुलकेशी, कलचुरियों में लक्ष्मी कर्ण और परमारों में धार नरेश भोज बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। इन समस्त वीरों की लोक गाथाएँ सारे उत्तर भारत के अंचलों में गाईं जाती हैं। आदिकालीन रासो ग्रन्थ भी लोक गाथाओं के ही स्वरूप हैं। उनकी रचना उन दिनों चारण और भाट कवियों ने की थी, जो दरबारी कवि थे। चंद्रबरदायी ने पृथ्वीराज रासो, नरपति नाल्ह ने वीसलदेव रासो और जगनिक ने परमाल रासो की रचना की थी। ये मूलतः आंचलिक गाथाएँ हैं, जो थोड़े बहुत अंतर के बाद रासो ग्रंथों के रूप में प्राप्त होती हैं। मौखिक परंपरा और कल्पना प्राचुर्य के कारण उनकी ऐतिहासिकता कुछ विद्रूप सी हो गई है। कुछ लोकगाथाएँ जातीयता के आधार पर निर्मित हुई हैं। जैसे चंदेलों के शौर्य पर आधारित आल्हाखण्ड, चौहानों की वीरता के आधार पर पृथ्वीराज रासो और परमारों की वीरता पर आधारित जगदेव के पंवारे की रचना की गई थी।

पंवारे के प्रमुख भेद और विशेषताएँ

वैसे पंवारे परमार वंशीय क्षत्रियों की लोकगाथाएँ हैं, किन्तु ये शब्द शौर्य गाथाओं के लिए रूढ़ हो गया है। राजपूत काल में अनेक वीर क्षत्रियों ने अपने देश, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए शौर्य का प्रदर्शन किया था। यही कारण है कि अधिकांश पंवारे वीर रस प्रधान हैं। इनके प्रमुख रूप से दो भेद किये जा सकते हैं– शौर्य प्रधान और भक्ति प्रधान।

शौर्य प्रधान पंवारे– ये राजपूतकालीन शौर्यगाथाएँ हैं। ये हमारी भारतीय संस्कृति की धरोहर हैं। आदिकाल से ही इस भूमि पर महावीर अवतरित होते आये हैं, जिन्होंने मातृभूमि की रक्षा के लिए जीवन का बलिदान कर दिया था। इस प्रकार के आत्मबलिदान और जौहर की घटनाएँ राजपूतकाल में घटित होती रही हैं। राजपूत, क्षत्रियों को अपनी आन–बान और मर्यादा प्राणों से भी अधिक प्रिय थी। उन दिनों देश में पड़ोसी देशों के लुटेरों और यवनों का आतंक छाया हुआ था। कुछ मुसलमान शासक स्वेच्छाचारी थे। वे अपने धर्म के प्रसार–प्रचार और काम–पिपासा की तुष्टि के लिए हिन्दूधर्म और संस्कृति को नष्ट करने पर तुले हुए थे। किन्तु देश के कुछ वीर सपूतों ने उनकी एक न चलने दी। उन्होंने पूरी ताकत और साहस के साथ शत्रुओं का सामना किया और उन्हें पीछे ढकेल दिया। जायसी कृत 'पद्मावत' में अलाउद्दीन खिलजी की वासनिक भावनाओं का चित्रण किया गया है, जिसने पद्मावती को प्राप्त करने के लिए चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। राजा रत्नसिंह महावीर और बलशाली थे। घोर संग्राम हुआ। गोरा और बादल लड़ते–लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए। लड़ते–लड़ते राजा रत्नसिंह की मृत्यु हो गई। पद्मावती ने जौहर कर लिया और अलाउद्दीन हाथ मलता रह गया। यही स्थिति मथुरावली की भी रही। उसने तंबू में आग लगाकर प्राण त्याग दिये थे। इस प्रकार की अनेक घटनाएँ भारत में घटित होती रहीं, जो शौर्य प्रधान गाथाओं के रूप में प्रचलित हैं। ये सब पंवारे के ही प्रकार हैं। बुंदेलखण्ड के कारसदेव की लोकगाथा भी राजपूत काल की है। इसमें कारस की वीरता का वर्णन किया गया है। इस गाथा में राजा 'गढुवाढार' का नाम आया है, जो किसी राजा के नाम का विकृत रूप है। इसमें वर्णित युद्ध की घटना राजपूत काल के युद्धों से मेल खाती है। इस क्षेत्र में 'अजयपार' नाम के देवता की पूजा की जाती है। अधिकांश लोगों का विश्वास है कि वे पाण्डव अर्जुन हैं। महाभारत में ऐसा उल्लेख है कि पाण्डवों ने प्रवास काल में राजा विराट के यहाँ नौकरी की थी। उन दिनों अर्जुन को गोचारण का काम मिला था और उन्होंने अपने बाण से गोखुर के रोग नष्ट कर दिये थे। ऐतिहासिक दृष्टि से 'अजयपार' अजयपाल का विकृत रूप दिखाई देता है जो 'पाल' वंश से सम्बन्धित और राजपूत काल से संबंधित तथा राजपूत कालीन ही कहे जा सकते हैं।

भक्ति कालीन पंवारे– अधिकांश पंवारे शौर्य और भक्ति के मिश्रित स्वरूप हैं। एक ओर तो उनमें अपनी आन–बान और मर्यादा पर मर–मिटने की भावना दिखाई देती है और दूसरी ओर अपने आराध्य के प्रति अटूट श्रद्धा और भक्ति। प्रत्येक वीर का कोई न कोई आराध्य निश्चित होता है और अपने आराध्य का स्मरण किये बिना वे किसी भी काम के लिए आगे कदम नहीं रखते। आल्हा–ऊदल के आराध्य 'मनियादेव' थे।

वे उनकी पूजा करने के बाद ही युद्ध के लिए प्रयाण करते थे। जगदेव के पंवारे में तो स्पष्ट ही बताया गया है कि वह माँ हिंगलाज भवानी का परम भक्त था। उसने अपना सिर काटकर देवी जी के चरणों में अर्पित कर दिया था। इससे बड़ी भक्ति और क्या हो सकती है? यही कारण है कि यह पंवारा नवरात्रि के अवसर पर गाया जाता है। नवरात्रि के गीतों में ही इसको मान्यता दी गई है। उनकी भाव भक्ति का वर्णन एक अचरी में किया गया है–

आज्ञा भुमानी सुन दै दई, जगदेव बाँधौ तरवार,
डेरी सोहैं कटरियां, दांई सोहैं तरवार,
लंगरे अंगवान अये खप्पर लयें हात,
नरियल लयें हात, उतरी कमान जगत की,
अये दुर्गा देत चढ़ाय, राजा जगत से मां
भले हो मांय।

इसी तरह की भाव–भक्ति का दृश्य 'कारसदेव' की गोटों में दिखाई देता है। कहा जाता है कि कारसदेव का जन्म झाँझ नाम के ग्राम में एक गूजर के घर हुआ था। उसकी माता का नाम सरनी और बहिन का नाम ऐलादी था। सरनी निःसंतान थी। पुत्र प्राप्ति की इच्छा से भगवान शंकर का व्रत करती थीं, जिसका वर्णन एक गोट में किया गया है–

बारा बरस तपिया तपी, करे न अन्न अहार।
सरनी गई असनान खौं, अहेले तला के पार।
कमल पै पोंढ़ों राजकुमार।
सौ–सौ दल कमला खिले, भ्रमर रहे गुंजार।
एक कमल पै ऐसें लगैं, जैसें दियला जले हजार।
कमल पै पोंढ़ों राजकुमार।
उठा सरनी ओली लये, कारस को पुचकार।
जप–तप सब पूरन भये, मोरी शिव ने सुनी पुकार।
कमल पै पोंढ़ों राजकुमार।

अजयपार, हरदौल को तो बुंदेलखण्ड का लोक देवता मानकर उनकी पूजा की जाती है।

पंवारों की प्रमुख विशेषताएँ

पंवारो की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं–

- शौर्य और भक्ति का समन्वित स्वरूप
- लोक भाषा का प्रयोग
- लोक संगीत में आबद्ध
- लोक विश्वास का आधिक्य
- प्राचीन इतिहास का प्रभाव

शौर्य और भक्ति का समन्वित स्वरूप– पंवारों के भेद के अन्तर्गत शौर्य और भक्ति के समन्वित रूप का विधिवत विवेचन किया गया है। वैसे इनका मूलाधार शौर्य और भक्ति ही है। देश में जितने भी वीर हुए हैं, वे किसी न किसी देव के भक्त निश्चित ही रहे हैं। अधिकांश वीर आदिशक्ति भवानी के ही भक्त रहे हैं। कुछ वीर तो ऐसे हुए हैं, जो अपने आराध्य के चरणों में अपना सिर काटकर चढ़ा चुके हैं। रावण जैसे शक्तिशाली राजा ने भगवान शंकर के चरणों में अपने सिर काट–काटकर चढ़ा दिये थे। फिर शिवजी ने उसे अमर होने का वरदान दिया था। इसी प्रकार राजा जगदेव ने माता हिंगलाज के चरणों में अपना सिर काटकर चढ़ा दिया था। उनकी कृपा से उनके धड़ में से नया सिर उत्पन्न हो गया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो जितने बड़े वीर हुए हैं, वे उतने ही बड़े भक्त भी हुए हैं। वे अपने आराध्य के चरणों में सर्वस्व समर्पित करने को तत्पर रहे हैं।

लोक भाषा का प्रयोग– बुंदेलखण्ड की समस्त लोक गाथाएँ बुंदेली में ही लिखी गईं हैं। पंवारे राजस्थान, ब्रज और बुंदेलखण्ड में गाये जाते हैं और वे सबके सब लोक भाषा में ही हैं। बुंदेलखण्ड में गाये जाने वाले पंवारे शुद्ध बुंदेली में ही प्राप्त होते हैं। वे इतने सहज और सरल हैं कि जिन्हें समझने के लिए जरा भी मानसिक व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं होती। इस क्षेत्र की सर्वाधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय गाथा 'जगदेव कौ पंवारौ' है। ये प्रायः नवरात्रि के अवसर पर गाया जाता है। इसका आकार इतना बड़ा है कि वह चौसठ दरबारों में विभक्त है। नवरात्रि में रात–दिन गाये जाने पर भी पूरा नहीं होता। फिर भी कुछ वयोवृद्ध लोगों को वह पूरा का पूरा कंठस्थ है। ये सब लोक भाषा का ही प्रभाव है।

लोक संगीत में आबद्ध– अधिकांश पंवारे गेय हैं। वे किसी न किसी लोक ध्वनि में आबद्ध होते हैं और उनमें लोक संगीत की प्रधानता होती है। 'जगदेव कौ

पंवारौ' तो देवी जी के गीतों के साथ गाया जाता है। इस कारण उसकी लोक ध्वनि देवी जी के भजनों (भक्तों) के समान होती हैं। लोक गायक इसे ढोलक, नगरिया, झाँझ और झेला के साथ गाते हैं। इनके गायन में स्वर के आरोह–अवरोह का विशेष ध्यान रखा जाता है। गाते–गाते जब पंचम पर पहुँचते हैं तो गायक भावावेश में घुटनों के बल खड़े हो जाते हैं और कभी–कभी नाचने लगते हैं। सुरहिन का पंवारा देवी जी के गीतों के साथ गाया जाता है। ये लोक संगीतबद्ध है। मथुरावली लोकगाथा इकतारे के साथ गाई जाती है, जिसमें लोक माधुर्य का समावेश होता है। कारस देव कौ पंवारौ गाने के लिए डौरू (डमरू) का उपयोग किया जाता है और इसे एक विशिष्ट लोक ध्वनि में गाया जाता है। इसकी लोक ध्वनि बड़ी ही विचित्र और अटपटी सी होती है। ऐसा लगता है कि कारस भगवान शंकर के प्रिय भक्त थे। कारस का जन्म भगवान शंकर की ही कृपा से हुआ था। इसी कारण से उनकी गाथा का गायन डमरू के साथ किया जाता है। यह लोक गाथा 'गोटों' के रूप में गाई जाती हैं, जिसमें कारस के समग्र जीवन का चित्रण होता है। कुछ विद्वान इसे 'अजयपार का पंवारा' भी कहा करते हैं। ग्रामीण जन रविवार और बुधवार को अजयपार मंदिर के सामने बैठकर गाया करते हैं। ये भी लोक संगीतबद्ध होती है। लोग रात–रातभर जागकर इसका आनंद लिया करते हैं।

लोक विश्वास का आधिक्य– पंवारो में लोक विश्वास का आधिक्य है। शकुन–अपशकुन, मूर्ति पूजा, मंत्र और साधना को प्रमुख स्थान दिया गया है। वीर जब युद्ध के लिए प्रयाण करता है, तो सर्वप्रथम शुभ–शकुन का विचार करता है। छींक पर सब से ज्यादा विचार किया जाता है। दाहिनी छींक शुभ और बायीं छींक अशुभ, भरा घड़ा शुभ और खाली घट अपशकुन सूचक होता है। कहा जाता है कि छींकते हुए कोई कार्य करना ठीक नहीं है।

उसी प्रकार से काने पर बहुत विचार किया जाता है। कहा जाता है कि –**'गैल में मिलें काना, तो लौट घर आना।'** राजा धनसिंह की लोक गाथा में कहा गया है–

छींकत बछेरा पलान्यो, बरजत भये असवार,
तोरी मत कौनें हरी रे धनसिंह।

यही स्थिति भक्ति भावना की भी है। भक्त अपने आराध्य के चरणों में सर्वस्व समर्पित करने को तत्पर रहता है। जगदेव के पंवारे में कहा गया है कि जगदेव भवानी हिंगलाज का भक्त था। पूजा करते–करते उसने देवी जी के चरणों में सिर काटकर

चढ़ा दिया था। जिससे भवानी प्रसन्न हो गई और उनकी ही कृपा से उसके धड़ में से नया सिर उत्पन्न हो गया था। इसी तरह कारसदेव की गाथा में बताया गया है कि कारस की माता सरनी ने पुत्र की प्राप्ति के लिए बारह वर्ष तक शंकर जी की कठोर तपस्या की थी और उनकी कृपा से कमल पर राजकुमार प्रकट हो गये थे।

बारा बरस तपिया तपी, करे न अन्न अहार।
सरनी गई असनान खौं, अहेले तला के पार।
कमल पै पोंढ़ों राजकुमार।

हालाँकि यह एक आश्चर्यजनक घटना है, किन्तु ऐसा लोक विश्वास है कि ईश्वर की कृपा से सब कुछ संभव है। बाबा तुलसी एक दोहे में इस लोक विश्वास की पुष्टि कर गये हैं–

तुलसी बिरवा बाग के, सींचत में कुम्हलाय।
राम भरोसे जो रहें, परवत पै हरयाय।।

'नौरता' लोक गाथा में कहा गया है कि 'सुआटा' नाम का राक्षस कन्याओं को उठाकर ले जाता था और उन्हें खा लेता था। यह क्रम अनेक वर्ष तक संचालित रहा। अंत में राक्षस को प्रसन्न करने के लिए कन्याएँ उसकी पूजा करने लगीं। यह परंपरा आज भी चली आ रही है। नवरात्रि के अवसर पर कन्याएँ आज भी नौ दिन तक 'सुआटा' की पूजा किया करती हैं। लोक–विश्वास रूढ़ियों के रूप में बदल गया है। यही स्थिति तंत्र–मंत्र की भी है। पंवारों में तंत्र–मंत्र और ऐन्द्रजालिक क्रियाओं को प्रमुख स्थान दिया गया है। लोक विश्वास के ही कारण इनमें कुछ काल्पनिक घटनाओं का समावेश हो जाता है। कल्पना प्राचुर्य के कारण उनकी ऐतिहासिकता में संदेह होने लगता है।

प्राचीन इतिहास का प्रभाव– पंवारो के नामकरण से स्पष्ट है कि ये परमार वंशीय लोक गाथाएँ हैं। परमार वंश राजपूत के अन्तर्गत आता है। वर्धन साम्राज्य के सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् भारत में राजपूत काल का शुभारंभ हुआ। सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक राजपूत काल माना जाता है। अन्य राजपूतों की तरह परमार वंश की उत्पत्ति भी अग्नि कुंड से हुई थी। परमार भी अन्य राजपूतों के समान विदेशी थे। अग्नि द्वारा पवित्र कर इन्हें हिन्दू धर्म में दीक्षित किया गया, किन्तु कुछ विद्वान उन्हें भारतीय क्षत्रियों की संतान मानते हैं। परमारों ने नवीं शताब्दी में आबू पर्वत के समीपवर्ती प्रदेश पर अपने राज्य की स्थापना की थी।

जगदेव के पंवारे में जगदेव और भोज तथा धारा नगरी का वर्णन है। भोज तो परमार वंश के प्रतापी और प्रतिभाशाली राजा थे। उनकी राजधानी धार नगरी थी। यह गाथा परमार वंशीय इतिहास से सम्बन्धित है। मथुरावली गाथा भी राजपूत कालीन प्रतीत होती है, जिसके कारण हम उसे मुगलकालीन मानते हैं। कुछ भी हो, किन्तु उसे अनैतिहासिक नहीं कहा जा सकता। अजयपाल लोक गाथा 'पाल' वंशीय राजाओं से सम्बन्धित है, जिसका इतिहास में स्पष्ट उल्लेख है। कारसदेव गाथा भी इतिहास से सम्बन्धित है। कल्पना प्राचुर्य के कारण ऐतिहासिकता कुछ धूमिल सी हो जाती है, किन्तु इसका मूलाधार इतिहास ही है।

लोकगाथाओं में पंवारे का महत्त्व एवं स्थान

बुंदेली लोक गाथाओं में पंवारो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये एक प्रकार की लोक गाथा ही है। इनका प्रचलन बुंदेलखण्ड, ब्रज, मालव और राजस्थान में है। यदि सच पूछा जाये तो इनका मूल जन्मस्थान तो मालव ही है। धीरे–धीरे ये सारे उत्तर भारत में फैल गये। हर अंचल के पंवारे की अपनी लोकभाषा, लोकध्वनि और लोक संगीत है। भले ही कथानक मालव का रहा हो, किन्तु बुन्देलखण्ड के पंवारो में बुंदेली संस्कृति और बुंदेलखण्ड की लोक ध्वनियों का प्रभाव दिखाई देता है। सुनते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बुंदेलखण्ड का पंवारा है। उनके महत्त्व का मूल्यांकन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है –

सांस्कृतिक महत्त्व– बुंदेली पंवारे संस्कृति के अक्षय भंडार हैं। इनमें इस क्षेत्र के आचार–विचार, रहन–सहन, खान–पान और वेश–भूषा का स्वरूप दिखाई देता है। धार्मिकता तो इस क्षेत्र की प्रमुख धरोहर है। पंवारे सीधे धार्मिकता से जुड़े हुए हैं। इनमें वर्णित पात्र अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहे हैं। उनका शौर्य और आत्म–बलिदान उनकी मान मर्यादा की रक्षा के लिए ही होता है। जगदेव देवी जी के चरणों में अपना सिर काटकर चढ़ा देता है। मथुरावली तंबू में आग लगाकर आत्मदाह कर लेती है। कारस अपने धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करने को तैयार हो जाता है। बुंदेलखण्ड में जितनी प्रचलित लोक गाथाएँ हैं, वे इस प्रभाव से अछूती नहीं रहीं। पंवारे इस प्रभाव से कैसे बच सकते थे।

संगीतात्मकता– हर अंचल के पंवारे लोक–संगीतबद्ध होते हैं। उनमें उस क्षेत्र के संगीत का प्रभाव दिखाई देता है। पंवारे बुंदेली लोक ध्वनियों में आबद्ध हैं। इस क्षेत्र के पंवारे नवरात्रि के अवसर पर गाये जाते हैं। इनमें देवीजी की भक्ति का चित्रण होता

है। राजा जगदेव, भोज और विक्रमादित्य की भक्ति भावना पर आधारित यहाँ अनेक पंवारे गाये जाते हैं। जगदेव का पंवारा तो इतना विस्तृत है कि नौ दिन लगातार गाये जाने पर भी पूरा नहीं होता। बुंदेली जन समुदाय इसमें विशेष आनंद की अनुभूति करता है।

ऐतिहासिकता– केवल बुंदेलखण्ड की ही नहीं, बल्कि समस्त भारत की लोक गाथाएँ किसी न किसी रूप में भारतीय इतिहास के बहुत समीप हैं। पंवारे तो पूर्णतया ऐतिहासिक हैं। इनमें परमार–वंशीय क्षत्रियों का चरित्र–चित्रण किया गया है। ये एक प्रकार की चरित्र प्रधान गाथाएँ हैं। राजा भोज, जगदेव, अजयपाल और चंद्रावली तो इतिहास प्रसिद्ध पात्र हैं। इनमें प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास की झलक दिखाई देती है।

साहित्यिक महत्त्व– पंवारे साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान हैं। सारा का सारा सूफी प्रेमाख्यानक काव्य लोक गाथाओं का ही साहित्यिक रूप है। आदिकालीन समस्त रासो ग्रंथ लोक गाथाओं के ही विकसित रूप हैं। मुंशी प्रेमचंद जी के अधिकांश उपन्यास और जयशंकर प्रसाद जी के अधिकांश नाटक लोक गाथाओं से प्रभावित हैं। राजा विक्रमादित्य और राजा भोज से सम्बधित साहित्यकारों और कवियों ने पर्याप्त साहित्य का सृजन किया है। पंवारों में प्रयुक्त शब्दावली संग्रहणीय है। कुछ ऐसी शब्दावली है, जिसका साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। ये शब्दावली संग्रहणीय और सुरक्षित रखने योग्य है। अतः इन समस्त पंवारों को लिपिबद्ध करना आवश्यक है। अन्यथा यह मूल्यवान सामग्री विस्मृति के गर्त में विलीन हो जाएगी।

सामाजिक महत्त्व– पंवारों में अन्य लोकगाथाओं की भाँति तत्कालीन समाज की झाँकी दिखाई देती है। समाज की धार्मिक भावनाएँ आचार–विचार, रहन–सहन और खान–पान का वर्णन पंवारों में है। उनका अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उस समय का समाज धार्मिक–भावना से आपूरित था। परोपकार और जन–कल्याण करने के लिए लोग आत्मबलिदान करने को तत्पर रहा करते थे। पुरुष अधिक वीर और साहसी होते थे। हँसते–हँसते युद्ध–भूमि में कूदकर प्राणोत्सर्ग करना सहज था। नारियाँ भी पुरुषों से पीछे नहीं थीं। उन्हें अपना पातिव्रत और मान मर्यादा प्राणों से भी प्यारी थी। जौहर और आत्मबलिदान करना उनके लिए सहज खेल था। लगता है कि उस समय का समाज बहुत ही सभ्य और शिष्ट था। उनमें मानवीय गुणों की अधिकता थी। सत्य, अहिंसा, प्रेम और करुणा का सर्वत्र बोलबाला था। अधर्मी और नीच व्यक्ति निन्दा के पात्र होते थे। पंवारों का अध्ययन करके आधुनिक समाज सत्य पथ की ओर अग्रसर हो सकता है।

बुंदेलखण्ड में प्राप्त पंवारों का विशद अनुशीलन

ऐतिहासिक अनुशीलन– बुंदेलखण्ड में प्रचलित पंवारे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचे गये हैं। उनमें वर्णित पात्र और घटनाएँ ऐतिहासिक ही हैं। मौखिक परंपरा और कल्पना प्राचुर्य के कारण उनमें कुछ अंतर आ गया है। ऐसा लगता है कि वे कोरी कल्पनाएँ ही हैं। यदि धैर्यपूर्वक उन सबका विश्लेषण किया जाये तो उनमें से पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हो सकती है। जगदेव के पंवारे में राजा भोज और धार नगरी का वर्णन है। उनमें चंद्रभाट और जगदेव की चर्चा है, जबकि इतिहास के आधार पर इन घटनाओं का तालमेल नहीं बैठता। इतिहास के आधार पर भोज का जीवनकाल 1010 ई. से सन् 1050 तक माना जाता है। राजा भोज बड़े ही दूरदर्शी, न्यायप्रिय और प्रजापालक राजा थे। उन्होंने महमूद गजनवी की सेना को आगे बढ़ने से रोका था। राजा भोज की राजधानी मालव प्रदेश में स्थित धार नगरी थी। गाथा में जगदेव को चंद्रभाट का चचेरा भाई बताया गया है, जबकि चंद्रबरदाई पृथ्वीराज चौहान का समवयस्क साथी एवं दरबारी कवि था। गाथा में जगदेव को उदयाजीत का पुत्र बताया गया है। उदयाजीत (उदयादित्य) का राजकाल सन् 1059 से 1087 तक माना जाता है। उदयादित्य की मृत्यु के बाद उनका लघुपुत्र रन्धौर धारा नगरी की गद्दी पर बैठा था। किन्तु गाथा में जगदेव को राजा भोज के यहाँ नौकरी करते दिखाया गया है। इस प्रकार से इस घटना का इतिहास से तालमेल नहीं बैठता, क्योंकि राजा भोज की मृत्यु के बाद ही जगदेव के पिता उदयादित्य गद्दी पर बैठे थे। गाथा में बताया गया है कि जगदेव ने राजा सैन के यहाँ नौकरी की थी। उन दिनों बंगाल के सैन वंश के राजपूत राजा राज्य करते थे। इसलिए सैन के यहाँ नौकरी करने की घटना ऐतिहासिक है। चंद्रबरदाई और जगदेव के चचेरे भाई होने की बात भी सत्य सी प्रतीत होती है, क्योंकि पृथ्वीराज चौहान और राजा भोज के शासन–काल में थोड़ी बहुत समता दिखाई देती है।

इतिहास के आधार पर अजमेर–दिल्ली के चौहान और धारा नगरी के परमार वंशीय राजपूत समकालीन थे। गाथा में बादशाह का उल्लेख है। उन दिनों मुहम्मद गौरी का बहुत प्रकोप था। हो सकता है कि धारा नगरी पर गौरी ने ही आक्रमण किया हो। गाथा में मुगल–तुर्क के आक्रमण का वर्णन है। इतिहास में सन् 1175 से 1206 तक मुहम्मद गौरी के हमलों का उल्लेख है। ऐसा लगता है कि हमला करने वाली घटना भी ऐतिहासिक है। गाथा में दल–पंगुरे का वर्णन है, जिसको लज्जित करने के लिए देवी जी ने जगदेव का शीश मांगा था। शीश मांगने और बलिदान की घटना तो

काल्पनिक ही है। रूण्ड में से मुण्ड उत्पन्न होने की घटना तो अलौकिकता प्रधान है। वैसे आज के युग में तो कोई भी इस घटना पर विश्वास नहीं कर सकता। छिंगुरी चीरकर अमृत छिड़क देने से रूण्ड में से मुण्ड उत्पन्न हो जाता है। इंद्रपुरी से करिया दानव का आना और राजा भोज को बाँधकर रानी के साथ क्रीड़ा करना और मुक्तायन का स्वर्णपुरी आकर राजा सेन की पत्नी के साथ आकर क्रीड़ा करना आदि। कहा जाता है कि जगदेव देवी जी कृपा से करिया दानव की नाक काट लेता है और मुक्तायन को पीटकर मुकुट छीन लेता है। अंत में देवी जी की कृपा से जगदेव अपना शीश काटकर समर्पित कर देता है। इतिहास में नगर कोट के आक्रमण का उल्लेख है। उसी नगर कोट में दुर्गा का एक प्रसिद्ध मंदिर था। सन् 1009 में महमूद गजनी ने नगर कोट पर हमला किया था, जिससे सारा नगर उजाड़ हो गया था। गाथा में नगर उजाड़ होने का भी वर्णन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह गाथा इतिहास से बहुत मेल खाती है। कुछ घटनाएँ ही काल्पनिक हैं।

बुंदेलखण्ड में कारसदेव का पंवारा प्रचलित है। इन्हें इस क्षेत्र में देवता की तरह पूजा जाता है। विशेषकर अहीर और गड़रिया जाति के लोग इनकी पूजा किया करते हैं। डमरू बजाकर विचित्र ध्वनि में गोटें गा–गाकर इनकी पूजा की जाती है। कहा जाता है कि वे भगवान शंकर के परम–भक्त थे। इसी कारण से भगवान शंकर के प्रिय वाद्य यंत्र डमरू के साथ गोटों का गायन किया जाता है। गाथा में बताया गया है कि उनकी माता सरनी ने बारह वर्ष तक भगवान शंकर की कठोर तपस्या की थी और उनके वरदान से उन्हें प्रातःकाल कमल पर लेटे हुए राजकुमार कारस प्राप्त हो गये।

इस सम्बन्ध में समस्त विद्वानों का मतैक्य नहीं है। कुछ प्रमुख विद्वानों का कथन है कि वे हैहयवंशी राजा अजयपाल के आश्रित और समकालीन थे। हैहयवंशी राजाओं को राजपूत काल के अन्तर्गत माना जाता है। इस क्षेत्र में 'मथुरावली' नाम की लोक गाथा प्रचलित है। उसे त्याग, तपस्या और बलिदान की प्रतिमा माना जाता है। ये गाथा भी इतिहास की आधार भूमि पर खड़ी है। इसमें अनेक स्थानों पर मुगल शब्द की आवृत्ति हुई है। मध्यकाल में यहाँ मुगलों का आधिपत्य था। उसके पूर्व तुर्क और मंगल लुटेरों के रूप में भारत में उपस्थित हुए थे। गाथा में उस अपहरणकर्ता को काबुल का बताया गया है। वह मथुरावली को काबुल ले जाकर अपनी बीबी बनाना चाहता था। भारत के इतिहास में सन् 1526 से 1530 तक शासन करने वाले काबुल के शासक जहीरूद्दीन बाबर का उल्लेख है। उसका पिता तुर्क था। गाथा में तुर्क और मुगल शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसलिए यह घटना बाबर से सम्बन्धित प्रतीत होती है। हो सकता है कि बाबर उसे अपहरण करके काबुल ले जाना चाहता हो। इस प्रकार की

अनेक घटनाएँ मध्यकालीन इतिहास में वर्णित हैं। इतिहास वैसे बाबर को चरित्रवान सिद्ध करता है। हो सकता है कि उसके साथी सरदारों ने इस प्रकार की भूल की हो। बुंदेलखण्ड के अधिकांश पंवारे इतिहास पर आधारित हैं।

सामाजिक अनुशीलन– इस क्षेत्र में प्रचलित समस्त पंवारे जाति विशेष के गुणों के आधार पर निर्मित हुए हैं। उनमें तत्कालीन समाज की झाँकी दिखाई देती है। ऐसा लगता है कि उस समय का समाज जाति और उपजातियों के संकीर्ण घेरे में आबद्ध था। राजपूत काल में युद्ध का वातावरण था। राजा गण परस्पर ईर्ष्या–द्वेष से ग्रसित थे, जिसका सीधा प्रभाव तत्कालीन समाज पर पड़ता था। सामाजिक मान–मर्यादाएँ खंडित हो रहीं थीं। धर्म का ह्रास हो रहा था। लोग भय से आक्रांत थे। आये दिन हमले होते रहते थे। हर व्यक्ति अपने आपको असुरक्षित समझता था। पता नहीं कब किसको तलवार लेकर युद्ध में कूदना पड़े।

यही कारण था कि उस समय का समाज पूरी तरह से निर्भीक था। कभी–कभी तो क्षत्राणियाँ अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आत्म–बलिदान कर देतीं थीं। तत्कालीन सामाजिक स्थितियों का अनुशीलन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जाता है– युद्धमय वातावरण, धार्मिकता, सदाचार पूर्ण जीवन, रूढ़ियों का प्रभाव और मानवता का स्वरूप।

युद्धमय वातावरण – सम्पूर्ण राजपूतकाल को यदि युद्ध और अशांति का काल कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। तत्कालीन राजा अपने राज्य का विस्तार अथवा किसी सुन्दर राजकुमारी के अपहरण करने हेतु आपस में युद्ध–क्षेत्र में कूद पड़ते थे। यहाँ तक कि राजाश्रित कविगण लेखिनी को छोड़कर तलवार ग्रहण कर लेते थे। पृथ्वीराज चौहान के राजकवि चंद्रबरदाई ने कविता पढ़कर अंधे पृथ्वीराज चौहान को मुहम्मद गौरी से बदला लेने के लिए प्रेरित किया था। चारों ओर युद्ध ही युद्ध का वातावरण था। एक दूसरे को मारना, काटना, खून की धार बहा देना सामान्य था। यहाँ तक कि वैवाहिक अवसरों पर भोजन परोसने के स्थान पर खून की धार बह जाती थी। बुंदेलखण्ड के वीर–बाँकुरे आल्हा–ऊदल से तो सारा भारत वर्ष परिचित है। उन्होंने पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष से प्रेरित होकर सारे देश के राजाओं से ही युद्ध किया था। उस समय के समस्त रासो ग्रंथ युद्ध के सजीव वर्णन है। यही कारण है कि राजपूतकाल में लिखा गया संपूर्ण साहित्य वीर गाथाओं से भरा पड़ा है। जगदेव के पंवारे में युद्ध का वर्णन है। जगदेव अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए प्रस्थान करता हैः–

आज्ञा भुमानी दै दई, जगदेव बांधो तलवार।
डेरी सोहैं कटरिया, दांई सोहैं तलवार।
लंगरे अंगवान अयें, खप्पर लयें हात, नरियल लयें हात,
उतरी कमान जगत की, अयें दुर्गा देत चढ़ाय।
राजा हो जगत से माँ भले हो माय।

गाथा में वर्णन है कि जगदेव ने मुगल पठान से युद्ध किया था और उसकी सेना को मार–काटकर वेदी में होम दिया था। उस समय का कोई भी कार्य युद्ध के बिना पूरा नहीं होता था। उस समय मुगल लुटेरे भारत में घुसकर युद्ध किया करते थे। राजपूत वीर अपनी तलवारों के खेल दिखाकर उन्हें पीछे खदेड़ देते थे। नारियाँ जौहर कर लेती थीं। कुछ नारियाँ अपनी आन–बान और मर्यादा की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग कर लेतीं थीं। मथुरावली, चंद्रावली, कुसुमादेवी और भगवती देवी ऐसी ही वीरांगनाएँ हैं, जिन्होंने हँसते–हँसते प्राण त्याग दिये थे। ऐसा लगता है कि उस समय का मुख्य कार्य युद्ध करना ही था। राजा और सारी जनता किसी न किसी रूप में युद्ध से ही जुड़ी रहती थी।

धार्मिकता– धर्म तो तत्कालीन समाज का मूलाधार ही था। अपने धर्म की रक्षा के लिए लोग मरने–मिटने को सदैव तत्पर रहते थे। धर्म तो जन–जन का प्राण था। धार्मिक भावना से प्रेरित होकर वीर युद्ध किया करते थे। मुगल और तुर्क हमलावरों को आततायी और म्लेच्छ कहकर संबोधित किया जाता था। धर्म के नाम पर प्राण त्याग देना साधारण बात थी। हर वीर का कोई न कोई आराध्य होता था। युद्ध में प्रयाण करने के पूर्व वीर अपने आराध्य की आराधना करके तथा विधिवत् अनुष्ठान करके माँ का आशीर्वाद लेकर ही युद्ध के लिए प्रयाण करते थे। आल्हा–ऊदल अपने आराध्य मनियादेव की पूजा करके ही आगे बढ़ते थे। जगदेव देवी हिंगलाज का परम भक्त था। यहाँ तक कि माता उनकी उतरी हुई कमान को चढ़ा देती थीं। लोक गाथा में कहा गया है–

इन्द्रलोक से उतरी भवानी, धारा नगर खौं जाय हो मांय।
बैठीं हतीं जगदेव की माता, पौंची आदि भवानी हो मांय।
काहे के डारों माई बैठका, काहे के पखारौं पांय हो मांय।
चंदन चौकी डारों बैठका, दुदुवन पांय पखारों हो मांय।

भगवान शंकर की ही कृपा से कारसदेव का जन्म हुआ था। हर वीर और महापुरुष धर्म और भक्ति भावना से आपूरित था।

सदाचार पूर्ण जीवन– इस क्षेत्र में सदाचार को विशेष महत्त्व दिया जाता है। उत्तम आचरण वाले लोगों को देव कोटि में रखा जाता है। लाला हरदौल, कारसदेव, मधुकरशाह, कुँवरि गणेश आदि उत्तम चरित्र होने के कारण उन्हें देव तुल्य पूजा जाता है। चरित्रहीन व्यक्ति की सर्वत्र निन्दा और भर्त्सना होती है। ऐसा कहा जाता है कि **'चरित्र गया सो सब कुछ गया।'** जुझार सिंह ने अपने भाई हरदौल के चरित्र पर संदेह करते हुए उसे विष देकर मरवा डाला था। उसके निन्दनीय कार्य की ओर संकेत करते हुए गाथाकार कहता है–

जे भइया, भइया खौं मारे, तिन पै गाज परि जइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाल रइयौ।

हमारी सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति सदाचार का पाठ पढ़ाती है। कहा भी गया है– **'आचारः परमो धर्मः'** आचारहीन व्यक्ति निन्दा के पात्र होते हैं। सदाचारी व्यक्तियों की देवता की तरह पूजा की जाती है। इसी कारण से भारतीय संस्कृति विश्व में अग्रगण्य है और भारत को विश्व गुरु की उपाधि से विभूषित किया जाता है।

रूढ़ियों का प्रभाव– हमारी भारतीय संस्कृति और समाज अंधविश्वासों और रूढ़ियों से जकड़ा हुआ है। यहाँ के हर क्षेत्र में रूढ़ियों का प्रभाव दिखाई देता है। मूर्ति पूजा, तंत्र–मंत्र, जादू–टोना, बाल–विवाह, सती–प्रथा आदि अनेक रूढ़ियाँ आज भी इस क्षेत्र में दिखाई देती हैं। इस क्षेत्र के लोग बहुदेववाद को महत्त्व देते हैं। कोई भगवान राम, कोई कृष्ण, कोई शंकर और कोई देवी जी का उपासक होता है। कुछ ग्रामीण परिवेश में निवास करने वाले लोग भूत–प्रेत में विश्वास करते हैं। गोंड़–बाबा, गुरैया बाबा, कारसदेव, घटौरिया बाबा, ग्राम के देवता हैं। समय–समय पर विविध त्योहारों और उत्सवों का आयोजन परंपरागत है। आज भी लोग झाड़–फूँक और तंत्र–मंत्र में विश्वास करते हैं। बड़े–बड़े संक्रामक रोगों का उपचार झाड़–फूँक या किसी देवता का ही प्रसाद, जल या भभूत है। बड़ी विचित्र स्थिति है इस क्षेत्र की। इतने अधिक शैक्षणिक और सामाजिक विकास के बाद भी अधिकांश लोग अंधविश्वास में जकड़े हुए हैं। पंवारों में इस प्रकार की अनेक घटनाएँ वर्णित हैं, जिनमें तत्कालीन रूढ़िवादिता के दर्शन होते हैं।

मानवता का स्वरूप– पंवारों के कथानक मानवीय गुणों से आपूरित हैं। उनके प्रमुख पात्र सच्चरित्र और आदर्श प्रधान हैं। सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, परोपकार तो उनके जीवन के प्रमुख अंग रहे हैं। कुछ ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं, जिन्होंने अपनी आन–बान और मर्यादा की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग किया है। जगदेव भी महावीर था।

उसने अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए मुगल सुल्तान से युद्ध करके वापिस लौटा दिया था। कहा जाता है कि वह देवी जी का परम भक्त था। उनकी कृपा से जगदेव ने बादशाह की सेना को काटकर वेदी में होम कर दिया था। बादशाह ने तोपों के द्वारा धारा नगरी को उड़वाना चाहा, किन्तु देवी जी की कृपा से सारी धारा नगरी सोने की हो गई। तोपों के गोले धारा से टकराकर बादशाह की सेना से टकराये और सेना को चूर–चूरकर डाला। ये समस्त उपक्रम मानवता की रक्षा के लिए ही थे।

कारस शौर्य का प्रदर्शन करते हुए परोपकार करते रहे। आशुतोष शंकर की भाँति जीवों के दुःख गरल का पान करते रहे और सदैव मुस्कुराते रहे। इसी कारण से इन्हें देवतुल्य पूजा जाता है। कुछ यादव बंधु तो इन्हें कन्हैया का अवतार मानते हैं। हालांकि उन दोनों के जन्मकाल में भारी अंतर था। गाथाकार का यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण है –

कै कनइया कै कारस भये, जिन्नें गईयंन की राखी लाज,
धन–धन झाँझ की गइयां, धन–धन कारस महाराज,
समारौ सबई हमारौ काज।'

मथुरावली पंवारे में मानवीय गुणों का भंडार है। एक नारी होते हुए भी उसने नरों से भी श्रेष्ठ कार्य करके दिखाया था। अपने पातिव्रत की रक्षा करते हुए जीवन का बलिदान कर दिया था। संपूर्ण राजपूत काल इस प्रकार की लोक गाथाओं से भरा पड़ा है। मानवोचित गुणों को धारण करते हुए राजाओं ने अपनी शक्ति और शौर्य का परिचय दिया है। परोपकार और जन–कल्याण की भावना से प्रेरित होते हुए जीवन का बलिदान करते रहे हैं। मानवता का सच्चा स्वरूप हमें ऐसी ही गाथाओं में दिखाई देता है। ये गाथाएँ आधुनिक पथ भ्रष्ट समाज के लिए प्रेरणादायक हैं।

पंवारों का साहित्यिक मूल्यांकन

लोक साहित्य शिष्ट साहित्य की आधारशिला है। भारतीय लोक साहित्य से हिन्दी साहित्य को पर्याप्त साहित्यिक सामग्री उपलब्ध हुई है। सारा का सारा सूफी साहित्य अवध में प्रचलित लोक गाथाओं का विकसित रूप है। विद्यापति का मैथिल साहित्य, संपूर्ण रासो ग्रंथ अष्टछाप के कवियों का समस्त ब्रज साहित्य और महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का रामचरित मानस लोक साहित्य का ही परिमार्जित रूप हैं। साहित्यिक दृष्टि से पंवारे बहुत मूल्यवान हैं। उनमें पर्याप्त साहित्यिक सामग्री भरी पड़ी है। पंवारों का साहित्यिक मूल्यांकन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा

सकता है– भाषा की दृष्टि से, अलंकारिक योजना, रस परिपाक, काव्याधार सामग्री और सांस्कृतिक शब्दावली।

भाषा की दृष्टि से– भाषा की दृष्टि से पंवारे बहुत संपन्न हैं। इनमें पात्रानुकूल और प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। वैसे इनकी भाषा बुंदेली का स्वाभाविक स्वरूप है। ये भक्ति, श्रृँगार और शौर्य के समन्वित रूप हैं। इनमें वीरों की अपनी आराध्य के प्रति अटूट आस्था, सुन्दर राजकुमारियों को प्राप्त करने के प्रयास और राष्ट्रीयता की भावना व्यक्त करने के लिए सरल एवं अकृत्रिम बुंदेली का प्रयोग किया गया है। जगदेव कौ पंवारौ, भक्ति की ही गाथा है। गाथा की भक्तिमय पदावली दृष्टव्य है–

घरियक बिलंव करों मोइ मइया,
मैं गंगा असनान कर आऊँ हो माय।
सपर खोर ठाँढ़ीं भई रनियां, पहरे लहर पटोर हो माय।
सिर पर तिलक, तिलक पर बेंदी, नैना करे रतनार हो माय।
ऐंच खड़ग रानी माथो उतारत, देवी नें गैलई बाँह हो माय।

इस प्रकार की भाषा का अर्थ समझने के लिए रंच मात्र भी मानसिक व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं होती। भाव सीधे मानव ह्रदय को स्पर्श करते हैं। इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करने वाले कवि काव्य क्षेत्र में विशेष सफलता प्राप्त करते हैं। गाथाकार भावुक और गंभीर चिंतक होते हुए भी बड़ी ही सहज प्रवृत्ति एवं सहज व्यक्तित्व के हुआ करते थे। यही कारण है कि उनकी भाषा में सहजता और सरलता दिखाई देती है। भाषा की स्वाभाविकता मथुरावली के पंवारे में स्पष्ट ही दिखाई देती है। जरा देखिये–

जारे मुगला पानी भर ल्या, प्यासी मरें है मथुरावली।
जबनौ मुगला पानी खौं गओ, तम्बू में दै लई आग।
ठाँढ़ी जरै मथुरावली।

कारसदेव के पंवारे की भाषा पूर्ण सहज और जन साधारण के समझने योग्य हैः–

बारा बरस तपिया तपी, करे न अन्न अहार।
सरनी गई असनान खौं, अहेले तला के पार।
कमल पै पोंढ़ों राजकुमार।

सारा का सारा गाथा साहित्य स्वाभाविक और सहज है, जो जन–जन के लिए अत्यधिक प्रिय है।

अलंकारिक योजना– पंवारों में विविध अलंकारों का समावेश किया गया है। गाथाकारों ने जान–बूझकर अलंकारों के बोझ से बचने का प्रयास किया है। जो अलंकार सहज रूप में उपस्थित हुए हैं, उन्हें ग्रहण कर लिया है। जिनमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति प्रमुख हैं। उपमा अलंकार का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। कारसदेव के पंवारे में उपमा की झलक देखिये –

बिजुरिया ऐसों खांड़ो काड़ो,
जैसें जीभ काड़ै करिया नाग।
भुमना धरन गिरो रे ऐंसे,
जैंसें गिरें टूट कैं डार।

संदेह अलंकार का एक उदाहरण देखिये–

कैं सोना गिरि सोनौ उजर रओ, कै वन में लगी दवार।

अपन्हुति अलंकार की छटा पंवारे में दिख रही है–

ना सोना गिरि सोनौ उजर रओ, ना वन में लगी दवार।
चकचौंदा लग रई बेटी, जमदेव की छाँवर के माँझ।

इसी पंवारे में अतिशयोक्ति अलंकार का उदाहरण दृष्टव्य है–

कारसदेव ने बदला दये बछेरा, बैरी की भूमि लौ।
कछुअक बछेरा धरनी चले, कछुअक चले असमान।

मथुरावली पंवारे में उपमा अलंकार की झलक देखिये –

अंग जरें जैसें लाकड़ी, केस जरें जैसे घास।

जगदेव पंवारे में अतिशयोक्ति अलंकार के दर्शन हो रहे हैं –

आई–आई हो मेरी आद भवानी,
हमें बायनौ ल्याई हो मांय।
सेर चार कीं ल्आई पपरियां,
मन दस की लै जाय हो मांय।

पंवारे में संदेह अलंकार की झाँकी दिखाई दे रही है –

कै राजा कौड़ी कर डारो, कै कर डारौ जगत पखान हो मांय।

यदि पंवारों में ध्यानपूर्वक साहित्यिक सामग्री का अन्वेषण किया जाये तो पर्याप्त मूल्यवान सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

रस परिपाक– पंवारों में रस परिपाक हेतु पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। कुछ गाथाओं के कथानक तो ऐसे हैं, जिनमें राष्ट्रीयता और देश प्रेम की भावना के दर्शन होते हैं। ऐसा लगता है कि उन दिनों देश पर संकट के काले बादल मंडरा रहे थे। विदेशी तुर्कों, मुगलों और अन्य दस्युओं के हमलों के कारण तत्कालीन शासक डगमगा रहे थे। उनमें से कुछ वीर और उत्साही शासक अपने शौर्य के द्वारा राज्य और जनता की रक्षा कर रहे थे और कुछ कायरता के कारण दस्युओं की अधीनता स्वीकार कर रहे थे। बड़ी विचित्र स्थिति थी देश की उन दिनों। सर्वत्र फूट और पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष का वातावरण था। यही कारण है कि उन कथानकों में कहीं वीर रस, कहीं श्रृँगार और कहीं शांत तथा करुण रस की झाँकी दिखाई देती है। जगदेव कौ पंवारौं भक्ति भावना का सार्थक स्वरूप है। जगदेव शक्ति का उपासक था। यही कारण है कि उसका पंवारा नवरात्रि के अवसर पर गाया जाता है। उसमें शांत और भक्ति रस की प्रधानता है। भक्ति की भावना से प्रभावित होकर स्वयं आदिशक्ति उपस्थित हो जाती हैः–

घरियक बिलंव करों मोइ मइया, मैं गंगा असनान कर आऊँ हो माय।
सपर खोर ठाँढ़ीं भई रनियां, पहरे लहर पटोर हो माय।
सिर पर तिलक–तिलक पर बेंदी, नैना करे रतनार हो माय।
ऐंच खड़ग रानी माथो उतारत, देवी नें गैलई बाँह हो माय।
उठ–उठ हेरैं दल पांगुरे, काली आंगन आई हो मांय।
आई–आई हो मोरी भवानी, हमें बायनों ल्याई हो मांय।

इसी प्रकार की भक्ति भावना में हमें शांत रस के दर्शन होते हैं। कारसदेव के पंवारे में कारसदेव की माता सरनी ने भगवान शंकर की तपस्या करने के बाद कारस देव को पुत्र के रूप में प्राप्त किया था–

बारा बरस तपिया तपी, करे न अन्न अहार।
सरनी गई असनान खौं, अहेले तला के पार।
सौ–सौ दल कमला खिलें, दियला जरे हजार।
कमल पै पोंढ़ों राजकुमार।

अधिकांश पंवारे वीर रस प्रधान हैं। उन दिनों विदेशी आक्रामक आये दिन देश पर हमला किया करते थे। अपने देश की रक्षा के लिए राजपूत राजा अपने प्राणों की बाजी लगाने के लिए सदैव तत्पर रहा करते थे। शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए आदि शक्ति की आराधना की जाती थी। जगदेव की राजधानी धारा नगरी पर जब मुगलों ने आक्रमण किया, तब जगदेव ने अपने शौर्य के बल पर उन्हें पीछे खदेड़ दिया था। पंवारे में उनके शौर्य का वर्णन किया गया है–

चिरई घाट पै होय री, बड़े राव सें न्याव।
अरे जगदेव सों न्याव।
डेरी लड़ें कालिका दाहिनें हनुमान।
सम्मुख लड़ें भवानीं, लंगरे अगवान।
खप्पर लयें हांत, नरियल लयें हांत।
हतिया रे हतिया, घुड़वा रे घुड़सवार।
तेगा चलें बज्जुर कौ, माई कौ त्रिशूल।
बरछी चलें लंगर की।
इंदर लोक लो दल भागत जाय, मुगला दल भागत जाय।
जमुना तोरों नीरा राजा जगत से मां भले हो मांय।

मुगलों की सेना को भगाकर जगदेव के मन में शांति हुई। सारी की सारी सेना अपने प्राण बचाकर भाग गई। युद्ध के लिए प्रयाण करते समय, जगदेव की साज–सज्जा देखने योग्य है–

आज्ञा भुमानी सुन दै दई, जगदेव बांदौ तरवार,
डेरी सोहैं कटरिया, दायीं सोहैं तलवार।
लंगरे अगवान अये खप्पर लयें हांत, नरियल लयें हांत
उतरी कमान जगत की, अये दुर्गा देत चढ़ाय
राजा हो जगत से, माँ भले हो मांय।

कारस देव के पंवारे में कारस का शौर्य वीर रस प्रधान है–

बढ़ा दये बछेरा अपनें खिरक के, कारस पौचे भुमन के द्वार।
बिजुरिया ऐसों खाड़ौ काड़ों, जैसे जीभ काड़ैं करिया नाग।
भुमना आग बबूला भओ, आयो सामैं भरें छलांग।
बोलो दै दओ मजा चखाय।

कारस सुन भुमना की बात, मनईं मनें रओ मुसकाय
कर लै दो–दो हाथ रे बोलो खाड़ौ उठाय।
अपनौ बदलों लेऊँ चुकाय।
भुमना धरन गिरो रे ऐसैं, जैसें गिरें टूट कै डार।

श्रृँगार तो रस राज है। इसके बिना संपूर्ण रस अपूर्ण से प्रतीत होते हैं। पंवारों में अनेक स्थलों पर श्रृँगार रस की झांकी दिखाई देती है। जमदेव बेटी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कारस देव को प्रेरित कर रहे हैं।

अरे कारस देव, भीका जनम संगाती खौं रहे समझाय,
कै सोनागिरि सोना उजर रओ, कै वन में लगी दवार
ना सोना गिरि सोना उजर रओ, ना वन में लगी दवार।
चकचौंदा लग रई बेटी जमदेव की, छांवर के माँझ।

जगदेव के पंवारे में आदिशक्ति की वाटिका के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किया है–

अबकी लाज राखियों हो मांय,
सौरा गउवन कौ गोबर मंगायो,
ढिक धर आंगन लिपाव हो मांय,
मुतियन के नौनें चौक पुराये, कंचन कलश धराये हो मांय।
आम, नीम मौवा गुलजार बेला।
चमेली उर केवरों निबुवंन के बाग, लोंगन के बाग हो मांय।

मथुरावली के पंवारे में मुगल आततायी मथुरावली के सौन्दर्य पर रीझकर सारे उपहारों को छोड़कर केवल उस मथुरावली को ही चाह रहा है –

तोरे हतियंन कौ मैं का करो, मेरे हैं गदहा हजार,
एक न छोड़ौ मथुरावली।
जाके हैं लम्बे–लम्बे केश, भौंहें कटीली नैना रस भरे,
लै जाँऊ काबुल देश, बीबी तो बनाऊँ मथुरावली।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पंवारों में पर्याप्त रस परिपाक हुआ है।

काव्याधार सामग्री– सच पूछा जाये तो लोक साहित्य, शिष्ट साहित्य की आधार भूमि है। बुंदेलखण्ड में ऐसी अनेक लोक गाथाएँ प्रचलित हैं, जिनके आधार पर

बड़े–बड़े महाकाव्य नाटक और उपन्यास लिखे जा सकते हैं। सारा का सारा हिन्दी का प्रेमाख्यानक काव्य अवध की लोकगाथाओं के आधार पर लिखा गया है। इस क्षेत्र में बुन्देलखण्ड भी पीछे नहीं है। बुंदेली लोक गाथाएँ आदर्श प्रधान हैं। इनमें बुंदेली की माटी की महक समाई हुई है। भारतीय संस्कृति का मूलाधार संयम, विवेक, त्याग तपस्या, अहिंसा और परोपकार के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। पंवारे परमार वंशीय राजाओं के शौर्य, भक्ति और प्रेम के कथानक हैं, किन्तु वे कथानक तात्कालिक होते हुए भी सार्वजनिक और सार्वभौम हैं। इनसे राष्ट्रीयता और देशप्रेम की उत्तम शिक्षा तो प्राप्त होती ही है। उन दिनों देश पर विदेशी दस्युओं के हमले तो हुआ ही करते थे। राष्ट्रीयता और देश की अखण्डता का संकट उत्पन्न हो गया था, किन्तु राजपूत राजाओं ने अपने प्राणों की बाजी लगाते हुए आक्रमणकारियों को पीछे हटाने का प्रयास किया था। ऐसे वीर राजाओं की शौर्य गाथाएँ पंवारों के रूप में प्राप्त होती हैं। अधिकांश पंवारे लोक–मुख में विद्यमान हैं, उन्हें लिपिबद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है। जिस प्रकार महाकवि जयशंकर प्रसाद ने चंद्रगुप्त, स्कंद गुप्त, अजातशत्रु नाम के ऐतिहासिक नाटक लिखे थे, लगता है कि उन नाटकों की मूलाधार भूमि लोक गाथाएँ ही होंगी। इसी प्रकार इन पंवारों के कथानक के आधार पर नाटक और उपन्यास लिखे जा सकते हैं। वृन्दावन लाल वर्मा द्वारा रचित अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास लोक गाथाओं से प्रभावित हैं।

जगदेव कौ पंवारों इतिहास से प्रभावित है। यह इतना विस्तृत कथानक है कि इसको एक विशाल महाकाव्य का स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। इसमें तत्कालीन मुगलों के हमलों, धारानगरी के राजा भोज, चंद्रभाट और जगदेव की वीरता और राष्ट्रीयता का वर्णन है। यह शक्ति उपासकों का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ बन सकता है। कारसदेव कौ पंवारौ नाटकीयता से भरा हुआ है। यदि इसे एक नाटक का स्वरूप दे दिया जाय तो उचित ही होगा। कथानक तो रोचक और सरस है ही। माता सरनी की तपस्या और कारस की प्राप्ति। जमदेव को प्राप्त करने के उपाय और कारस के युद्ध–कौशल की नाटकीयता दर्शनीय है।

मथुरावली कौ पंवारौ भारतीय नारियों के पातिव्रत का एक उत्तम उदाहरण है। इस गाथा के आधार पर एक खण्डकाव्य की रचना की जा सकती है। जिसे पढ़कर नारी समाज को चरित्र निर्माण की उत्तम शिक्षा प्राप्त हो सकती है। अन्य देश की नारियों के समक्ष पातिव्रत का उच्चादर्श प्राप्त हो सकता है। इस मूल्यवान सामग्री को लिपिबद्ध करना आवश्यक है, अन्यथा यह प्रेरणास्पद सामग्री विस्मृति के गर्त में विलीन हो जाएगी।

सांस्कृतिक शब्द सम्पदा– हालांकि समस्त पंवारे तत्कालीन संस्कृति के भण्डार तो हैं ही, किन्तु उनमें इस प्रकार की शब्दावली प्राप्त होती है, जिनसे उस समय के रीति–रिवाज, खान–पान, रहन–सहन का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। मथुरावली के पंवारे में यह स्पष्ट है कि उन दिनों राजाओं को उपहार स्वरूप हाथी, घोड़े दिये जाते थे। मथुरावली को मुक्त कराने के लिए उनके ससुर और जेठ मुगल आततायी को भेंट स्वरूप हाथी–घोड़े देना चाहते थे। किन्तु वह उनके समस्त उपहारों को ठुकरा देता है। गाथा में इस प्रकार के संकेत प्राप्त होते हैं।

ससुर मिलाओं हो लै चलें, लै चले हतिया हजार।
लैरे मुगला के रे हतिया, बहू तौ छोड़ौ मथुरावली।।

मुगल हाथियों को अस्वीकृत करते हुए कहता है –

तोरे हतियंन कौ मैं का करो, मेरे हैं गदहा हजार,
एक न छोड़ौ मथुरावली।

कभी–कभी विपदा आने पर नारियाँ अपने अनुचरों और सेवकों को पुरस्कार स्वरूप नाक की बेसर तक दे देती थीं। गाथा में उस स्थिति का चित्रण किया गया है–

नाक की बेसर ढोलिया तोय दई,
ऊँचे चढ़ ढोल बजाओ, ठाँढ़ी जरै मथुरावली।

उन दिनों पगड़ी की लाज को बहुत महत्त्व दिया जाता था। नारियाँ अपने सतीत्व और पतीत्व की रक्षा करने हेतु आग में जल जाती थीं। मथुरावली का आत्म–बलिदान इस गाथा का प्रमुख अंश है–

जोंलों मुगला पानी खौं गओ, तंबू में दैलई आग,
ठाँढ़ी जरै मथुरावली।
रोय चले बाके बालमा, विहँस चले बाके बीर,
राखी बहना पगड़ी की लाज, ठाँढ़ी जरैं मथुरावली।

उन दिनों संदेश प्रेषण का कोई विशेष साधन नहीं था। प्रायः पक्षियों के द्वारा संदेश भेजे जाते थे। महाकवि कालिदास ने 'मेघदूत' की परिकल्पना की थी। इस गाथा में मथुरावली ने आकाश में उड़ने वाली चील के द्वारा बंदी होने का संदेश प्रेषित किया था –

सरग उड़ती चील री, आधे सरग मंड़राय।
जाय जौ कइयौ मोरे ससुर सों, सास खौं कइयों समझाय,
बंदी परी है मथुरावली।

जगदेव के पंवारे में तत्कालीन संस्कृति का स्वरूप दिखाई देता है। उन दिनों धनी–मानी और राजा लोग प्रायः सोने के थालों में भोजन किया करते थे। देवताओं को बैठने के लिए चंदन–चौकी डाली जाती थी। उनके भोजन के लिए एक विशेष प्रकार का भोजन तैयार किया जाता था। देवीजी की पूजा और सम्मान का एक दृश्य देखने योग्य है–

काहे के डारौं माई बैठका, काहे कैं पखारों पांय हो मांय।
चंदन–चौकी डारों बैठका, दूदन पांय पखारों हो मांय।
घरियक बिलंब करों मोई मां तो, भात बना तो देंय हो मांय।
दार बनाई रजमूंग की, रांदे कमोदन भात हो मांय।

उन दिनों नारियाँ लहर पटोरे पहनतीं थीं, जिनकी साज–सज्जा देखने योग्य है–

सपर खोर ठाँढ़ी भईं रनियां, पहिरे लहर पटोर हो मांय।
सिर पर तिलक, तिलक पर बेंदी, नैंना करें रतनार हो मांय।

भोजन सामग्री में बांयनों का प्रमुख स्थान है। किसी के घर में भेंट करने के लिए जो विशिष्ट–भोज्य सामग्री भेजी जाती थी, उसे बांयनों कहा जाता है। गाथा में भी बांयनों का थोड़ा सा संकेत किया गया है–

आई–आई हो मोरी आद भवानी, हमें बांयनों ल्याई हो मांय।
सेर चार की ल्याई पपरियां, मन दस खुरमा ल्याई हो मांय।

उन दिनों देवताओं और मनुष्यों के अस्त्र–शस्त्रों में बहुत अंतर होता था। तेगा, तलवार, बरछी, भाला, त्रिशूल आदि प्रमुख हथियार थे। गाथा में उन सबका स्पष्ट उल्लेख है–

तेगा चलैं बज्जुर कौ, माई कौ त्रिशूल,
उर बरछी चलैं लंगुर की।
गढ़ से जगदेव उतरे, तेगा बाई धराये, बरछी बाई धराये।
सिर सोने की कलगी लिलार, नृसिंह पौर कहाय हो मांय।

उन दिनों ढिक लगाकर आँगन लीपने की प्रथा थी। मोतियों के चौक पूरना मंगलमय माना जाता था। गाथा में कहा भी गया है –

सोरा गउंवन कौ भइया गोबर मंगाओ,
ढिक धर आंगन लिपाव हो मांय।
मुतियन के भइया चौक पुराये, कंचन कलश धराव हो मांय।

आम, नीम, मौवा, बेला, चमेली, नींबू और अनार के वृक्षों को माताजी की बाटिका में लगवाया गया। देवीजी की वाटिका वृक्षावलियों से सुशोभित हो रही है–

कोंने तो लगाये तोरे आम नीम, मौवा गुलजार बेला,
उर चमेली, केवरों हो मांय।
निंबुवन के बाग, लोंगन के बाग, लायचियंन के बाग।
नरियल के बाग, जगदेव लगवाय हो मांय।
बड़े–बड़े कुंअला, उर ताला खुदवाय हो मांय।
जिनमें गउयें पीबें पानी, बम्मन करें असनान हो मांय।

गाथा में इन सब स्थितियों का विधिवत वर्णन किया है। अपने से बड़े और पूज्य के लिए दण्डवत करने की प्रथा थी। देवताओं के समक्ष दण्डवत प्रणाम करना आवश्यक है। दण्ड के समान लेटकर प्रणाम करना विनम्रता का सूचक है–

सपर खोर किरिया करें, मोरे राजा महराजा,
अरज करें दण्डौत माता मोरी,
आवत देखो उदयाजीत खौं मोरे राजा महराजा,
भीतर हन लये बजर किवार माता मोरी।

भक्ति के कारण पुत्र प्राप्ति का उदाहरण कारसदेव के पंवारे में दिखाई देता है–

बारा बरस तपिया तपी, करे न अन्न अहार।
सरनी गई असनान खौं, अहेले तला के पार।
कमल पै पोंढ़ो राजकुमार।

एक तलवार का नाम 'बिजुरिया खाड़ो' था। यह एक लंबी धारदार तलवार होती थी, जिसका वर्णन लोकगाथा में है–

बिजुरिया खाड़ों ऐसों काड़ौ, जैसें जीभ काड़ैं करिया नाग।

इस गाथा में 'लिलोर' शब्द का प्रयोग किया गया है। लिलोर का अर्थ है अल्पायु या कम उम्र वाला।

वीरन तोरी छोटी उमर कइये लिलोर, टूटे नइयां दूद के दाँत।
तोपे ऐड़न बछेरा दबें ना, उर सधें न दुधारों सेल।

आज समय का विभाजन घंटा, मिनट, सेकण्डों के आधार पर किया जाता है। किन्तु प्राचीन काल में घरी और पहर का प्रयोग किया जाता था, जिसमें चार प्रहर का दिन और चार प्रहर की रात मानी जाती थी। इसी आधार पर 'दोपहर' शब्द की रचना हुई है। गाथा में चार पारों का वर्णन किया गया है–

पैले पारे सिंहन के लगे, दूजे पारे नाथन के लगे हैं।
तीजे पारे कइये पांचों कलइयों के लगे मैड़े मझार।
अब चौथे पारे लगे हथियंन के, राजा रहो समझाय।

बछेरा की पीठ पर पवन पुतरिया लिखने का प्रचलन था, जिससे बछेरा युद्ध क्षेत्र में वायु वेग के समान दौड़ सके।

सरनी माता ने बछेरा की पीठन पै पवन पुतरिया लिख दई।

कोई शौर्यपूर्ण कार्य करने के लिए पान का बीरा लगाकर रखा जाता था। वह एक प्रकार की चुनौती होती थी। बीरा चबाने वाले को ही वह महान कार्य करना पड़ता था। लोकगाथा में स्पष्ट संकेत हैं –

राजा समजा रये हैं, पांच पान के बीरा दये लगवाय।
कोऊ तो बीरा उठा लेबैं, लगे दरबार।

लोग किसी की मौत का उपाय उसी से सुन लेते थे। यह महाभारत कालीन परम्परा है। स्वयं भीष्म पितामह ने अपनी मौत का उपाय बता दिया था। गाथा में देखिये–

अरे ऊ कारसदेव की मौतें पूछ लई, वैंन ऐलादी के मौं से।

इन्हें लिपिबद्ध नहीं किया गया तो यह मूल्यवान सामग्री लुप्त हो जायेगी।

बुंदेली के कुछ प्रमुख पंवारे

जगदेव कौ पंवारौ– पंवारे परमार वंशीय राजाओं के इतिवृत्त तो हैं ही, इनमें परमार वंश के सुप्रसिद्ध और लोकप्रिय शासक विक्रमादित्य, भोज और जगदेव की गाथाएँ हैं। परमार वंश राजपूत काल के अन्तर्गत आता है। भारतीय इतिहास के अनुसार सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी अर्थात् पांच सौ वर्ष तक राजपूत काल माना जाता है। राजपूतों की वीरता और शौर्य की गाथाएँ तो इतिहास प्रसिद्ध हैं ही। राजपूत क्षत्राणियों के जौहर की कथाएँ भी लोक प्रचलित और लोकप्रिय हैं। राजपूतकाल को यदि संक्रान्ति काल कहा जाये तो अनुचित नहीं होगा। इस काल में राजपूत वीरों को विदेशी आक्रमणकारियों से डटकर सामना करना पड़ा। धारा नरेश राजा भोज ने अनेक मुस्लिम हमलावरों का सामना किया और उनका अधिकांश समय युद्धों में ही व्यतीत हुआ। एक ओर तो वे विद्या व्यसनी कवि, लेखक और उदार शासक के रूप में प्रसिद्ध थे, तो दूसरी ओर वे तलवार के धनी अपराजेय शासक के रूप में प्रसिद्ध थे। उन दिनों भारत की राजनैतिक स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। विदेशी मुसलमानों के आक्रमण के कारण भारतीय राजनीति असंतुलित हो गई थी। हिन्दू धर्म और संस्कृति पर भारी वज्रपात हो रहा था। राजपूतकालीन स्थापत्य और वास्तुकला पर इस्लाम संस्कृति हावी होती जा रही थी। भोज की बनवाई गई इमारतों पर मुसलमानों का आधिपत्य हो रहा था। भोज की बनवाये गये शिवजी के मंदिर, सरस्वती शालाएँ मुसलमानों की कब्रों, मकबरों और मस्जिदों के रूप में बदल गईं थीं। उनकी अश्वशालाएँ, राजभवन थोड़े बहुत कायाकल्प के बाद आततायियों की बेगमों के हरम बन गये थे। बड़ी विचित्र स्थिति थी उन दिनों भारतीय राजनीति की। राजपूतों की आपसी फूट का लाभ मुगलों को प्राप्त हुआ। भोज ने मुहम्मद गजनवी के साथ युद्ध किया था। जगदेव के पंवारे में बादशाह की सेना के साथ युद्ध का वर्णन है। गाथा में राजा सेन का वर्णन है। राजपूत काल में बंगाल में सेन वंश के राजा राज्य करते थे। भोज परमार ने दक्षिण के राजा तैलप, गुजरात के सोलंकी और कलचुरियों पर आक्रमण किये थे। धीरे–धीरे मुस्लिम आक्रामक अपनी जड़ें जमाने लगे और उनकी शक्ति बढ़ने लगी। कुछ राजपूत राजाओं को पराजित कर उन्होंने अपना अधिकार जमा लिया था। मुगल आततायी हिन्दू माँ–बहिनों की लाज लूटने का प्रयास करने लगे। राजपूत क्षत्राणियों ने जौहर करके अपने धर्म की रक्षा की थी। मथुरावली, चंद्रावली, कुसुमादेवी और भगवती देवी जैसी नारियों ने हँसते–हँसते प्राण–प्रसून न्यौछावर कर दिये थे। मथुरावली के चाचा ने पारस्परिक शत्रुता के कारण आक्रामक से मिलकर भतीजी का अपहरण करवाया था। लोक गाथा में आपसी फूट का स्पष्ट उल्लेख है –

सगौ री चाचा बैरी भयो, जिननें भंजायों बैर।

राजपूत काल के अंतिम शासक इतने निकम्मे और कायर निकले कि अपने राज्य की रक्षा भी नहीं कर पाये और अंत में अपने राज्य को खोकर दर–दर की ठोकरें खाते फिरे।

मुगलों के हमलों के कारण देश की सांस्कृतिक स्थिति पर भारी आघात पहुँच रहा था। सर्वत्र अशांति और संघर्ष का वातावरण था। ऐसे समय में अपने धर्म और सांस्कृतिक विरासतों की रक्षा के लिए जन–जन के मन में राष्ट्रीयता की भावना का उदय होना स्वाभाविक ही था। भयंकर रक्तपात और नरसंहार हो रहा था। पंवारों के संघर्षों की घटनाओं से सारा भारतीय इतिहास भरा पड़ा है।

जगदेव के पंवारे में भी जगदेव के द्वारा लड़े गये युद्ध का वर्णन है। उसने आक्रमणकारी मुगल से युद्ध किया था। गाथा में उस घटना का स्पष्ट उल्लेख है –

माँ सें बेटी बोले जगत की, सुन बाबुल बात है,
भारी दल मेलों जगत कौ,
आबैं मुगल कौ राज, अये मुगल कौ राज,
मोइयें तो ले जैय मुगल कौ,
अरे बेटी करियों राज, बाँदें तलवार राजा रे जगत से,
माँ भले हो माय।

पंवारे में जगदेव की उदारता, त्याग, तपस्या और दयालुता का वर्णन है। वह अपने नगर वासियों की भलाई के लिए जीवन भर युद्ध करता रहा। वह परमार वंशीय राजा उदयाजीत की वंशावली के अन्तर्गत आते हैं। गाथा में स्पष्ट उल्लेख है–

ऊदल के फूदल भये, मोय राजा महाराजा,
जिनके होबैं जुगल किशोर माता मोरी,
जुगल किशोर के भये राजा महाराजा,
जिनके होबैं पवन कुमार माता मोरी,
पवन कुमार के भये राजा महाराजा,
जिनके भये उदयाजीत माता मोरी,
उदयाजीत के भये राजा महाराजा,
जिनके दियल न बात माता मोरी।

इसका अर्थ यह हुआ कि उदयाजीत निःसंतान थे, किन्तु देवी जी की तपस्या करके वरदान–स्वरूप जगदेव और रन्धौर नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। जगदेव बाल्यकाल से ही देवीजी का भक्त था। उनके वैराग्य–भाव को देखकर राजा उदयाजीत ने रन्धौर को राज्य सौंप दिया था। राजा रंधौर के दुर्व्यवहार से असंतुष्ट होकर जगदेव धार नगरी में जाकर राजा के यहाँ नौकरी करने लगे थे। उन्होंने राजा भोज के दुर्ग पर हमला करने वाले 'काला दानव' को दूर खदेड़ दिया था। लोक गाथा में उस काले दानव को संबोधित करते हुए कहा गया है –

इन झिरियंन जल तै पियें करिया दानों,
संगै रेतै धरम की माता मोरी।
इन सखियंन बतिया नन परौ फूला माली।
कै रओ गरब की बात माता मोरी
कौन जतन जनम लयें मोये राजा महाराजा,
सारौ हो अपनौ नांव माता मोरी,
धार नगर जनम भये हमाये हो राजा महाराजा,
जगदेव हैं हमाये नांव माता मोरी,
जगदेव जब बनों हो राजा महाराजा,
जब ओढ़ो अवन कौ हांत माता मोरी।
पिड़िनी सें पिड़िनी डगो हो मोये राजा महाराजा,
बंध गये दांतन सें दांत माता मोरी।

इसके बाद वे राजा सेन के यहाँ नौकरी करने लगे। उन दिनों उनका छोटा भाई रंधौर धारा नगरी में राज्य कर रहा था। इसी बीच धारा नगरी पर विदेशी शत्रुओं ने हमला कर दिया और उस समय रंधौर अकेला था, इसलिए घबड़ा गया। उसने अपने राज्य पर आने वाले काले संकट का समाचार दिया। सुनते ही जगदेव धारा नगरी को चल दिया। वहाँ पहुँचते ही वे दोनों भाई देवीजी के मंदिर में पहुँचे और उनकी पूजा–अर्चना करते हुए कहने लगे–

मैया अबकी लाज मोरी राखियौ हो मांय,
ढिक धर आंगन लिपाब हो मांय।
मुतियन के मैया चौक पुरवाये,
कंचन कलश धराव हो मांय।।
गोबर की धारा नगरी बनवाई,
जगदेव भये रखवार हो मांय।।

शत्रुओं के द्वारा धारा नगरी के घिर जाने पर राजकुमारी चिंतित होकर कह रही हैं:–

माँ सें बेटी बोलें जगत की, सुन बाबुल बात,
भारी दल मेलों मुगल कौ,
आबैं मुगल कौ राज, अये मुगल कौ राज,
मोइयें तो ले जैय मुगल कौ।

राजकुमारी को चिंतित देखकर जगदेव उसे धैर्य धराते हुए कहने लगते हैं–

अरे बेटी करियों राज, बाँदें तलवार,
राजा रे जगत से, माँ भले हो माय।
हीन जिन बोलियों बेटी राजकुमारि,
छत्री धरम नसाय।
इक लख मारे मुगल खौं, दूजे तुरक पठान,
तीजे मारे दिल्ली आगरौ, चौथे गुजरात।
हनो किवरियां मोरौ नांव पुकार,
राजा रे जगत से मां भले हो मांय।
आज्ञा भुमानी सुन दै दई, जगदेव बांदौ तलवार,
डेरी सोहैं कटरिया, दांई सोहैं तलवार।
लंगरे अगवान खप्पर लयें हात, नरियल लयें हांत।
उतरी कमान जगत की दुर्गा देत चढ़ाय।
राजा हो जगत से मां भले हो मांय।

जगदेव देवी जी का परम भक्त तो था ही। वह देवी जी की आज्ञानुसार उनके चरणों में अपना शीश काटकर चढ़ा देता है। गाथाकार आत्म–बलिदान की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखता है –

मैं पूछो जगदेव की रनियां, जगदेव शीश मगायें हो मांय,
घरियक बिलंब करियों मोई माता, गंगा करों असनान हो मांय।
सपर खोर ठाँढ़े भये जगदेवा, पीताम्बर पहराय हो मांय,
सिर पर तिलक तिलक पर कलगी, नैंना करें रतनार हो मांय।
ऐंच खड़ग जगदेव माथौ उतारो, धर दओ थार मझार हो मांय।

कहा जाता है कि देवीजी ने जगदेव की रानी को उसके पति का शीश लौटाना चाहा, तब रानी ने कहा कि माता जी मैं दिया हुआ दान वापिस नहीं लेना चाहती। माता जी ने प्रसन्न होकर अपनी छिंगुरी चीरकर जगदेव के धड़ पर छिड़क दिया। तब जगदेव जयकाली–जयकाली कहता हुआ उठ खड़ा हुआ और सीधा देवीजी के चरणों में जा गिरा। तब देवी जी ने उसे उठाते हुए वरदान दिया कि सदा विजयी रहो मेरे लाल।

यह पंवारा बहुत ही विस्तृत है। यह चौसठ दरबारों में बंटा हुआ है। नवरात्रि में नौ दिन तक लगातार गाने के बाद भी पूरा नहीं होता है। यह किसी भी महाकाव्य से कम नहीं है। इस गाथा के सारे अंश विधिवत लिपिबद्ध नहीं किये जा सके और लोक–मुख में बिखरे पड़े हैं। जितना जो कुछ प्राप्त हुआ, उसे लिपिबद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है।

नौरता (नारे सुआटा) – 'नौरता' शब्द से यह भलीभाँति स्पष्ट हो रहा है कि यह नवरात्रि का एक पुनीत पर्व है। क्वार शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से नवमी तक अर्थात् नौ दिन तक यह पुण्य–पर्व आयोजित किया जाता है। मुख्य रूप से यह क्वाँरी कन्याओं का त्योहार है। हिन्दुओं की हर जाति की कन्याएँ नौरता खेलने में विशेष रूचि लेती हैं। यह एक प्रकार का बालिकाओं के लिए भावी गृहस्थ जीवन का प्रशिक्षण है। इस त्योहार से बालिकाओं को घर–गृहस्थी संचालन की उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है। छबाई, लिपाई–पुताई, अल्पना रचना, चौक पूरना और रंगोली का ज्ञान प्राप्त होता है। पारिवारिक संबंधों के निर्वाह की उत्तम शिक्षा इस पर्व से बालिकाओं को स्वतः ही प्राप्त होती है। वे गृहलक्ष्मी बनकर घर–परिवार को स्वर्ग सरिस सुखदायक बना देती हैं। ऐसी नारियाँ पूजा के योग्य और श्रद्धा की पात्र होती हैं। कहा भी गया है– **'यत्र नार्यस्तुः पूज्यंते, रमन्ते तत्र देवताः।'** ऐसी ही नारियों को महाकवि जयशंकर प्रसाद ने श्रद्धा का स्वरूप निरूपित किया है–

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास–रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के इस सम तल में।

महिलाएँ ही घर–परिवार को सुख–समृद्धि और सुरस रिद्धि–सिद्धि भर देती हैं और कुछ महिलाएँ परिवार को नरक बना देती हैं। नौरता बालिकाओं को एक उत्तम गृहिणी बनने का प्रशिक्षण देता है। इस पर्व पर आधारित एक लोकगाथा प्रचलित है।

नौरता के गीतों से लोक–गाथा का रूप उजागर होता है। कहा जाता है कि 'सुआटा' नाम का एक भयंकर दानव था, जो क्वाँरी कन्याओं को उठाकर खा लेता था। सारा समाज उस दुष्ट दानव के कारण परेशान था। समाज ने चंद्र–सूर्य के सहयोग से हिमांचल की पुत्री पार्वती की आराधना की। माता पार्वती ने उस दानव का संहार कर दिया। तभी से नवरात्रि के अवसर पर कन्याएँ नौ दिन तक गौरा पार्वती की आराधना किया करती हैं। नौरता के गीतों से गाथा उजागर होने लगती है।

किसी एक सार्वजनिक स्थल पर चबूतरे पर सीढ़ीनुमा चौकी बनाकर उस पर गौरा पार्वती की स्थापना की जाती है। दीवाल पर दानव अंकित करके अगल–बगल चंद्र–सूर्य का अंकन किया जाता है। चबूतरे को लीप–पोतकर अनेक रंगों के चौकों से सुसज्जित करके पूजा–अर्चना की जाती है। एक दीपक में दूध और कद्दू के फूल से सिंचित करती हुई समवेत स्वर में गाती हैं–

हिमांचल जू की कुंवर लड़ांयती नारे सुआ हो,
मोरी गौरा बेटी–नेहा तो लंगइयों बेटी नौ दिना नारे सुआ हो।
दसयें दिन करो हो सिंग्गार सुआ।
दसरये खौं दसरओ जीतियौ नारे सुआ हो,
नवयें दिन करो हो सिंग्गार सुआ।

सूर्योदय के पूर्व से ही घर–गृहस्थी के सारे कार्य–कलाप संचालित हो जाते हैं। महिलाओं की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण है। वे अधिक सक्रिय दिखाई देती हैं–

ऊगई नईं होय वारे, चंदा हम घर होय लिपना पुतना।
तुम घर होय दै–दै दरिया,
तिल कौ फूल तिली कौ दानों,चंदा ऊंगे बड़े भुंसारें।

इन गीतों में लोक–मंगल की भावना, परोपकार प्रियता, करुणा, उदारता और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के दर्शन होते हैं।

चंदा जू आ भइया, सूरज जू आ भइया,
जे मोरे भइया लिबाउन जैहैं, चलावन जैहैं।
नीले से घुड़ला कुदावत जैहैं, बन की चिरइया चुनावत जैहैं।
नंगी डुकरियां पैरावत जैहैं, अंधे कुआं उगरावत जैंहें।
फूटे से ताला बंधावत जैहैं, भूखन खौं भोजन करावत जैहैं।

लीले से घुड़ला कुदावत जैहैं, भूलन खौं गैलें बतावत जैहैं।
कन्यन के ब्याव करावत जैहैं, ब्याहन के चलाव करावत जैहैं।

इस गीत में बहिनें अपने भाइयों से सार्वजनिक जनहित और जन–कल्याण की अपेक्षा कर रहीं हैं। बहिनें प्रातःकाल सर्वप्रथम अपने भाइयों को जगा–जगाकर गाया करतीं हैं –

उठो मोरे सूरजमल भैया, चंदामल भैया।
नारे सुआ हो–मालिन खड़ी है तोरे द्वार,
इंदरगढ़ की मालिनी–नारे सुआ हो
हाँतई हात बिकाय।
उठो–उठो भैया–भोर भये नारे सुआ हो,
मालिनी ठाँढ़ी है तोरे द्वार।

बालिकाएँ श्रद्धा–भाव से गौरा–पार्वती की पूजा–आरती करती हैं–

झिलमिल–झिलमिल आरती,
महादेव तोरी पार्वती।
को बऊ नौंनी सलौनी भौजी,
सूरज बऊ नौंनी चंदा बऊ नौंनी,
नौंनीं–सलौंनी भौजी वीरन हमारे भौजी,
कंठ तुमारे भौजी कंत तुमारे भौजी,
झिलमिल–झिलमिल आरती,
महादेव तोरी पार्वती।

इस गाथा में पारिवारिक जीवन के सुंदर और असुंदर चित्र उभरकर सामने आये हैं, जिनमें नारी जीवन के खट्टे–मीठे अनुभव दिखाई देते हैं। जरा देखिये नौरता के एक गीत की चित्रावली को–

ससुरा विचारे नें चुनरी मंगाई, भैया चुनरी मंगाई,
वे चुनरी मैंने देवरे दिखाई, भैया देवरे दिखाई,
देवरा बिचारे ने रापट मारी, भैया रापट मारी,
ऊ रापट के असुवा बै गये, भैया असुवा बै गये,
वे असुवा मैंने चुनरन पोंछे, भैया चुनरन पोंछे,
वे चुनरी मैंने धुबिया कें डारीं, भैया धुबिया कैं डारी,

धुबिया कौ लरका फुलक न जानें, भैया फुलक न जानें,
वे चुनरी मैंने दरजी कैं डारी, भैया दरजी कैं डारी,
दरजी कौ लरका तुरप न जानें, भैया तुरप न जानें।

इस गीत में एकावली अलंकार की झांकी दिखाई दे रही है। बालिकाएँ अपनी गौर के सौन्दर्य का चित्रण वस्तु परिगणन शैली में कर रही हैं। कितनी लगन और उत्साह दिखाई देता है उनमें उस समय –

अपनी गौर की झांई देखौ, झांई देखौं
काहा पैरैं देखौ–देखौ
माथे बेंदी देखौ–देखौ
माथें बीजा देखौ–देखौ
गरे में खंगवारौ देखौ–देखौ
हाँतन चूरा देखौ–देखौ,
कम्मर में करदौना देखौ–देखौ
नाक में बेसर देखौ–देखौ
कानन में झुमकी देखौ–देखौ
पाँवन पायल देखौ–देखौ।

पराई निन्दा करने में महिलाओं को बहुत सुख प्राप्त होता है। वे सदैव ईर्ष्या–द्वेष से प्रेरित रहती हैं। वे पराई गौर की निंदा करने में जरा भी पीछे नहीं रहती।

पराई गौर की झांईं देखौ, झांई देखौ
कैसी–कैसी देखौ–देखौ
नाक–नकटी देखौ–देखौ
आँखन कानीं देखौ–देखौ
गोड़ों टूटों देखौ–देखौ
हाँत टूटों देखौ–देखौ
घूरे पै लौटत देखौ–देखौ
कौरा मांगत देखौ–देखौ

ये नारी की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति का एक उदाहरण है।

आठवें दिन ढिरिया फेरने का प्रचलन है। एक छोटी सी गगरी में छेद करके उसके अंदर जलता हुआ दीपक रख एक बालिका उस जगमगाती हुई ढिरिया को सिर

पर रख कर आगे चलती है। पीछे से बालिकाओं का झुण्ड गाता हुआ मुहल्ले के हर द्वार पर फेरी लगाता हुआ चलता है। उन्हें हर घर से भेंट स्वरूप अन्न और द्रव्य प्राप्त होता जाता है। वे हर दरवाजे पर खड़ी होकर गाने लगतीं हैं –

पूँछत–पूँछत आये हैं नारे सुआ हो,
कौंन बड़े जू की पौर सुआ।
पौरा के सो गये, भौजी पोरिया नारे सुआ हो,
खिरकी के जगें कोटवार सुआ।
निकरों दुलइया रानी बायरें नारे सुआ हो,
बिटियन देव तमोर सुआ।
कैसे कैं निकरै बिन्नू बायरें नारे सुआ हो,
ओलियन नौनें झडूलें पूत सुआ,
पूत जो पारों भौजी पालनें नारे सुआ हो,
बिटियन लेव अशीष सुआ।
हमें न जानों भौजी मांगनी नारे सुआ हो,
घर–घर देत अशीष सुआ।

प्रतिदिन नौरता पूजन के पश्चात् बालिकाएँ गोबर में कनिष्ठिका डालकर इन पंक्तियों को समवेत स्वर में दुहराती हैं–

चिंटी–चिंटी कुर्रू–कुर्रू देय,
बापै भइया राजी देय–राजी देय
राजी ऊपर घोड़ा देय–घोड़ा देय,
घोड़ा मारी लाता,
जा परी गुजराता–गुजराता,
गुजरात केरे बानियां–बानियां,
गोड़–मूँढ़ सैं तानिया–तानियां,
बम्मन–बम्मन जात के जनेऊ पैरें तांत के।
टीका देबैं रोरी के, हाड़–चबाबैं गोरी के।

इन पंक्तियों से गाथा में वर्णित किसी दानव के होने की पुष्टि अपने आप हो जाती है। नौरता का यह परंपरागत पर्व आज भी बुंदेलखण्ड में संचालित है।

प्रमुख रासो काव्यों में बुन्देली लोक–संस्कृति की झाँकी– दशवीं शताब्दी

से बीसवीं शताब्दी तक निम्नलिखित प्रमुख रासो ग्रंथों की रचना की गई थी, जिनमें तत्कालीन संस्कृति का स्वरूप परिलक्षित होता है –

परमाल रासो– चंद्रबरदाई, सन् 930 ई.
दलपत राव रासो– जोगीदास, सन् 1707 ई.
करहिया कौ रासो– गुलाब कवि, सन् 1777 ईं.
शत्रुजीत रासो– साहिबराय, सन् 1801 ई.
पारीछत रासो– कविवर श्रीधर, सन् 1816 ई.
बाघाट रासो– बाबूराय प्रधान, सन् 1816 ई.
बाघाट कौ समय– बाबूराय प्रधान, सन् 1816 ई.
भगवंत सिंह रासो– बाबूराय प्रधान, सन् 1816 ई.
झाँसी कौ रासो– कल्याण सिंह कुड़रा, सन् 1869 ई.
लक्ष्मीबाई रासो– मदनेश कृत, सन् 1904 ई.
भिलसाँय कौ कटक– भैरों लाल
पारीछत कौ कटक– द्विज किशोर
झाँसी कौ कटक – भग्गी दाऊ

उपरिलिखित रासो ग्रंथों में तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरूप दिखाई देता है। रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज की झाँकी उनमें दिखाई देती है। तत्कालीन बुंदेलखण्ड के राजपूत राजा गण पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष और वे अपनी आन–बान और मर्यादा की रक्षा हेतु युद्ध किया करते थे। मुगल–तुर्कों के हमलों के कारण भारतीय राजागणों का अधिकांश समय युद्ध में व्यतीत होता था। जन–जीवन संघर्षमय और अस्त–व्यस्त था। निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर रासो ग्रंथों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

युद्ध मय वातावरण– उन दिनों सर्वत्र युद्धमय वातावरण था। राजागण जन–कल्याण की ओर ध्यान दे ही नहीं पाते थे। उनका अधिकांश समय आत्म–रक्षा में ही व्यतीत होता था। पड़ोसी मुगल आततायी जनता की शांति–भंग किए हुए थे। रासो ग्रंथों में मुगलों के आक्रमण और युद्ध के दृश्य दिखाई देते हैं। दलपति राव रासो में मराठों के आक्रमण से उत्पन्न युद्ध की भयावह स्थिति का चित्रण किया गया हैः–

साज बहुर दविखनी, आन मेले सुअनेगं।
सहस पचासक सत्र क्षुब्ध यह क्रुद्ध सुतेगं।।

नाज महंगौ भयौ करें मधवा घनघोरं।
मरैं ऊँट अरुबाज मिलै, पानीं न घास तहं।
तेरह दिना नौ भयौ, नाज तीन रूपै सेर।
पानी घास मिलैं नहीं, लीनों दविखनीन घेर।

गाथा में आगजनी और लूट का वर्णन किया गया है–

आगि लगी गाऊं में, कीनौ कहा अबतें दही।
सजि भीर सुदौर दिमान करी, पुतरी नगरी पर आन परी।
तिहि लूटि सुवारि दई जबही, सबके मन फूल भई तबही।

लक्ष्मीबाई रासो में ओरछा राज्य के दीवान नत्थे खाँ की सागर और मऊ की लूट का वर्णन किया गया है–

घस गये ओड़छे वार टूट, तिनकरी मऊ की बड़ी लूट।
फारे किवार धंस परी भीर, लूटैं धन दौलत धरैं चीर।
तिय पैरें भूषन देख परैं, तिनके ते तुरत उतार हरैं।
तब लख नत्थे खाँ हुकमदीन, तिन घर सागर कहं लूटलीन।
जहं तहं मकान सब दयो बार, अनरीत करें ओरछे बार।
मन भाये लूटे हैं मकान, तब लगा दयो किल्लें निसान।

महोबे के राजकवि जगनिक ने आल्हाखण्ड में कीरतसागर और मदनताल की भुजरियों की लड़ाई का वर्णन विस्तारपूर्वक किया था, जो बड़ा ही रोमांचकारी है। आल्हा–ऊदल जोगी के भेष में पृथ्वीराज चौहान की सेना से घोर संग्राम करते हैं। उनकी मार–काट और तलवारों के वार को देखकर दिल्ली की विशाल सेना में भगदड़ मच जाती है।

हिन्दू मुस्लिम एकता– एक ओर तो मुगल और पठान हिन्दू राजाओं पर आक्रमण करते हैं तो दूसरी ओर अंग्रेजों से मुठभेड़ करते समय हिन्दू और मुसलमान सिपाही कंधे से कंधा मिलाकर शत्रुओं से संग्राम करते हैं। लक्ष्मीबाई रासो और लोहागढ़ संग्राम में इसके उदाहरण प्राप्त होते हैं। अंग्रेजों से युद्ध करते समय एकता प्रदर्शित होती है। एक दोहे में इस मत की पुष्टि भलीभाँति हो रही है –

इक दिन हिन्दुस्तान में, हिन्दू और पठान।
बदल गये अंगरेज से, सकल–फौज के ज्वान।।

एक ओर समाज में जहाँ बिखराव की स्थितियाँ पैदा हुई, वहीं दूसरी ओर हिन्दू–मुस्लिम सांप्रदायिक–सद्भाव के अवसर सामने आये हैं। सत्ता–संघर्ष की स्थिति में सहयोग की भावना जाग्रत हुई। बुंदेलखण्ड की प्रमुख रियासतों के अधिपति मुगलों के मनसबदार थे। दतिया नरेश दलपत राव मुगलों के उत्तराधिकार युद्ध में आजमशाह की ओर से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। दूसरी तरफ इन रासो काव्यों में वर्णित घटनाओं से ज्ञात होता है कि ओरछा, झाँसी, दतिया रियासतों में मुसलमान कई महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त थे। गुलाम गौसखां और दोस्तखां महारानी लक्ष्मीबाई के प्रसिद्ध गोलंदाज थे। बजीर खां झाँसी में घोड़ों का वैद्य था। लोहागढ़ संग्राम में हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान सिपाहियों का योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है।

रज्जब बेग बखानिये, मल्ल–जुद्ध जिहि कीन।
पकर शत्रु के टेंटुवा, डार खास में दीन।।
रज्जब ने उठ कमर में, अपनी कसी कटार।
हिंदूपति के सामनें, आकैं करी जुहार।।
छह पठान साबित कटे, नगर लुहारी खेत।
जाफर खां औ नूरखां, मिर्जा जस के हेत।।
संजा होतन बंद भओ, युद्ध फिरे सब ज्वान।
रज्जब नें तब आनकर, मांके परसे पान।।

हिन्दू और मुसलमानों की जन्मभूमि यह भारत वर्ष ही रहा है, फिर उनमें विभेद कैसा ? चंदेल काल से लेकर आज तक उनमें पारस्परिक प्रेम और सहानुभूति की भावना रही है। नेताओं की छिछली स्वार्थ नीति के कारण आज उनके दिलों में गहरी दरारें पड़ गई हैं।

सामाजिक एकता– जातियाँ सामाजिक विविधता की परिचायक हैं। वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत अनेक जातियों और उपजातियों में विभक्त थे। उस संघर्ष काल में उच्चवर्ग के साथ–साथ सामाजिक सेवकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्थायित्व में रही। बुंदेली रासो काव्यों में राजनैतिक संकट के समय इस वर्ग की सक्रियता दिखाई देती रही है। जरा देखिये रासों की इन पंक्तियों में–

लपट झपट कैं कुरिया धाये, गहि कठिन कृपान।
समरा दै–दै गारी, उर मारैं बरछी तान।।
बाढ़ई हने वसूला, चीड़ारै खिरकी खान।
हनें दुहत्तू तक कैं, कांछी कुलार कंधान।।

बका बसोर चलाबैं, काटैं मूरा अनुमान।
हनैं सुनार हतौरा, खुल जाय खोपड़ा खान।।
बामन और बानियां, सब खेलैं रन चौगान।
अल्ला करैं मुसल्ला, औ तोबा करै पठान।।
राम–राम कयें हिन्दू, सब टीकमगढ़ मिजवान।।

इस रासो में वर्णित पंक्तियों को पढ़कर ऐसा लगता है कि उन दिनों काछी, कोरी, बढ़ई, बसोर और सुनार आदि राजनैतिक संघर्ष में क्षत्रियों का सहयोग देकर सामाजिक एकता और पारस्परिक सद्भाव का परिचय दे रहे थे। धर्म के प्रति उन सब में अटूट आस्था थी। अपने आराध्यों की पूजा–अर्चना के बाद ही वीर क्षत्री युद्ध में प्रयाण करते थे। रासो ग्रंथों में विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना, व्रत–उपवास, शकुन–विचार, बलि–प्रथा आदि का विधान है। कुछ प्रमुख उदाहरण प्रस्तुत हैं–

पृथ्वी कुसासन डार ऊपर, बैठकी सुचि ऊन की।
तहं दिपत आभा इंद्रते, बड़ इंद्र चप के सून की।।
अहं पाटऊ पीताम्बरी, कटि मध्य धोती धारियो।
बैठो कुसासन भूप तब, गुरू गरूण मंत्र उचारियो।
जब इष्ट–मंत्र अरिष्ट नासक, ध्यान त्रिपुटी कीजियों।
रिष पित्र रवि के हुत भूप, जला न जुली तहं दीजियों।
तरवारि पूजी प्रेम सों, हरनाम नाम उचारिकैं।
करि दीप दान सहोम कीनें, मित्त दानि सम्हारि कैं।

तब पांड़े ने जल्दी पूजा सामान मंगाय।
करा आचमन पैंले फिर हात दिये जुरवाय।

फेर प्रतिज्ञा करकैं, फिर कलस गनेस पुजाय।
पृथ्वी की कर पूजा, छैंकुर कौ जल चढ़वाय।।
फेर दूद सपरावौ, गंगा–जल नीर मंगाय।
पंचामृत चढ़ाकैं सुर, नदी नीर चढ़वाय।।
वस्त्र लपेटों ताकौ, पीछें जनेऊ पैराये।
फिर केसरिया चंदन, चांवर फिर हार चढ़ाय।।
धूप दीपकी करकैं, फिर दीनों भोग लगाय।
पान सुपारी संगै, फिर भेंट चढ़ाई ताय।।

करी आरती पीछें, परकम्मा लई दिवाय।
खंडेरा के दरसन, फिर बाई कीन्हें आय।।

लक्ष्मीबाई रासो में कविवर मदनेश ने बड़े देवी–देवताओं के साथ स्थानीय देवताओं का उल्लेख भी रासों में किया है, जरा देखिये –

हात जोर कुंजौ कहैं, भुमिया ध्याऊँ तोइ।
अब कृपाल हो बेग दै, सुक्ख दीजियौ मोइ।
जीत साहु जब ही घर आबौ, तबै गुरैबै भेंट चढ़ाबैं।
गाइ–बजाइ सती खौं पूजैं, आई सहाइ संकटैं हूजैं।
पूजा उसार आसो की करौ, कैयो विधि सें पूजा करौं।

शकुन विचार इन रासो काव्यों में विधिवत् किया गया है। शकुन–अपशकुन का विचार विधिवत करने के पश्चात् ही योद्धा गण युद्ध क्षेत्र में प्रयाण करते थे। भुजा फड़कना, नील कंठ के दर्शन, जल से भरा घड़ा, वेद पाठ की ध्वनि, चील का गुर्ज पर बैठना, मछली दर्शन, नेत्र फड़कना आदि शुभ–शकुन माने जाते हैं। सामने छींक, सियार का रास्ता काटना, कौओं का शोर, कुत्ते का कान फड़फड़ाना, बिना नहाये विप्र दर्शन, रोती हुई वृद्धा, गधे का रेंकना, खाली घट, साँप, बिल्ली का विपरीत दिशा में जाना, अपशकुन–सूचक माना जाता है। प्रायः वृद्ध लोग इन सब क्रियाओं पर विचार किया करते हैं। आधुनिक सुशिक्षित समाज इन सब पर रंचमात्र भी विश्वास नहीं करता।

धार्मिक कट्टरता– धर्म के प्रति कट्टर आस्था हिन्दू और मुसलमान दोनों में विद्यमान थी। गाय और सुअर की चर्बी से बने कारतूसों की अफवाह से हिन्दू और मुसलमान सैनिकों में विद्रोह की आग भड़क उठी थीं।

दांतन जब टोंटा दाब अही, बिगरैं गों धर्म हमार सही।
हिन्दू को गाय की आन कड़ी, उस मुसलमान को सुअर बड़ी।
जानें टोंटा में कौन चाम, दांतन सें दबबौ है निकाम।

अंत्येष्टि क्रिया का विशिष्ट स्वरूप बुंदेलखण्ड की संस्कृति का अनोखापन है। शास्त्रोक्त विधि से शव क्रिया करके अस्थि संचित करके गंगा नदी के पवित्र जल में प्रवाहित करने की परंपरा है। ग्वालियर के दौलत राव सिंधिया के फ्रांसीसी सेना नायक पीरू के साथ युद्ध करते हुए दतिया नरेश शत्रुजीत के वीरगति प्राप्त होने पर उनके उत्तराधिकारी महाराज पारीछत के द्वारा उनकी अंत्येष्टि क्रिया का उल्लेख शत्रुजीत रासो में किया गया है–

सुचि क्रिया वेद–विधि सहित कीन।
तीरथन फूल पठवाइ दीन।।

युद्धों ने सामान्य जन–जीवन को अस्त–व्यस्त कर दिया था। अपनी आन–बान की रक्षा के लिए राजाओं के द्वारा किये गये इन युद्धों से जनता को घोर संकट का सामना करना पड़ता था। शत्रु दल द्वारा खेतों को नष्ट कर देने, गाँव जला डालने, लूटपाट और मारकाट से त्रस्त समाज में अभाव, भुखमरी और महंगाई की परेशानियाँ थी। इन दीन–स्थिति का चित्रण तत्कालीन रासों ग्रंथों में किया गया है। जरा देखिये इन पंक्तियों को–

मसलत करि बाहिर कड़ें, ऊदल आल नरेस।
रइयत कहैं पुकार कैं, चौड़ं दहायव देस।।
जारे गाँव जनारि कैं, लूटीं प्रजा अचेत।
उतरों लरौ चंदेल तुम, थेरे जोरे हेत।

दलपत राव रासो में मराठों के आक्रमण से स्थिति बहुत ही भयावह हो जाती है। जरा देखिये इन पंक्तियों को–

फारे किवार धस परी भीर, लूटैं धन–दौलत धरैं चीर।
घस गये ओरछे वार टूट, तिन करी मऊ की बड़ी लूट।।

रासो ग्रंथों में लोक संस्कृति को प्रमुख स्थान

जनरूचि संस्कृति का प्रमुख अंग है। रहन–सहन, वेश–भूषा, साज–सज्जा, त्योहार तथा मेलों आदि द्वारा जन रूचि की अभिव्यक्ति होती है। सावन और दशहरा बुंदेलखण्ड की सांस्कृतिक गरिमा को अक्षुण्य रखने वाले पुण्य–पर्व हैं। महोबे के राजकवि जगनिक ने आल्हा खण्ड में कीरत सागर और मदन ताल नामक स्थानों पर भुंजरियों की लड़ाई का वर्णन किया है। युवतियों की साज–सज्जा में सांस्कृतिक स्वरूप दिखाई देता है–

सांवन कौ मास झाँसी मझार, मेला लगे तहूँ तला वार।
सिर धरैं भुंजरियां नारि वृंद, कोकिल बैनी गत चलें मंद।
तन कुंदन चंपक सों मुलाम, मृगनैनी सुक–नासिका बाम।
दुर दिव्य दुलत झूमकादार, बंदिया दिपत बेंदा लिलार।

अन्य बुंदेली आभूषणों की साज–सज्जा देखने योग्य है–

पायजेब अरु गूजरी, जैहर पायल कोय।
पाँव पैजना बीछिया, अजब अनौटा सोय।
जावक मेहंदी मसक मुख, बीरी अंजन रेख।
सुचिता सील सनेन द्वय, मृदु मुस्वयान विशेख।
मंदीरी लहंगा बसत, जरकस कौर विसाल।
कुच सरोज पर कंचुकी, सोहत शीश दुशाल।।

इन रासो काव्यों में उपलब्ध साज–सज्जा के वर्णनों में दौरियां, बंदियां, बैंदा, कर्णफूल, गलतुसी, बिचौली, गुलूबंद, बाजूबंद, दुलरी, तिलरी, सतलरी, लल्लरी, चिंचिपिटी, चंद्रहार, ककना, बंगिया, गुंज, गोप, छला, हाथफूल, करधनी, गुच्छा, पायजेब, गूजरी, पायल, पैजना, बिछिया, अजवव, अनौटा आदि आभूषणों के साथ जस्किल कोरबाला, मंदीरी, लहंगा, कंचुकी, चोली और दुशाला आदि स्त्रियों के वस्त्रों का उल्लेख है। महारानी लक्ष्मीबाई की वेशभूषा में जरतारी कोर वाली नीली साड़ी मोतियों की झालर लगी, हरे जरकस की चोली का विशेष उल्लेख किया गया है।

राजाओं और शूरवीर सरदारों की युद्ध सज्जा और वेशभूषा के अतिरंजित वर्णन भी एक ऐसी समृद्धशालिनी सांस्कृतिक परंपरा की निधि है, जिनमें उस काल में प्रचलित साज सामग्रियों, वस्त्रों और आभूषणों के कलात्मक स्वरूप को अभिव्यक्ति दी गई है। जांघिया, कमर में आंकड़ा, दस्तानें, कलाई में पट्टे, पैरों में मखमल के जूतों पर पिस्तानें युद्ध क्षेत्र में रक्षा की दृष्टि से पहने जाते थे। धोती, जरकसी, फेंट, कसीदाकारी वाली कतैया, दुपट्टा, सूथना–पान, पैंच, कलंगी, बगली आदि पुरुषों की पोशाक में सम्मिलित थे। गुंज, गोप, कंठा, मोतियों का हार, कानों में चौकड़ा, मुदरी, छला, तोड़ा कंकन, बजुल्ला, बाजूबंद, सेली, पबाई आदि पुरुषों के आभूषणों का उल्लेख भी रासो ग्रंथों में किया गया है।

पारीछत रासो और लक्ष्मीबाई रासो में हाथी, घोड़ों, बैलों, ऊँटों की सजावट के वर्णनों में मुगलकालीन बुंदेलखण्ड की शान–शौकत व कला प्रियता के रूप उजागर हुए हैं। हाथियों की सज्जा सामग्री कानों में कंखरा, मोतियों के गुच्छे, कंठश्री हार, चम्पाकली की माला, केले का हार, सतलरी सांकल, ताबीज, अठपहलू, रबादार चूड़ियाँ, गजदंतों पर सोने के उमेठा, फानूस लगी पैंजना, तोड़ा, पायजेब, रेशमी झूल, दुमची, दुशाला, रत्नजटित हौदा आदि। घोड़ों की साज–सज्जा हेतु कलंगी, जरकसी, मुहरा, जरतारी पलान, कंठ के केला और भिण्डी के आकार की माला, जड़ाऊ मुहरों के

ताबीज, वक्ष पर पान आकार का हार, पुट्ठों पर साम, पैजना तथा सुम्मों पर छड़ें आदि सुशोभित हुआ करती थीं। सज्जा–सामग्री के अतिरिक्त रण कौशल और अस्त्र–शस्त्रों के वर्णन भी उस काल की संस्कृति के प्रमुख अंग हैं।

शत्रुजीत रासो में –

जहाँ भारी भुज दंडन, सम्हार अस्त्रधारी।
शत्रुजीत छत्रधारी, झुक–झारी किरपांन।

लक्ष्मीबाई रासों में –

वीर बिचलौ जरैया, झुक झारी है किरपांन
वीरबाई की सवाई, झुकि झारी है किरपांन।

अंतिम टेकवाली किरपांन छंदों में दतिया नरेश शत्रुजीत महारानी लक्ष्मीबाई के एक सरदार जरैया तथा महारानी लक्ष्मीबाई के कृपाण कौशल का वर्णन किया गया है। रासो काव्यों में वर्णित हथियारों में कटार, दुधारा, तलवार, ढाल, बिछुवा, छुरी, सेंतीं, सेंफ, बंदूक, हतनाल, करनाल, घुरनाल, सुतरनाल, तोप, तुपक, जमदाद, भाला, बरछी, तेगा, दुनाली, कमान, निषंग, नेजा, रहकुला, सांग, गुर्ज, शमशेर, सिरोंही, तमंचा, किर्च, फरसा, गदा, परिध पट्टिस, त्रिशूल, भिन्दपाल, मुसल, गुप्ती, बघनखा, जंजीर का उल्लेख है। तत्कालीन बुंदेली समाज में जातियों की अपनी–अपनी परम्पराएँ थीं। शासन की ओर से उन दिनों अनेक पद निर्धारित थे, जिनमें मनसबदार, दीवान, फौजदार, खजांची, कोतवाल, नकीब, मुसाफ, बखशी, तोपची, मुखिया, सिपाही, कासिद और हरकारा आदि प्रमुख थे।

चरित्र लोक गाथाएँ– लोक गाथाओं के प्रमुख प्रकारों में एक 'चरित्र' काव्य भी है, जिनमें आदर्श और अनुकरणीय कथानक प्रस्तुत किया जाता है। अपभ्रंश साहित्य के जैन काव्य में इसका प्रारंभिक रूप दिखाई देता है। जो 'चरिउ' नाम से प्रसिद्ध रहे हैं। जैसे 'पउम चरिउ, जसहर चरिउ, णाय कुमार चरिउ' आदि जैन साहित्य के प्रमुख ग्रंथ हैं। ये परंपरा अपभ्रंश से संस्कृत, हिन्दी और बुंदेली साहित्य तक संचालित रही है। जैसे भवभूति का 'उत्तर रामचरितम्, बाबा तुलसी का रामचरितमानस, प्रहलाद चरित्र, ध्रुव चरित्र, सती अनुसुइया और सुलोचना चरित्र विशेष प्रसिद्ध और बहुचर्चित है।

(अ) चरित्र काव्य का स्वरूप– मानव जीवन में चरित्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि चरित्र को मानव–जीवन की रीढ़ कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति

नहीं होगी। हमारी यह भारतीय परंपरा है कि चरित्रवान व्यक्तियों का सर्वत्र सम्मान होता है। समाज में उन्हें उच्च स्थान प्रदान किया जाता है। जीवन के समस्त गुणों, ऐश्वर्यों, समृद्धियों और वैभवों की आधार शिला चरित्र ही है। यदि हम सच्चरित्र हैं तो संसार की सारी विभूतियाँ, बल–बुद्धि, वैभव हमारे चरणों में लोटने लगते हैं। यदि हमारा जीवन दुश्चरित्रता और दुराचारों का घर है तो हम समाज में निन्दा और तिरस्कार के पात्र बन जाते हैं। चरित्रहीन व्यक्ति स्वयं व अपने परिवार को पतन के मार्ग की ओर ले जाता है। दुश्चरित्र व्यक्ति अपने समाज के लिए अभिशाप और सच्चरित्र व्यक्ति वरदान सिद्ध होता है। दुश्चरित्र का जीवन तो अंधकार पूर्ण होता है, जबकि सच्चरित्र व्यक्ति प्रकाश के उज्जवल वातावरण के मध्य विचरण करता है।

समाज को उत्तम चरित्र की शिक्षा देने के लिए वैदिक युग से लेकर आज तक चरित्र–काव्य की सृष्टि हो रही है। चरित्र काव्य के अन्तर्गत महापुरुषों के सद्‌गुणों का विवेचन किया जाता है, उन्हें एक ऐसे आदर्श रूप में प्रस्तुत किया जाता है जो सारे समाज के लिए प्रेरक बन जाते हैं। वैसे चरित्र अच्छी आदतों का समूह माना जाता है। 'Charactor is the bandle of good habits.' एक स्थल पर किसी एक अंग्रेज विद्वान ने कहा है– 'Health is lost something is lost wealth is lost nothing is lost. charactor is lost every thing is lost.' मनुष्य को संस्कारवान बनाने और उनमें अच्छी आदतों का समावेश करने के लिए प्राचीनकाल से लेकर आज तक चरित्र काव्य लिखा जा रहा है। सारा का सारा संस्कृत साहित्य चारित्रिक विशेषताओं से भरा पड़ा है। नीति साहित्य चरित्र काव्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। वैदिक मंत्रों में हमारे ऋषियों ने भगवान से प्रार्थना करते हुए कहा है –

असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योंमा अमृतं गमय।

अर्थात् हे भगवान! मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलें। अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलें। मृत्यु से अमरता की ओर ले चलें। असत्य और अंधकार का अर्थ चरित्र–हीनता ही है। सच्चरित्र अपने कर्मों से इसी भूमि पर स्वर्ग का निर्माण करता है। किन्तु चरित्रहीन अपने कुकृत्यों से इस पवित्र भूमि को नरकमय बना देता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी गुप्त ने सदाचार को स्वर्ग और दुराचार को नरक मानते हुए कहा हैः–

खलों को कहीं भी नहीं स्वर्ग है।
भलों के लिए तो यहीं स्वर्ग है।

सुनों स्वर्ग क्या है? सदाचार है।
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है।
नहीं स्वर्ग कोई धरावर्ग है।
जहाँ स्वर्ग का भाव स्वर्ग है।
सदाचार ही गौरवागार है।
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है।

सच्चरित्र बनने के लिए मनुष्य को सुशिक्षा, सत्संगति और स्वानुभव की आवश्यकता होती है। शिक्षा से मनुष्य की बुद्धि के कपाट खुल जाते हैं। अतः सच्चरित्र बनने के लिए अच्छी शिक्षा आवश्यक है। शिक्षा और सत्संगति भी चरित्र काव्य के प्रमुख अंग हैं। पंडित विष्णु शर्मा कृत 'पंचतंत्र' की सम्पूर्ण कहानियाँ चरित्रकाव्य के उत्तम उदाहरण हैं। भर्तृहरि का नीतिशतक, बेताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी आदि ग्रंथ चरित्र निर्माण की प्रेरणा देते हैं। सच्चरित्रवान के लिए शिक्षा से भी अधिक आवश्यक है सत्संगति। **सत्संगति कथय किं न करोति पुंषां** बाबा तुलसी भी इसकी पुष्टि मानस में कर गये हैं– **सठ सुधरहिं सत्संगति पाई, पारस परस कुधातु सुहाई।** पारस पत्थर का स्पर्श करने से लोहा भी सोना हो जाता है। उसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति भी सत्संगति प्राप्त करके अपने आप चरित्रवान बन जाते हैं–

कीटोऽपि सुमनः संगति आरोहति सतां शिराः,
सत्संगति कथय किं न करोति पुंषाम्।

चरित्र काव्य के अन्तर्गत महापुरुषों के आदर्श चरित्र, उनके उत्तम कार्यों, समाजोपयोगी परोपकार वृत्तियों का विधिवत् चित्रण किया जाता है। यदि इन्हें मार्ग दर्शक काव्यग्रंथ कहा जाये तो उचित ही होगा। बुंदेलखण्ड में अनेक सतियों, देवी–देवताओं और महापुरुषों के चरित्र प्रधान कथानक प्राप्त होते हैं, जिनसे नर–नारियों को उत्तम चरित्र की शिक्षा मिलती है।

(ब) चरित्र काव्य का महत्त्व एवं स्थान– अधिकांश लोक गाथाएँ ऐतिहासिक आधार भूमि पर निर्मित हुईं हैं। वैसे ये लिखित रूप में बहुत ही कम प्राप्त हुई हैं। ये लोक मुख में ही सुरक्षित रही हैं। इसी कारण से इन्हें 'श्रुति' की संज्ञा दी गई है। लोक मुख से सुनकर लोक गायक इन्हें कंठस्थ करते रहे हैं, जो किसी न किसी रूप में आज भी सुरक्षित हैं। अनुकरण अपूर्णता के कारण उनमें कुछ न कुछ त्रुटियाँ अवश्य होती रहीं हैं, जिसके कारण उनके मूल रूप में

काफी परिवर्तन हो गया है। कुछ नवीन घटनाओं का भी उनमें समावेश हो गया है। इस कारण से इनकी ऐतिहासिकता में संदेह होने लगा है।

रासो, राछरे, पंवारे, साके और चरित्र लोक गाथाओं के प्रमुख रूप हैं। रासो, राछरे और पंवारे वीर, श्रृँगार और भक्ति के समन्वित रूप हैं। 'साको' में राजाओं की प्रशस्ति का गायन किया गया है। किन्तु 'चरित्र' आदर्श प्रधान महापुरुषों की लोक गाथाएँ हैं। लोक गाथाओं में 'चरित्र' नाम की गाथाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। चरित्रवान व्यक्तियों के उत्तम कार्यों का वर्णन करके समाज–सुधार में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। सती सुलोचना, अहिल्याबाई, अनुसुइया, सीता, सावित्री आदि नारियों के पातिव्रत और सतीत्व के उदाहरण अपने समक्ष हैं। भाषा, भाव और विषय की दृष्टि से ये मूल्यवान हैं।

(स) चरित्र काव्य की प्रमुख विशेषताएँ– चरित्र काव्य भारतीय संस्कृति, धर्म और आदर्श का प्रतीक हैं। इनमें भारत के महापुरुषों, देवी–देवताओं और सतियों के सदाचार के उदाहरण भरे पड़े हैं। बुंदेली चरित्र काव्य बुंदेलखण्ड की चारित्रिक विशेषताओं से आपूरित हैं। उन पर बुंदेली माटी का प्रभाव दिखाई देता है, चरित्र काव्य की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं –

(1) लोक भाषा का प्रयोग– वैसे संपूर्ण भारत के महापुरुष और देवी–देवता एक ही हैं। कुछ सतियाँ और देवी–देवता स्थानीय ही होते हैं, जिनकी स्थान विशेष पर पूजा–अर्चना की जाती है। हालांकि धर्म और संस्कृति में समानता है, किन्तु उन सबकी अभिव्यक्ति अपनी–अपनी है। बुन्देलखण्ड का समस्त चरित्र काव्य बुंदेली भाषा में ही प्राप्त होता है। उनमें बुंदेली शब्दावली, कहावतों और मुहावरों का प्रयोग किया गया है। वे अन्य भाषाओं के प्रभाव से अछूती हैं। लोकभाषा इतनी सहज और बोधगम्य होती है कि सुनते ही लोग प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। उनका प्रभाव सीधा हृदय पर पड़ता है। उनका अर्थ समझने के लिए मानसिक व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं होती। लोक भाषा और लोक–ध्वनियों की सहजता के कारण ये इतनी अधिक लोकप्रिय हैं। एक चरित्र लोकगीत की सरल और सहज पदावली देखने योग्य है। जरा देखिये सीता जी कितनी सहजता से कह रही हैं –

है पतरी कमर नाजुक बइयाँ, धनुष कैसें टोरौ सइयां।
कोमल गात श्री भगवान,
कर में सोहै लाल कमान,

हारे बड़े–बड़े बलवान,
काहू जोधा सों धनुष तनत नइयाँ, धनुष कैसें टोरौ सइयां।
हारी बड़ी–बड़ी सब सेना,
जो कउं उनसें धनुष उठेंना,
खाकैं जहर मरें मोई बेंना,
देवर लक्षमन की उम्मर लरकइयाँ, धनुष कैसें टोरौ सइयां।

राजा मधुकरशाह की महारानी गणेशकुँवरि की गाथा बुंदेलखण्ड की एक लोक प्रिय चरित्र गाथा है। कथानक तो आकर्षक और प्रभावकारी है ही, किन्तु भाषा की सहजता और सरस पदावली के कारण यह अधिक लोकप्रिय बन गई है। जरा देखिये तत्संबंधी लोकगीत की एक पंक्ति को–

राजाराम खौं लैंन गई गनेशबाई, धन्न पूरब पुन्न की कमाईं।

लोक भाषा के माधुर्य और भाषा की सहजता के कारण आज शिक्षित और अशिक्षित जन समूह इन्हें बड़े ही मनोयोग से सुनते और सराहते हैं।

मौखिक परम्परा– अधिकांश लोक साहित्य मौखिक ही हैं। लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं के इने–गिने संकलन प्राप्त होते हैं। लोक साहित्य का अधिकांश भाग आज भी लोक मुख में सुरक्षित है। एक दूसरे से सुनकर लोग इसे कंठस्थ करते रहे हैं। अनुकरण अपूर्णता के कारण उनमें बहुत कुछ परिवर्तन भी होता रहा है। इसी कारण से वे अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं होती हैं। लोकगीत तो समय–समय पर गाये जाते हैं और लोक कथाएँ ग्राम के वयोवृद्ध लोग यदा–कदा सुनाया करते हैं। किन्तु लोक गाथाएँ लिखित रूप में बहुत ही कम प्राप्त होती हैं। चरित्रकाव्य लोक गाथा का ही एक प्रकार है। इसकी परंपरा मौखिक ही है। बुन्देलखण्ड की नारियाँ इन चरित्र गीतों को विशेष अवसरों पर गायन किया करती हैं। कुछ साहित्य–प्रेमियों ने इस प्रकार के लोकगीतों को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है। किन्तु यह कार्य नहीं के बराबर है। अब धीरे–धीरे इस ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हो रहा है। थोड़ा सा ध्यान शोध–कार्य के द्वारा दिया जाने लगा है। आधुनिक चमक–दमक भरे वातावरण के बीच निवास करने वाली नारियाँ भला इस सांस्कृतिक विरासत को कब तक संभाल सकती हैं। दूरदर्शन और सिने संसार ने उनके मस्तिष्क को विकृत कर दिया है। यदि यही स्थिति रही तो एक न एक दिन ये सब विलुप्त हो जायेगी। अतः इन सबको लिपिबद्ध करना आवश्यक है।

आदर्श प्रधानता– भारतीय संस्कृति की व्यापकता और उदार भावना के कारण भारत को विश्व गुरु माना जाता है। आदर्श की स्थापना के लिए ही इन लोक गाथाओं की संरचना हुई है। इनमें भारतीय महापुरुषों के महान चरित्र और उच्चादर्श के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। ये जन–जन के मार्ग दर्शक हैं। प्रहलाद, ध्रुव और मोरध्वज के चरित्रों में भक्ति–भावना और व्रत की दृढ़ता दिखाई देती है। सतियों में पातिव्रत धर्म और अपनी आन–बान की रक्षा के भाव उनमें दिखाई देते हैं। कुछ महापुरुषों में पितृ भक्ति और कुछ में राष्ट्रीय भावना के दर्शन होते हैं। सच पूछा जाये तो इन सबका मूलाधार आदर्श ही हैं।

लोक संगीतात्मकता– बुंदेली लोक गाथाएँ, बुंदेली लोक ध्वनियों में आबद्ध हैं। चरित्र काव्य तो लोकगीतों में ही हैं। अधिकांश चरित्र गाथाएँ गारी, सैर, ख्याल और लावनी लोकगीतों में ही प्राप्त होती हैं। बुंदेली–बालाएँ बड़े ही चाव से समय–समय पर इनका गायन किया करती हैं। कुछ समय पूर्व नारियाँ अपने–अपने हाथों से पत्थर की चक्की को चलाया करती थीं। अपनी थकान को मिटाने के लिए लोकगीतों को गाया करती थीं। उन दिनों बड़ा ही माधुर्य और आकर्षण होता था उनके गीतों में। प्रातःकाल सारे गाँव में लोक संगीत के स्वाभाविक स्वर गूँजते रहते थे। उस समय उन्हें न वाद्ययंत्रों और न शास्त्रीय संगीत की आवश्यकता होती थी। उनकी चक्की ही वाद्य–यंत्र और उनके कंठों से मधुर संगीत के स्वर स्वतः ही झंकृत होते रहते थे। कहा भी जाता है कि 'मन में उठी हुलक, का खंजरी का ढुलक' वैसे भारतीय संस्कृति तो संस्कार प्रधान तो है ही। विविध संस्कारों के अवसर पर विविध प्रकार के चरित्र गीत गाने का प्रचलन है। विवाह के अवसर पर हरदौल के गीत, सीता, सावित्री और अनुसुइया के गीत और श्रावण मास में चंद्रावली के गीत गाये जाते हैं। इस क्षेत्र का कोई भी संस्कार लोकगीत के बिना अपूर्ण माना जाता है। लोक गीतों में चरित्र गीतों का प्रमुख स्थान है। हर चरित्र लोक गीत की ध्वनियाँ अलग–अलग होती हैं और उनके साथ बजाये जाने वाले वाद्य यंत्र भी अलग–अलग हैं। उनके गायन का समय और अवसर निश्चित है, किन्तु वे सब लोक ध्वनियाँ अब लुप्त सी होने लगीं हैं। इन्हें सुरक्षित रखने के लिए उन सबका ध्वन्यांकन करना आवश्यक है।

प्रभावोत्पादकता– लोक संगीत और लयात्मकता के कारण इनका प्रभाव मानव ह्रदय पर सीधा पड़ता है। चाहे कितना ही नीरस और रूक्ष व्यक्ति क्यों न हो, वह इन्हें सुनकर प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। लोक भाषा और लोक संगीत ये दोनों ही इतने महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं, जो पग–पग पर मनुष्य को आकर्षित करते हैं। मनुष्य इन्हें

सुन–सुनकर आनंदित तो होता ही है, साथ ही अपने जीवन में इनसे प्रेरित होकर अच्छी आदतों और सुविचारों का निर्माण करता है, जो मनुष्य के चरित्र निर्माण में सहायक होते हैं। चरित्र मानव जीवन की रीढ़ है। मुख्य आधार है। रीढ़ के बिना शरीर व्यर्थ है। उसी प्रकार चरित्र के बिना मानव जीवन व्यर्थ है। इस मूल मंत्र का स्मरण करने वाले लोग महान बनकर संसार में यश अर्जित करते हैं। हर महापुरुष के जीवन की यह एक मूल कुंजी है। इसका प्रभाव भी अमिट है।

(द) चरित्र काव्य के प्रमुख भेद– यदि सच पूछा जाये तो संपूर्ण चरित्र काव्य, आदर्श और धर्म की आधारशिला पर अवस्थित हैं। उनमें भारतीय संस्कृति के प्राण उच्चादर्श के दर्शन होते हैं। भारत के महापुरुष, चरित्रवान, परोपकारी और उदार मना हुए हैं। उनके उन महान चरित्रों के कारण ही भारत को विश्वगुरु की उपाधि से विभूषित किया गया है। चरित्र काव्य में देश के चरित्रवान महापुरुषों के चरित्रों का ही चित्रण है। उनमें से अधिकांश महापुरुष ऐतिहासिक है। कुछ गाथाएँ काल्पनिक हैं। कुछ सामाजिक किन्तु उन सबके मूल में धर्म ही विद्यमान है। सम्पूर्ण चरित्र काव्य को निम्नलिखित भेदों में विभक्त किया जा सकता है– ऐतिहासिक चरित्र काव्य, धार्मिक चरित्र काव्य, सामाजिक चरित्र काव्य, काल्पनिक चरित्र काव्य।

(1) ऐतिहासिक चरित्र काव्य– अधिकांश चरित्र गाथाएँ इतिहास पर आधारित हैं। उनमें इतिहास प्रसिद्ध महापुरुषों के ही चरित्र–चित्रित किये जाते हैं। कुछ गाथाएँ महाभारत कालीन हैं और कुछ पौराणिक और कुछ मध्यकालीन इतिहास पर आधारित हैं। सीता, सावित्री, अहिल्याबाई और सती अनुसुइया के नाम से प्रचलित चरित्र काव्य पौराणिक हैं। इनमें से कुछ कथानक रामायण कालीन हैं। उपर्युक्त नारी पात्रों के अतिरिक्त ध्रुव, प्रहलाद, मोरध्वज और अजयपाल की पुराणों में वर्णित कथाएँ हैं, जो आगे चलकर चरित्र काव्य का रूप धारण कर लेती हैं। चंद्रावली, मथुरावली और हरदौल चरित्र मध्य युगीन गाथाएँ हैं। ये सब मुगलकाल से संबंधित हैं। रामायण, महाभारत, पुराण प्रागैतिहासिक ग्रंथ हैं। मध्ययुग का तो बहुचर्चित और प्रसिद्ध इतिहास है ही। ये गाथाएँ मौखिक रूप में प्रचलित रही हैं। कालांतर में उनके पात्रों और घटनाओं में परिवर्तन हो जाता है। कुछ पुराने पात्र तो पूरी तरह से विलीन हो जाते हैं और कुछ नवीन पात्र अपने आप जुड़ते चले जाते हैं। उनकी वर्तमान स्थिति को देखकर कुछ विद्वान उनकी ऐतिहासिकता में संदेह करने लगते हैं। कुछ लोग तो उन्हें कोरी कल्पना की उड़ान ही मानने लगते हैं। इन लोक गाथाओं की यही स्थिति है, लोक गाथाओं में पात्रों के नाम और घटनाओं का स्पष्ट उल्लेख होता है। लोकगाथाओं की

स्थिति ठीक इनसे विपरीत है। पात्र और घटनाएँ केवल हवा में ही तैरती हैं। उदाहरण स्वरूप–'एक नगर में एक राजा था। जिसकी तीन रानियाँ थी, जिनसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे।' किस नगर का कौन राजा था? रानियों और राजकुमारों के क्या नाम थे? इन सब प्रश्नों के उत्तर हवा में तैरते हैं। कभी–कभी ऐसी ही स्थिति ऐतिहासिक लोकगाथाओं की भी होती है। उनमें ऐतिहासिक तथ्य खोजने में बहुत श्रम करना पड़ता है कुछ चरित्र गाथाएँ नायकों के नाम पर हैं, जो प्रायः इतिहास प्रसिद्ध होते हैं।

(2) धार्मिक चरित्र काव्य– गाथाओं का मूल उद्‌गम स्थल तो धर्म ही है। वेद, पुराण और महाभारत कालीन गाथाओं की आधार भूमि तो धर्म ही है। यही कारण है कि ब्रज लोक साहित्य के सुप्रसिद्ध अध्येता डॉ. सत्येन्द्र ने गाथा के प्रकारों में धर्म–गाथा को ही प्रमुख स्थान दिया है। सच पूछा जाये तो भारतीय संस्कृति का प्राण धर्म ही है। भारतीय संस्कृति के मूल ग्रंथ वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, रामायण, महाभारत धार्मिक ग्रंथ हैं। मोरध्वज, ध्रुव, प्रहलाद, श्रवणकुमार, हरिश्चंद्र, अहिल्याबाई, सावित्री, अनुसुइया, सुलोचना नाम के चरित्र काव्य ऐतिहासिक होते हुए भी धार्मिक हैं। मध्य–कालीन चरित्र काव्यों में मधुकरशाह, रानी गणेश कुँवरि नाम की गाथाएँ धर्म–प्रधान हैं। यही कारण है कि आस्थावान और धार्मिक व्यक्ति को ही चरित्रवान कहा गया है। जो व्यक्ति अधार्मिक और कुत्सित कार्यों में रत है, उन्हें राक्षस और निन्दनीय कहा गया है। मोरध्वज, ध्रुव और प्रहलाद के चरित्रों में ईश्वर–भक्ति की दृढ़ता दिखाई दे रही है। राजा हरिश्चंद्र आजीवन सत्यता के मार्ग पर डटे रहे और सर्वस्व नष्ट होने के बाद भी अपना प्रण भंग नहीं होने दिया। वे हर कसौटी पर खरे उतरे। श्रवण कुमार की पितृभक्ति अनुपम और अनुकरणीय है। जो हर पुत्र को पितृ–भक्ति का पाठ पढ़ाता है। अहिल्याबाई, सावित्री, अनुसुइया और सुलोचना ऐसी अमर सतियाँ हैं, जिन्होंने अपने पातिव्रत धर्म के बल पर संसार को चमत्कृत कर दिया था। ओरछेश महराजा मधुकरशाह कृष्ण भक्त थे और उनकी महारानी गणेश कुँवरि रामभक्त थीं। अपने धर्म और दृढ़ भक्ति की टेक रखने के लिए महारानी श्री रामलला को अयोध्या से ओरछा ले आईं थीं। आज भी ओरछा में राम–राजा का मंदिर विद्यमान है। उन्हीं रानी गणेश कुँवरि के द्वारा लाई गई रामराजा की भव्य प्रतिमा। इस भारत के धर्म प्रधान लोक–जीवन में इस प्रकार की अनेक चरित्र गाथाएँ प्राप्त होती हैं।

(3) सामाजिक चरित्र काव्य– साहित्य समाज का दर्पण है। समाज के सम्पूर्ण रीति–रिवाजों और क्रिया कलापों का स्वरूप साहित्य–रूपी दर्पण में दिखाई देता है। साहित्यकार समाज से अछूता नहीं रह सकता, क्योंकि वह समाज के बीच निवास करता है। तत्कालीन समाज का प्रभाव उसके हृदय पर पड़ना स्वाभाविक है।

बाबा तुलसी मुगल काल में अवतरित हुए थे। मुगलकालीन समाज की दुर्दशा उनसे देखी नहीं गई और उन्होंने निर्भीक होकर एक स्थल पर मानस में कह ही दिया– **'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवस नरक अधिकारी'** ये मुगलकालीन सत्ता के गाल पर एक करारा तमाचा था। रामराज की परिकल्पना उसी का परिणाम है। समाज के चरित्र में अनेक बार उतार–चढ़ाव आये और कभी–कभी तो समाज का भारी पतन हुआ है। भूले–भटके समाज को सत्पथ प्रदर्शन करने के लिए लोक कवियों ने सामाजिक चरित्र काव्य की रचना की थी, जिनमें सामाजिक सम्बन्धों और मानवीय गुणों पर विशेष जोर दिया गया है। माता–पिता और पुत्र, देवर–भाभी, पति–पत्नी, भाई–बहिन और भाई–भाई के पारस्परिक प्रेम सम्बन्धों पर आधारित चरित्रों की रचना की गई थी। जिन्हें सुनकर पथ–भ्रष्ट मानव समाज सत्पथ की ओर अग्रसर रहा है। श्रवण कुमार की मातृ–पितृ भक्ति तो प्रसिद्ध ही है। श्रवण कुमार के माता–पिता अंधे थे। उनकी पत्नी कर्कशा और दुष्ट स्वभाव की थी। सास–बहू की अनबन तो लोक प्रचलित ही है। वह अपने सास–ससुर को बहुत कष्ट देती थी। उसने कुम्हार से एक मुँह और दो पेट वाली हण्डी बनवाई थी। वह एक पेट में मट्ठे की खट्टी महेरी और दूसरे पेट में मीठी खीर पकाती थीं। भोजन परोसते समय अंधे सास–ससुर को खट्टी महेरी और अपने पति को खीर परोसकर खिलाती थी। इस तरह के दुर्व्यवहार का पता जब उसके पति श्रवण कुमार को लगा, तो वे अपने मन में बहुत दुखी हुए। वे अपने अंधे माता–पिता को कांवर में बैठाकर और उस काँवर को कंधे पर लटकाकर तीर्थाटन के लिए निकल पड़े। अंत में राजा दशरथ के बाण से आहत होकर स्वर्ग सिधार गये।

देवर–भाभी के प्रेम से तो सारा समाज परिचित ही है। उनमें मनोविनोद और हास–परिहास भी होता है। किन्तु लाला हरदौल और भाभी पार्वती का प्रेम–सम्बन्ध तो विशुद्ध और निष्कलुष था, किन्तु कुछ दुष्ट लोगों ने उनके प्रेम पर लांछन लगाने का प्रयास किया। लाला हरदौल ने अपनी आन–बान की रक्षा हेतु विष मिश्रित भोजन करके अपने प्राण त्याग दिये थे। इनसे उत्तम चरित्र और क्या हो सकता है? चंद्रावलि ने मुगल आततायियों से बचने के लिए तंबू में आग लगाकर प्राण त्याग दिये थे। संपूर्ण नारियों के समक्ष उच्चादर्श का परिचय दिया था। कुछ ऐसी सती नारियों के उदाहरण समक्ष हैं, जिन्होंने अपने अंधे, कुष्ठ रोगी और अशक्त पतियों की सेवा में अपना सर्वस्व जीवन व्यतीत कर दिया था। इस प्रकार की चरित्र गाथाओं को सुनकर मनुष्य जाने–अनजाने प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। धर्म–कर्म, आचार–विचार, व्यवहार, रहन–सहन, खान–पान आदि संस्कृति के प्रमुख अंग होते हुए समाज से जुड़े हैं। इनका कार्य क्षेत्र तो समाज ही है। इन्हें समाज से कैसे अलग किया जा सकता है।

काल्पनिक चरित्र काव्य– भारतीय चिंतन और दर्शन तो विश्व प्रसिद्ध ही है। इसी महान चिंतन के कारण भारत को विश्व गुरु माना गया है। इस पावन वसुन्धरा पर अवतरित होने वाली नारियों, ऋषि, मुनियों, मनीषियों ने जंगलों में एकांत में निवास करते हुए एक उत्तम समाज की परिकल्पना की थी। गीताकार की परिकल्पना कितनी सार्थक और लोकोपकारी है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुख भागभवेत।

वेद, पुराण, उपनिषद और ब्राह्मण ग्रंथों का सम्पूर्ण अध्यात्म चिंतन समाज कल्याण के लिए ही था। उन्होंने जंगल में ही बैठकर एक उत्तम समाज की परिकल्पना की थी। वे एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे, जो साधन सम्पन्न और आदर्श समाज हो। आदर्श प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने अपाला, आत्रेयी, पुरूरवा, उर्वशी, शुनःशेप, नचिकेता और उद्दालक जैसे कथा चरित्रों की सृष्टि, लोकभाषा, लोकजीवन और लोक संस्कृति का बाना पहनकर इस प्रकार के अनेक काल्पनिक चरित्र गढ़े गये हैं, जो इतिहास को थोड़ा बहुत स्पर्श करते हुए पूर्णतः काल्पनिक हैं। रानी सारंगा, पद्मावती, चंपावती आदि गाथाएँ कल्पना की अनावश्यक उड़ानों के कारण उनमें वर्णित अनेक घटनाएँ उपहासास्पद बन गईं हैं। फिर भी उनका उद्देश्य महान है।

(घ) चरित्र काव्य की परंपरा– चरित्र काव्य की परंपरा तो बहुत प्राचीन है। वैदिक युग से लेकर मध्ययुग तक अनेक चरित्र ग्रंथों की रचना की गई है। कुछ चरित्र आधुनिक युग में भी लिखे जा रहे हैं, किन्तु उन सबका स्वरूप प्राचीन परंपरा से कुछ हटकर है। उस परंपरा को निम्नलिखित युगों के आधार पर ज्ञात किया जा सकता है–

वैदिक युग– चरित्र काव्य का प्रारंभिक रूप हमें वैदिक साहित्य में दिखाई देता है। ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वेदों के साथ ही चरित्र काव्य का शुभारंभ हुआ था। चरित्र काव्य से सम्बन्धित अनेक सूक्त ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं।

सरमापाणि संवाद में ऋग्वेदीय युग के समाज की झांकी है। ऋग्वेद में अपाला, आत्रेयी और शुनःशेप के चरित्र प्राप्त होते हैं। उपनिषद और ब्राह्मण ग्रंथों में नचिकेता, महर्षि च्यवन, भार्गव, उद्दालक और मनु–सतरूपा के चरित्रों की झाकियाँ दिखाई देती हैं। वेदों में वर्णित चरित्र बीज रूप में हैं। वे सब प्रस्फुटित होकर उपनिषद और ब्राह्मण ग्रंथों में पुष्पित, पल्लवित और फलित हुए हैं।

रामायण युग– रामायण तो चरित्रों का भण्डार रही है। इस ग्रंथ में राम के धीरोदात्त चरित्र के अतिरिक्त लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के उत्तम चरित्रों की झाकियाँ दिखाई देती हैं। हनुमान, सुग्रीव, अंगद तो चरित्रवान थे ही, बालि, रावण, कुंभकरण आदि दुश्चरित्र पात्रों की दुर्गति प्रदर्शित की गई है। चरित्रहीनता के कारण रावण का तो सर्वनाश हो ही गया था। बालि का वध भी भगवान राम ने उसकी चरित्रहीनता के कारण ही किया था। बाबा तुलसी ने मानस में स्पष्ट ही लिखा है। जब राम ने बालि का वध किया तो मरते समय बालि ने राम से पूछा–**'मैं बैरी सुग्रीव प्यारा, कारन कवन नाथ मोहिं मारा'** राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम थे ही। उन्होंने बालि को समुचित उत्तर दिया–

अनुज वधू भगिनी सुतनारी, सुनि सठ ये कन्या सम चारी।
इन्हें कुट्टष्टि बिलोकहिं जोई, ताहि बधे कछु पाप न होई।।

समुचित उत्तर सुनकर बालि चुप रहकर प्राण त्याग देता है। सीता चरित्र की साक्षात् मूर्ति थी और कैकेयी चरित्रहीन महान और निन्दनीय। अपने पुत्र भरत की ललकार सुन कर वे स्तब्ध रह गईं और उन्हें अपनी भूल का आभास होने लगा। भरत ने ननिहाल से लौटकर माँ से कहा–

वर मांगत तोहि भई न पीरा, जरी न जीभ परे न कीरा।

इसी ग्रंथ में सीताचरित्र, अनुसुइया चरित्र, हनुमत चरित्र और विभीषण चरित्र के दर्शन होते हैं। हर अंचल के लोक साहित्य में रामायण पर आधारित चरित्र काव्य निर्मित हुए हैं। बुंदेलखण्ड में तो इस प्रकार के चरित्र ग्रंथों की अधिकता है।

महाभारत युग– महाभारत तो चरित्र काव्यों का महासागर ही है। महाभारत कालीन मूल्यवान पात्रों का चरित्र–चित्रण करने के लिए संस्कृत में महाकाव्यों और नाटकों की रचना हुई थी, जिनमें नैषधीय चरित्र, नल–दमयंती चरित्र, किरातार्जुनयम, वेणीसंहार और मुद्रा राक्षण आदि प्रमुख ग्रंथ हैं। यह ग्रंथ उस समय के समस्त लोक चरित्रों, लोक गाथाओं और लोक कथाओं का एक उत्तम संकलन हैं। दुर्योधन की चरित्रहीनता, युधिष्ठिर का उत्तम चरित्र एक साथ प्रदर्शित किया गया है। कृष्ण की कूटनीति के दर्शन भी महाभारत में होते हैं। महाभारत पर आधारित अनेक लोक चरित्र बुंदेलखण्ड में प्रचलित हैं। द्रोपदी चरित्र, विराट चरित्र, हिडम्बा, घटोत्कच और पाण्डव चरित्र इस क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं।

पौराणिक युग– पुराणों में चरित्र कथानकों की अधिकता है। जिनमें भक्ति, प्रेम, परोपकार, सत्य और अहिंसा प्रमुख हैं। ध्रुव, प्रहलाद की दृढ़ता और भगवद्–भक्ति, मोरध्वज का त्याग, राजा हरिश्चंद्र की सत्यता, गोपियों का अनन्य प्रेम, शबरी और निषाद का आत्मसमर्पण और श्रवण कुमार की पितृ भक्ति पौराणिक चरित्र कथानक है। पुराणों की संख्या अट्ठारह है। उनमें से कुछ ऐसे पात्र हैं जिनके नाम पर एक पुराण की संरचना हुई है। वही चरित्र कथानक आगे जाकर लोक गाथाओं के रूप में प्रचलित हो गये हैं। बुंदेलखण्ड के ध्रुव चरित्र, प्रहलाद चरित्र, हरिश्चंद्र चरित्र और श्रवण कुमार चरित्र पुराणों के ही कथानक हैं। लोकभाषा और लोक संगीत के कारण उनमें कुछ अंतर दिखाई देता है, किन्तु उन सबका मूल उद्‌गम स्थल पुराण ही हैं।

पालि साहित्य– महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्म और उनके विभिन्न कार्य–कलापों पर आधारित अनेक जातक कथाएँ पालि में लिखी गईं थीं। इनके अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में बहुत बौद्ध साहित्य लिखा गया, जिनमें चरित्र काव्य की परंपरा दिखाई देती है। पालि में लिखे गये त्रिपिटक बहुत प्रसिद्ध हैं। सुत्तपिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक त्रिपिटक नाम से प्रसिद्ध हैं। सुत्त पिटक और विनय पिटक में महात्मा बुद्ध के जीवन से संबंधित अनेक चरित्र गाथाएँ प्राप्त होती हैं। कुछ चरित्र गाथाएँ उनके शिष्यों और अनुयायियों पर आधारित हैं। कविवर अश्वघोष ने 'बुद्ध चरितम्' नाम का चरित्र काव्य ग्रंथ लिखा था। कुछ पालि जातकों में अनेक चरित्र काव्य प्राप्त होते हैं। कुछ जातकों में तत्कालीन लोक संस्कृति, लोक व्यापार और लोक संस्कारों का विस्तृत विवेचन है। जातकों में मूर्ति कला, वास्तुकला को भी प्रमुख स्थान दिया गया है। जातक कथाएँ पत्थरों और भित्तियों पर अंकित होती रही, जिनमें बौद्ध कालीन वास्तुकला के दर्शन होते हैं। भरहुत और सांची के स्तूपों की कला साकार हो उठी। तोरण द्वारों और स्तूपों से बौद्ध कला सजीव और साकार हो उठी। अजंता–ऐलोरा की गुफाओं में बौद्ध कला का स्रोत फूट पड़ा था। अजंता की गुफाओं के चित्र विक्रम के सौ वर्ष पूर्व से लेकर सातवीं शताब्दी तक के हैं, जिनमें विभिन्न चरित्र मुद्राओं और आकृतियों के दर्शन होते हैं। इन जातक कथाओं से तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

जैन साहित्य– जैन साहित्य की संरचना प्राकृत और अपभ्रंश में की गई है। जैन पुराणों में तीर्थंकरों और अन्य महापुरुषों के चरित्र सम्बन्धी साहित्य प्राप्त होता है। अधिकांश जैन साहित्य चरित्र काव्य के रूप में लिखा गया है। जैन धर्म के प्रसिद्ध ग्रंथ पउम चरिउ, णायकुमार चरिउ विशेष लोकप्रिय हैं। जो अपभ्रंश भाषा में लिखे गये थे।

इन चरित्र ग्रंथों में लोककथाओं के समान कथानक रूढ़ियाँ हैं। एक सुए की कथा भी है, जो विद्याधर था और जो सुए का रूप धारण करके उज्जयिनी के समीप रहता था, जो सुए की चरित्र कथा अपभ्रंश में प्राप्त होती है। आज भी जैन धर्मावलंबी उस कथा को बड़े चाव से गाया करते हैं। उसी प्रकार नेमिनाथ चउपई में बारहमाला मिलता है, जिसका गायन आज भी जैन समुदाय बड़े चाव से किया करता है।

संस्कृत साहित्य– संस्कृत साहित्य में चरित्र काव्य परम्परा का भलीभाँति परिपालन हुआ है, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख संस्कृत के कवियों को स्थान दिया जा सकता है–

अश्वघोष– वे बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा के प्रमुख विचारक और बौद्ध धर्मानुयायी संस्कृत के महाकवि थे। वे पालि और संस्कृत के कवि थे। उन्होंने संस्कृत में 'बुद्धचरितम्' नाम का महाकाव्य लिखा था। वे ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में विद्यमान थे। उन्हें सातवाहन युग का महाकवि माना जाता है। कुछ विद्वान उन्हें कनिष्क का समकालीन और नागार्जुन के पूर्व का मानते हैं।

व्याडि– ये व्याकरणाचार्य पाणिनी के समकालीन थे। इन्हें ईसा की तीसरी शताब्दी के पूर्व का माना जाता है। वे एक संग्रहकार के रूप में प्रसिद्ध थे। महाराज समुद्र गुप्त का कथन है कि वे रसतंत्र के आचार्य महाकवि शब्द ब्रह्मनैकवद के प्रवर्तक और पाणिनी के सूत्रों के व्याख्याता थे। उन्होंने 'बालचरित्र' महाकाव्य लिखकर भारत और व्यास को जीत लिया था। समुद्रगुप्त ने तो ये तक कह दिया था कि 'व्याडि' ने महाभारत से भी बड़ा महाकाव्य लिखा था।

भवभूति– एक संस्कृत के श्रेष्ठकवि और रससिद्ध नाटककार थे। ये वाक् पतिराज मुंज के समकालीन थे। वाक्पतिराज ने अपने प्राकृत ग्रंथ 'गौढवहो' में भवभूति की भरपूर प्रशंसा की थी। वे ईसा की सातवीं शताब्दी में विद्यमान थे। वे पद्मपुर के निवासी उदम्बरीय ब्राह्मण थे। उनके पितामह पं. गोपाल भट्ट स्वयं एक सिद्धहस्त कवि थे। उन्होंने उत्तर रामचरितम् और महावीर चरित्र नाम के दो चरित्र काव्य लिखे थे। रामकथा विषयक भारतीय नाटककारों की अपेक्षा भवभूति ने अपने नाटकों में राम और सीता के पवित्र और विशुद्ध प्रेम का चित्रण किया गया है। उनके आश्रयदाता यशोवर्मा स्वयं एक काव्य प्रेमी और काव्यकार थे।

अभिनन्द– आपका जन्म काश्मीर में हुआ था, जिसकी काव्य प्रतिभा को स्थान काश्मीर के संस्कृत कवियों में किया गया है। उनका रचनाकाल नवमीं शताब्दी माना

जाता है। वे शतानंद के पुत्र थे। उन्होंने 36 सर्गों में रामचरित नाम का महाकाव्य लिखा था, जिसका उल्लेख भोज और महिम भट्ट ने किया है।

अन्य जैन चरित्र काव्य– जैन चरित्र काव्यों की हस्तलिखित पोथियाँ जैन ग्रंथागारों में आज भी सुरक्षित हैं, जिनमें गुणमाल का जम्बू चरित्र, देवचन्द्र सूरि का शांतिनाथ चरित, लक्ष्मण देव का णेमिणाह चरिउ, वर्धमान आचार्य का आदिनाथ चरिउ–देवप्रभ सूरिका पार्श्वनाथ चरिउ, गुणभद्र सूरि का महावीर चरिउ, वर्धमान का मनोरमा चरिउ, गुण समृद्धि का अंजना सुन्दरी चरिउ, धनेश्वर सूरि का सुर सुन्दरी चरिउ प्रमुख हैं।

मंखक– ये आचार्य क्षेमेन्द्र के समकालीन थे। प्रसिद्ध काव्य शास्त्री रुय्यक के शिष्य और काश्मीर के राजा जयसिंह के सभा पंडित थे। इनके काव्य ग्रंथ का नाम 'कंठचरित' था। यह ग्रंथ बड़ा ही सजीव, रोचक और सुरूचिपूर्ण है।

श्री हर्ष– आप कन्नौज नरेश विजयचन्द्र और जयचंद्र दोनों नरेशों के सम्मानित राजकवि थे। उनके आश्रयदाता इतिहास प्रसिद्ध जयचंद ही थे। जिनकी पुत्री संयोगिता का अपहरण पृथ्वीराज चौहान ने किया था। उनका स्थिति काल संवत् 1156 से 1239 तक माना जाता है। उनके सुप्रसिद्ध ग्रंथ का नाम 'नैषधीय चरित्र' है। उनके उत्कृष्ट काव्य कौशल का एक उत्तम उदाहरण है। इस ग्रंथ में महाभारत कालीन नल–दमयंती की कथा वर्णित है। महाकवि हर्ष का यह महाकाव्य चरित्र काव्यों में शीर्ष स्थान पर है।

दण्डी– आचार्य दण्डी संस्कृत के प्रथम गद्यकार थे। ये दक्षिणात्य और विदर्भ देशीय थे। वे सातवीं शताब्दी के श्रेष्ठ आचार्य थे। वे काव्य शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने काव्यादर्श नाम का काव्यशास्त्रीय ग्रंथ और दशकुमार चरित्र नाम का कथा ग्रंथ लिखा था।

बाणभट्ट– दण्डी और सुबंधु के बाद बाणभट्ट का क्रम आता है। बाणभट्ट संस्कृत के उन यशस्वी विद्वानों में से एक थे, जिनके कारण संस्कृत भाषा को विश्व की भाषाओं में प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। वे सम्राट हर्षवर्धन की उज्ज्वल सभा के एक श्रेष्ठ रत्न थे। बाण का स्थितिकाल सातवीं शताब्दी के आस–पास माना जाता है। उन्होंने 'हर्षचरित्र' नाम का श्रेष्ठ ग्रंथ लिखकर बहुत ख्याति अर्जित की थी। उनके सुप्रसिद्ध कथा ग्रंथ 'कादम्बरी' को उनके विद्वान पुत्र भूषण भट्ट और पुलिन्द भट्ट ने पूर्ण किया था।

हिन्दी साहित्य में चरित्र काव्य

संस्कृत साहित्य के बाद हिन्दी साहित्य में भी अनेक वर्षों तक यह परम्परा संचालित रही। हिन्दी के कुछ कवियों ने चरित्र काव्य ग्रंथों की रचना की थी जो निम्नानुसार है–

गोस्वामी तुलसी दास– हिन्दी को विश्व की श्रेष्ठ भाषाओं में स्थान प्रदान कराने वाले गोस्वामी तुलसीदास जी से तो सारा विश्व परिचित ही है। हिन्दी के चरित्र काव्यों में 'रामचरित मानस' का प्रमुख स्थान है। सच पूछा जाये तो सच्चे अर्थों में यही एक श्रेष्ठ चरित्र काव्य है, जिसमें एक सच्चे आदर्श चरित्र श्रीराम की झाँकी दिखाई देती है। समाज के विविध पक्षों का चित्रण, मानवीय संबंधों का विधिवत निर्वाह इस ग्रंथ में हुआ है।

नन्ददास– अष्टछाप के कवियों में नन्ददास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका स्थितिकाल संवत् 1625 के लगभग माना जाता है। वे सूरदास जी के समकालीन थे। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि '**और कवि गड़िया, नंददास जड़िया'।** कृष्ण साहित्य में सूर के बाद आपका ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने कृष्ण लीलाओं पर आध ाारित अनेक ग्रंथों की रचना की थी। आपने 'सुदामा चरित्र' नाम का चरित्र काव्य ग्रंथ लिखा था, जिसमें कृष्ण और सुदामा के मैत्री भाव का मार्मिक चित्रण है।

कृष्णदास– आप भी अष्ट छाप के कवियों में से एक थे। वे वल्लभाचार्य के शिष्य होने के कारण रंगनाथ जी के मंदिर के प्रधान मुखिया हो गये थे। 'चौरासी वैष्णव वार्ता' में इनका जीवन वृत्त दिया गया है। उन्होंने राधा–कृष्ण के प्रेम पदों का ही गायन किया है। उन्होंने जुगलमान चरित्र नाम का एक लघु चरित्र ग्रंथ लिखा था, जिसमें बाल–कृष्ण की लीलाओं का चित्रण है।

लालचदास– ये रायबरेली के एक हलवाई थे, किन्तु वे भगवान कृष्ण के परम भक्त थे। अपने कार्य में से कुछ समय निकालकर कृष्ण–लीलाओं का गायन किया करते थे। उन्होंने संवत् 1585 में 'हरिचरित्र' नाम के ग्रंथ की रचना की थी। यह ग्रंथ दोहा–चौपाई शैली में लिखा गया है, जिसमें भगवान कृष्ण का चरित्र–चित्रित किया गया है।

नरोत्तम दास– वे सीतापुर जिले के–'वाडी' नामक कस्बे के रहने वाले थे। शिवसिंह सरोज ने इनकी स्थिति संवत् 1602 वि. निश्चित किया है। उनका सुदामा चरित्र बहुत ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रंथ है, जिसमें सुदामा की दरिद्रता और कृष्ण की उदारता का चित्रण है। कुछ विद्वानों का कथन है कि 'ध्रुव चरित्र' नाम का ग्रंथ भी उन्होंने लिखा था। हालांकि यह ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, किन्तु सुदामा चरित्र के कारण उन्होंने बहुत लोकप्रियता अर्जित की है।

आचार्य केशवदास– रीतिकाल के प्रथमाचार्य श्री केशवदास जी से तो सारा हिन्दी साहित्य भलीभांति परिचित ही है। वे एक सिद्ध हस्त कवि, अलंकारवादी आचार्य थे। प्रवीणराय के गुरु और ओरछेश इंद्रजीत के दरबारी कवि थे। वे पंडित काशीनाथ के पुत्र और पं. कृष्णदत्त के पौत्र सनाढ्य ब्राह्मण थे। हिन्दी में लक्षण ग्रंथ लेखन का शुभारंभ आपने ही किया था। उन्होंने सात ग्रंथों की रचना की थी, जिनमें से 'वीरसिंह देव चरित्र' और 'जहाँगीर जस चंद्रिका' नाम के दो चरित्र काव्य लिखे थे। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने काव्य में चमत्कार प्रदर्शन करने का प्रयास किया था। कुछ विद्वानों ने तो उन्हें ह्रदयहीन और कठिन काव्य का प्रेत कहकर संबोधित किया है।

सूदन– ये मथुरा के निवासी माथुर चौबे थे। इनके पिता का नाम बसंत जी था, उन्होंने भरतपुर के राजा सुजान सिंह की प्रशंसा में 'सुजान चरित्र' नाम का ग्रंथ लिखा था, जिसमें उन्होंने अपने आश्रयदाता की अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा की है। इस ग्रंथ में संवत् 1802 से 1810 तक की घटनाएँ वर्णित हैं। उनका कविता काल संवत् 1820 वि. के आसपास माना जाता है।

गुरुगोविंद सिंह– ये सिक्खों के महापराक्रमी दशवें धर्म गुरु थे। इनका जन्म संवत् 1723 और सत्यलोकवास 1765 वि. माना जाता है। वे नानक जी के प्रिय भक्त कवि और श्रेष्ठ ग्रंथकार थे। सिक्खों में शास्त्र ज्ञान का अभाव उन्हें बहुत खटकता रहा। उन्होंने अनेक सिक्ख बंधुओं को व्याकरण, साहित्य और दर्शन का ज्ञान कराया था। वे हिन्दू भावों और आर्य–संस्कृति की रक्षा करने के लिए सदैव युद्ध करते रहे। तिलक

और जनेऊ की रक्षा के लिए उनकी तलवार सदैव खुली रही है। वे आदि–शक्ति के सच्चे आराधक थे। उन्होंने शक्ति की आराधना करते हुए 'चण्डी चरित्र' की रचना की थी। वह बड़ी ही ओजस्वी कृति है।

खुमान– वे एक वंदीजन परम्परा के कवि थे। वे बुंदेलखण्ड में महाराज चरखारी के दरबारी कवि थे। उनका कविता काल संवत् 1830 से 1880 के मध्य माना जाता है। उनका उपनाम 'भान' था। वे इसी नाम से काव्य सृजन किया करते थे। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। चरित्र काव्य की परंपरा में 'नृसिंह चरित्र' की रचना संवत् 1879 में की थी। इस ग्रंथ में भगवान नृसिंह के चरित्र का चित्रण किया गया है।

पं. रामचरित उपाध्याय– आपका जन्म संवत् 1929 में गाजीपुर में हुआ था। किन्तु उनका अधिकांश समय आजमगढ़ के समीपवर्ती एक ग्राम में व्यतीत हुआ था। वे संस्कृत के बहुत बड़े पंडित और हिन्दी के श्रेष्ठ कवि थे। उनके सिर पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का वरदहस्त था। उनकी रचनाएँ तत्कालीन सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित होती रही। उन्होंने रामचरित्र चिंतामणी नाम का महाकाव्य लिखा था। इसे हिन्दी का अंतिम चरित्र काव्य कहा जाता है।

लोक साहित्य में चरित्र काव्य

सम्पूर्ण भारत के लोक साहित्य में अनेक चरित्र गाथाएँ प्राप्त होती हैं। चाहे ब्रज हों, चाहे बुंदेलखण्ड, अवध या राजस्थान हो, सर्वत्र चरित्र प्रधान लोक गाथाओं की रचना हुई है। लोक गाथाओं के रचनाकार अज्ञात हैं, किन्तु आज वे सब लोक मुख से सुनने को प्राप्त होती हैं। बुन्देलखण्ड के हरदौल चरित्र, सुलोचना चरित्र, अनुसुइया चरित्र, ध्रुव चरित्र की धूम सारे भारत वर्ष में है। इसी प्रकार की चरित्र गाथाएँ ब्रज, अवध और छत्तीसगढ़ में प्राप्त होती हैं। हर अंचल के लोक साहित्य–मर्मज्ञों ने इनके संकलन का प्रयास किया है। ब्रज क्षेत्र में डॉ. सत्येन्द्र, अवधी में डॉ. सरोजनी रोहतगी, भोजपुरी में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय और उदयनारायण तिवारी, बघेलखण्ड में डॉ. विनोद कुमारी तिवारी और डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ला, छत्तीसगढ़ में डॉ. शकुन्तला वर्मा, गुजरात में झबेरचंद्र मेघाणी, राजस्थान में श्याम परमार, कुमायूँ में डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय, बुंदेलखण्ड में श्री कृष्णानंद गुप्त, डॉ. दुर्गेश दीक्षित, डॉ, नर्मदा प्रसाद गुप्त का नाम विशेष उल्लेखनीय है। भारत में लोक साहित्य सामग्री भरी पड़ी है। अकेले चरित्र काव्य पर ही एक शोध प्रबंध लिखा जा सकता है। अभी तक इस क्षेत्र में पर्याप्त कार्य नहीं हो पाया। कुछ बुंदेली साहित्य के प्रेमी जन इस पुनीत कार्य में संलग्न हैं। उनके सत्प्रयास से कुछ चरित्र गाथाएँ उजागर हो सकती हैं।

बुंदेली की कुछ प्रमुख चरित्र गाथाएँ

वैदिक साहित्य से लेकर भारत के विविध अंचलों की लोकभाषाओं में अनेक चरित्र गाथाएँ प्राप्त होती हैं। अवध अंचल में प्रचलित अधिकांश चरित्र गाथाएँ सूफी प्रेमाख्यानक काव्य–ग्रंथों के रूप में पल्लवित और पुष्पित हुईं हैं। ब्रज में प्रचलित 'सीता कौ व्याहुलौ', जगमोहन कौ लुगरा, 'भरथरी' और सरमन नाम की गाथाएँ पुराण महाभारत से उतरकर लोक यात्रा कर रही हैं। राजस्थान की ढोला–मारू गाथा महाभारत कालीन श्री हर्ष के नैषधीय चरित्र से प्रभावित हैं। यह चरित्र गाथा राजस्थान, ब्रज और बुन्देलखण्ड में प्रचलित है। आंचलिकता के कारण उनमें थोड़ा बहुत अंतर आ जाता है। किन्तु उन सबका मूलाधार महाभारत ही है। लोक मुख, लोक रूचि और मौखिक परंपरा के कारण उनकी कुछ घटनाएँ और पात्र परिवर्तित हो गये हैं, किन्तु हैं ये सब ऐतिहासिक और प्रामाणिक। कुछ चरित्र गाथाओं का संक्षिप्त परिचय–

सरमन चरित्र (श्रवणकुमार की पितृ–भक्ति) – इस गाथा में एक आदर्श चरित्र, श्रवण कुमार की पितृ भक्ति का परिचय दिया गया है। श्रवण कुमार माता–पिता के परम भक्त थे। उनके माता–पिता अंधे थे। किन्तु अपने इकलौते पुत्र श्रवण कुमार के प्रति उनके हृदय में असीम प्रेम था। वे भी अपने माता–पिता की सेवा में रात–दिन लगे रहते थे। वे जितने अधिक पितृ–भक्त थे, उनकी पत्नी उतनी ही अधिक कर्कश स्वभाव की थी। सास–बहू के कटु व्यवहारों से तो सारा समाज परिचित ही है। श्रवण कुमार की पत्नी बड़ी ही दुष्टा और कर्कशा स्वभाव की थी। वह अपने सास–ससुर को अनेक कष्ट देती थी। समय–समय पर उनका अपमान करना, उन पर कटु शब्दों की बौछार करना, आज्ञा का उल्लंघन करना, खाने–पीने में भेदभाव दिखाना आदि। उसने कुम्हार से एक विशेष प्रकार की हण्डी बनवाई थी, जिसका एक मुँह और दो पेट थे। वह उसके एक खण्ड में खीर पकाती थी और दूसरे खण्ड में खट्टे मट्ठा की महेरी। उस हण्डी में से अपने पति को खीर परसकर खिलाती थी और सास–ससुर को खट्टी महेरी। बहुत दिन तक श्रवण कुमार पत्नी के कटु व्यवहार को नहीं समझ पाये, किन्तु सत्य उजागर होने पर बहुत दुखी हुए। उन्होंने अपनी पत्नी से कुछ कहना उचित नहीं समझा, बल्कि अपने अंधे माता–पिता को काँवर में बैठाकर तीर्थाटन को चल दिये। ब्रज में भी यह चरित्र गाथा प्रचलित है। ब्रज गाथाकार ने लिखा है– श्रवण कुमार की पत्नी कुम्हार से कहती हैं–

कुम्हार के तोते देवर कहूँ या जेठ,
एक हँडिया ऐसी बना, एक मुंह दो पेट।

एक हँडिया में खट्टी महेरी, ढुवा कौ तेल।
खाय लें डुकरा रेलम पेल।

इन पंक्तियों में श्रवण कुमार की पत्नी के दुर्व्यवहार की झलक दिखाई देती है। बुंदेली चरित्र गाथाकार ने श्रवण कुमार की तीर्थाटन की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है–

चले सरमन वन शोभा कई भांत की, काँवर धरें पिता मात की।
सरमन वन कों चले डगर कैं,
कांवर मात–पिता की धर कैं।
बेटा पानी ल्याओ भर कैं।
करी त्यारी तुम बात पिता–मात की, काँवर धरें पिता–मात की।

श्रवण कुमार माता–पिता को लेकर तीर्थाटन के लिए चल दिये। चलते–चलते उन्हें अत्यधिक प्यास लग आई। उन्होंने अपने पुत्र से पानी लाने का आग्रह किया। श्रवण कुमार ने काँवर को एक वृक्ष की डाल पर लटकाकर, तुंबी निकालकर जल भरने के लिए चल दिये –

कांवर टांग दई तत्काल,
तूंबी तुरत निकाली हाल।
उत्तर दिश में सागर ताल,
तहं पर पौंचे सरमन लाल।
उतै बैठे दशरथ मृगा घात की, काँवर धरें पिता–मात की।

उत्तर दिशा में एक विशाल सरोवर था। उसके किनारे मृग की शिकार की घात लगाये राजा दशरथ धनुष पर तीर चढ़ाये हुए बैठे थे। उसी समय श्रवण कुमार ने पानी में तुंबी डुबाई। आवाज सुनते ही मृग के भ्रम में राजा दशरथ ने तीर छोड़ दिया–

तुरतईं सद्द भरें हैं पान,
तुरतईं चढ़ा चाप पै बान।
तुर्त लगो छाती में बान,
राजा दसरथ लई है जान।
बान मारो लगो छाती में तात की,
काँवर धरें पिता–मात की।

धोखे में तीर श्रवण कुमार की छाती में लग गया। अब भूल का आभास होते ही दशरथ दौड़कर श्रवण कुमार के समीप पहुँच गये। जाते ही उन्होंने पूछा कि आप इस तालाब के किनारे क्यों आये थे। श्रवण कुमार ने कहा कि मैं अपने माता–पिता के लिए पानी भरने आया था। वे दोनों प्यासे थे।

राजा आय तुरत बा ठाम,
पूछें जाय हतो का काम।
सरमन बोले लै हरि नाम,
अब तौ जात राम के धाम।
जल भरबै खौं आये कौन स्यात की,
कांवर धरे पिता–मात की।
प्यासे माता–पिता हैं ज्ञानी,
राजा दशरथ लैं चले पानीं।
हूँकन–हूँकन बोले बानीं,
कांवर उठा लई तब जानीं।
चाल सरमन की नईं और जात की, कांवर धरें पिता–मात की।

महाराज दशरथ को अपनी भूल पर भारी पछतावा हुआ। वे तुंबी भरकर उनके माता–पिता के समीप पहुँचे, किन्तु उनके माता–पिता उनकी चाल–ढाल और गतिविधियों से सब कुछ समझ गये। अंत में राजा दशरथ ने धैर्य पूर्वक सारी कहानी कह सुनाई और अपनी गलती पर क्षमा माँगने लगे–

राजा बोले धरकैं धीर,
हम बैठे तें सागर तीर।
सरमन नें जब भर लओं नीर,
मिरगा धोकैं मारो तीर,
लाल मारो हम महान भये पात की,
कांवर धरें पिता–मात की।

सारी कहानी सुनने के बाद अंधी–अंधे ने शाप देते हुए कहा–

बेई तीर जब मारे तान,
बेई सरमन लागे बान।
इतनी गल्ती भई महान,

अंधी–अंधा तज दये प्रान।
गाथा मोती नें गाई सांची बात की, कांवर धरें पिता–मात की।

– (श्रीमती राजाबेटी दीक्षित से साभार प्राप्त)

पुत्र शोक में अंधी–अंधा ने मरते समय राजा दशरथ को शाप दिया था, वह सत्य सिद्ध हुआ। पुत्र शोक में राजा दशरथ को भी अपने प्राण त्यागने पड़े थे। राम को वन गमन करते हुए देखकर राजा दशरथ ने प्राण त्याग दिये थे। बाबा तुलसी ने इस घटना का स्पष्ट उल्लेख किया है–

राम–राम कह राम कहि, राम राम कह राम।
तन परिहर रघुवर बिरह, राव गये सुर धाम।।

ये चरित्र गाथा बहुत लोकप्रिय है जो बुन्देलखण्ड की वयोवृद्ध महिलाओं के कंठ में सुरक्षित है। यह पितृ–भक्ति का एक उत्तम उदाहरण है, जो आज के पुत्र वर्ग का मार्ग दर्शन कर रही है।

ढोला–मारू गाथा– ढोला–मारू गाथा भारत की प्रेम–गाथाओं में से एक है। प्रेम की सच्चाई की कसौटी विरह है। विरह रूपी अग्नि में तपकर प्रेम–कुंदन के समान खरा निखर जाता है। इस गाथा में मारू की विरह–व्यथा का सुंदर चित्रण है। ये कथानक इतना अधिक लोकप्रिय है कि भागवत और महाभारत से लेकर आज तक प्रचलित है। श्री हर्ष के नैषधीय चरित्र में इस कथा का विस्तृत विवेचन है। वैसे नल–दमयंती कथा महाभारत कालीन है। महाभारत में नल–दमयंती के विवाह का वर्णन और नल पर आये घोर संकट का वर्णन किया गया है। राजा नल अपने भाई पुष्कर से जुए में हारकर अपना सब राज–पाट खोकर परदेश चला गया था। उन्हें पिंगलगढ़ में जाकर गंगू तेली के यहाँ नौकरी करनी पड़ी थी। कुछ समय बाद गंगू के माध्यम से उनकी घनिष्ठ मित्रता पिंगल के राजा 'बुध' के साथ हो गई। धीरे–धीरे वह मैत्री सगे संबंधियों के रूप में बदल गई और नल के पुत्र ढोला और बुध की पुत्री 'मारू' का विवाह शैशवकाल में ही पिंगल देश में हो गया था।

निर्वासन की अवधि पूर्ण होने पर नल अपने परिवार के सहित नरवरगढ़ को लौट आये और मारू को पिंगलगढ़ में ही छोड़ आये। ढोला को अपने बाल विवाह का कोई स्मरण नहीं था और उनका विवाह नरवरगढ़ में रेवा नाम की सुन्दरी के साथ हो गया।

इधर मारू पिंगलगढ़ में धीरे–धीरे बड़ी होने लगी। उसे अपने बचपन के विवाह का कोई स्मरण नहीं था। वे युवती होकर प्रियतम प्राप्ति की इच्छा करने लगी। उसने अपनी भाभी से पूछा–

कै पिता कुल टाँचरे, कै दामन के बल हीन।
मोरी ज्वानी वय भई, बाबुल करे न ब्याव रे।

भाभी ने सांत्वना देते हुए कहा–

ना पिता कुल टाँचरे, ना दामन के बल हीन।
डल्लीं–डल्लां तो तोरी भांवर परी, सो ढोलन के साथ रे।

यह जानते ही मारू व्याकुल होकर ढोला से मिलने का उपाय सोचने लगी। उसने हंसी–हंसा के जोड़े द्वारा अपने पति ढोला के समीप प्रेम संदेश प्रेषित किया। वह रात–दिन प्रिय–वियोग में जलने लगी। गाथाकार ने उसकी विरह व्यथा का वर्णन करते हुए कहा है–

रोजऊ रसोइया रे मारू तपैं, धुवाना के मिस रोय।
जब सुध आबैं प्यारे छैल की, सो छतियां धरत नइयां धीर रे।

दूसरी बार तोते के द्वारा संदेश भेजती हुई रो–रोकर कहने लगती है–

काहे की कलमें करों, काहे की मखि दोत।

तोता उत्तर देता है–

आंचल छीन कागज करों, नैंनन की मस दोत।
पेंती चीर कलमें करों, तो लिखो ढुलन के नाम रे।

मारू का संदेश लेकर तोता उड़ चला, उसे उड़ता हुआ देखकर मारू कहने लगती है।

उड़तन तौ गंगा अच्छे लगें, धरों न पांव पछांय।
खबर मोरी धरै लै अइयों, तब गंगा राम कहांय।।

तोता उड़कर नरवरगढ़ पहुँच गया। वह आकर ढोला की भुजा पर बैठ गया। ढोला ने उसके गले से पत्र छोड़कर पढ़ा, तब उसे अपनी पूर्व विवाहिता पत्नी का स्मरण हो आया। ढोला का विवाह रेवा के साथ हो चुका था। उसने अपनी रानी रेवा से कहा कि ये तोता मेरी पूर्व पत्नी मारू का प्रेम संदेश लेकर पिंगलगढ़ से आया है। तुम इसे प्रेमपूर्वक रखना। इतना कहकर ढोला शिकार खेलने के लिए चल दिये। अपनी सपत्नी का तोता पाकर रेवा तोते को मार डालना चाहती थी। एक दिन रेवा ने ढोला का रूप धारण कर लिया और तोते के समीप गई। तोते ने उसे देखकर कहा–

बोले गंगा जौ कहैं, सुनले राजा बात।
ऐसे राजा न तके, जीके माथें बेंदी होय।।

इतना कहकर तोता उड़ गया। कुछ समय बाद भेष बदलकर रेवा फिर उसके सामने पहुँचती है। तोता उसकी चाल को समझकर कहने लगता है–

बोले गंगा जौ कहैं, सुनले राजा बात।
ऐसे राजा मैं न तके, जी की नांक पुंगरिया होय।

इतना कहकर तोता फिर उड़ जाता है और रेवा की सारी योजना बिफल हो जाती है। मारू ने तीसरा संदेश एक व्यापारी के द्वारा चीर देकर प्रेषित किया। वह उससे कहती हैः–

कोंना देश जनमन रे तैनें धरे, कौना धरे औतार।
नाम सार दै रे भूमि केरे, फिर सारो धनी के नाम रे।
ना तो हम तोरे ससुरा लगै, सुन लो लाला बात।
चीर भांवर कौ लै जइयौ, सो दिइयों स्वामी के हात।

व्यापारी ने चीर नरवरगढ़ पहुँचकर ढोला को सौंप दिया। मारू ने चौथा संदेश ढाँडू कक्का के द्वारा प्रेषित करते हुए कहा–

अंगना तो सूके रे सूकनों, वन सूकें कचनार।
मारू धनियां सूकें मायकें, जैसे हीन पुरुष की नार।।
ढाँडू तो कक्का जात हों, राजन दियो समझाय।
जैसी तोरी रेवा बनीं, वैसी मारू लगी पनिहार।
ढाँडू तो कक्का जात हों, राजन दियो समझाय।
जैसी तोरी रेवा बनीं, मारू के तरवा होंय।
ढाँडू तो कक्का जात हों, राजन दियो समझाय।
मारू कलुरिया हो गई, लै लठिया चले आव।।

अनेक संदेश प्राप्त करने पर ढोला–मारू से मिलने के लिए आतुर हो उठा। अंत में अपने पिता नल की सहायता और देवीजी की कृपा से सकुशल पिंगल देश पहुँचकर मारू को ले कर नरवरगढ़ लौट आया। इस गाथा में मारू के उदात्त चरित्र का चित्रण

किया गया है। वह एक आदर्श भारतीय नारी थी। बाल विवाहिता होते हुए भी अपने सतीत्व और पातिव्रत धर्म की रक्षा की थी।

– (श्रीमती गिरिजा देवी दीक्षित से साभार)

रानी गणेश कुँवरि की चरित्र गाथा– बुंदेलखण्ड के बुंदेला राजा भगवान कृष्ण के भक्त रहे हैं और रानियाँ राम भक्त हुआ करती थीं। ओरछेश महाराज मधुकरशाह कृष्ण भक्त थे और उनकी महारानी गणेश कुँवरि राम भक्त थीं। एक बार आराध्यों को लेकर पति–पत्नी में विवाद हो गया। राजा मधुकरशाह ने कहा कि यदि तुम सच्ची राम भक्त हो तो अपने राम को अयोध्या से ओरछा क्यों नहीं ले आती। वे सच्ची क्षत्राणी थीं। उन्हें महाराज की तीखी चुनौती चुभ गई। उन्होंने महाराज के समक्ष दृढ़ प्रतिज्ञा की कि मैं अपने राम को अयोध्या से ओरछा लाकर रहूँगी अथवा सरयू में डूबकर प्राण त्याग दूँगी। इतना कहकर वे ओरछा से अयोध्या नगरी को चल दीं।

कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि उन दिनों भारत में मुगलों का शासन था। मुगल मूर्तियों को ध्वस्त कर रहे थे। अयोध्या में भी मुगल सक्रिय थे। अयोध्या के साधु महात्माओं ने राम, लक्ष्मण और सीता की सुंदर और दुर्लभ मूर्तियों को बचाने के लिए सरयू नदी के जल में छिपाकर रख दिया था। मधुकरशाह और रानी गणेश कुँवरि के विवाद की घटना तो केवल नाटक ही था। सरयू में डुबकी लगाते समय रामलला गोदी में आ गये। ऐसा कहा जाता है कि वे राम को केवल पुष्य नक्षत्र में ही लेकर आई थीं। यहाँ तक आते–आते महीनों लग गये थे। वे रामलला को लेकर सीधी रनिवास में ही पहुँच गई और वहीं सारी मूर्तियों को विराजमान कर दिया, जो आज तक वहीं विराजमान हैं। वर्तमान मंदिर रनिवास में ही है। इस घटना पर आधारित एक चरित्र गाथा बुंदेलखण्ड में गाई जाती है–

राजाराम खौं लैंन गई गनेशबाई,
धन्न पूरब पुन्न की कमाई।
करकैं चलीं प्रतिज्ञा मन में,
धरकैं ध्यान प्रभू चरनन में,
जोलों करों नईं भोजन में
जोलों मंजु मूरत श्रीराम जू की नईं पाई,
धन्न पूरब पुन्न की कमाई।

रानी गणेश कुँवरि दृढ़ निश्चय करके अयोध्या पहुँच गईं। अनेक दिनों तक

निराहार रहकर प्रतीक्षा करती रहीं। अंत में निराश होकर प्राण त्यागने की इच्छा से सरयू में डुबकी लगाई–

आओ भोले–भाले राम,
संगै चलो ओरछा धाम।
तुम में बसे हमारे प्रान,
इतनी कैकैं सरयू में डुबकी लगाई, धन्न पूरब पुन्न की कमाई।

प्राण त्यागने की इच्छा से रानी ने सरयू नदी में डुबकी लगा ली। उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा समझकर भगवान राम उनकी गोदी में अपने आप आ गये। क्योंकि भगवान तो भक्त के वशीभूत होते हैं।

डूबा साधो धरकैं ध्यान,
गोदी में आ गये भगवान,
रानी खौं भओ सुक्ख महान।
लगा छाती सों रामचंद्र निकर आई, धन्न पूरब पुन्न की कमाई।

– (श्रीमती रामकली रैकवार से साभार प्राप्त)

हरदौल चरित्र गाथा– बुंदेलखण्ड की प्रसिद्ध और लोकप्रिय चरित्र गाथा 'लाला हरदौल' बुंदेल वसुन्धरा पर प्रचलित है। लाला हरदौल जन–जन के मन में बसे हुए हैं। यह एक कारुणिक और भावना प्रधान चरित्र गाथा है, जिसे सुनते ही श्रोताओं की आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। लोग आज भी राजा जुझारसिंह और रानी पार्वती को कोसने लगते हैं। अपने आदर्श और पावन चरित्र के कारण उन्हें इस बुंदेलखण्ड के गाँव–गाँव में देवता की तरह पूजा जाता है। गाँव–गाँव में हरदौल के चबूतरे और मंदिर बने हुए हैं। उन जैसा मर्यादित और विशुद्ध प्रेम अन्यत्र दुर्लभ है। ईर्ष्यालु शत्रुओं ने राजा जुझार सिंह के मन को विषाक्त कर दिया था। राजा ने महारानी के द्वारा विष मिश्रित भोजन कराकर हरदौल की हत्या करा दी थी। सारा समाज उन्हें घृणा की दृष्टि से देखता है। जिसने अपने निर्दोष और चरित्रवान भाई की हत्या करा दी थी। ऐसे पापी राजा को समाज सदैव धिक्कारता है। बुंदेली बालाएँ आज भी उन्हें अपना लाला मानती हैं। अनेक गीतकारों ने इस कारुणिक चरित्र गीत को अपने भावों में संजोने का प्रयास किया है। जरा देखिये एक बहु प्रचलित लोकगीत के बोलों को–

नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।
जैसी लाला की है प्रीत,

तैसी सब दुनिया की रीत,
तनकऊ करी नईं अनरीत,
जैसी लाला नाय निभाई, ऊसई सदा निभइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

रानी ने विष मिश्रित भोजन तैयार करके नाइन के द्वारा भोजन करने का आमंत्रण भेजा।

न्योतों करन खवासन आई,
दीनी लाला खौं दरसाईं।
तुमरी रोवत है भौजाई
काऊ विधर्मी ने दयो सिखायो, चित्त में एक न दइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

नाइन ने हरदौल को सारा भेद बताते हुए संकेत किया कि आप भोजन मत करना। भोजन विष मिलाकर तैयार किया गया है –

बहिनी नौनी रच जिवनारी,
जीमें साग परें अतिकारी।
शक्कर घी गुर और खटारी,
जे मोये लाला प्रानन प्यारे, इनखौं विष जिन दइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

बुंदेलखण्ड में प्रायः शकुन–अपशकुन का विचार किया जाता है। छींक को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है–

छींकत भई है आप अबारी,
कुसगन भये भीतर सें भारी,
कैसें परसें विष की थारी,
भौजी गिरी मोरछा खाकैं, प्यारे प्रान बचइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

अपने प्रिय भाई हरदौल की मृत्यु का समाचार सुनकर उसकी बहिन कुंजावती बिलख–बिलख कर रोने लगी–

कुंजा हाल सुनें सुन सोई,
तुरतईं मूँढ़ फटक कैं रोई
आप न आय उतैं से कोई,
भइया विष कौ कौर न छिइयों, जा भइया सों कइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

हरदौल की मृत्यु का समाचार पाते ही उनके प्रिय साथी पशु–पक्षियों और फौज के सिपाहियों ने उन्हीं के साथ अपने प्राण त्याग दिये–

फौज भीर सब संगैं जानें,
लवा कबूतर तीतुर मानें,
सुवना ने तज दिये पिरानें,
अपुन चलें अब तीन लोक खौं, सबर हमाई लइयो।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

मरने के बाद भी लाला हरदौल अपनी भांजी की शादी में चीकट लेकर दतिया नगरी में उपस्थित होते हैं–

तुरतईं गाड़ी साठ मंगाई,
शक्कर घीं गुर और खटाई,
संगै सब सामान भराई,
जी तन पै जे गाजें पर गईं, मरतन काज बनइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

मरने के बाद भी लाला हरदौल प्रेत–रूप में प्रकट हुए। उनके आगमन का समाचार सुनकर नगर में खलबली मच गई–

जब लाला की भई अबाई,
खलबल मची नगर में भाई,
बहिनी भेंट करन को आई,
खम्भा फटो तेज के मारें, नयन न भीर दिखइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

लाल हरदौल दूल्हा को टीका करने लगे। दूल्हा को अनेक उपहार प्रदान किये–

टीका करन लगे हैं लाला,
दीनी कंठन मोतिन माला,
सिर पै पगड़ी और दुशाला,
ऐसों दूला बिरजन बिरजो, पलक ओट जिन रइयौ।
नजरिया के सामनें तुम, हरदम लाला रइयौ।

– (श्रीमती राजाबेटी, सरकनपुर से साभार प्राप्त)

कुछ समय पश्चात् थोड़ा–सा धैर्य धारण करके रानी ने हाथ जोड़कर अपने पति से निवेदन किया –

हाय दई कैसी कहा, होनी होत लखात।
कही भ्रात ने भ्रात सों, विष दैबे की बात।।
धीर धरि बोलीऊ उठि पिय सों नवाय शीश।
जान कैं अजान बन, कुमति कमइयों ना।
सुमति सुजान गुनवान हों बुंदेला वीर।
सूर–सूर्य वंश खौं, कलंक लगबइयो ना।
बोधा कवि लाला हरदौल सौ भ्रात।
ताहि विष दैबे की कुटेक अजमइयों ना।
चुगल चबाइन के परि कै कुचक्र माहि।
चनन के धोकैं कऊ मिर्चें चबइयो ना।

इसी भाव को अमर लोक गायक श्री भगवती चरण 'दास' ने निम्नानुसार व्यक्त किया है–

निरदोषी हरदौल लला खौं, विष भोजन करवावत काय।
प्रीतम पाप कमाउत काय।
चुगल चबाइन की बातन में, जानबूझ कैं आवत काय।
आज अपनेई हातन सें, अपनी भुजा कटावत काय।
पुत्र समान लला है मोरे, ताहि कलंक लगावत काय।
शत्रु गर्व गारन कुल तारन, बिना मौत मरवावत काय।
दास कहैं पतिव्रता धर्म खौं, जा तिरिया अजमावत काय।

रानी दुविधा में पड़कर सोचने लगती है–

एक ओर है पति की आज्ञा, एक ओर देवर प्यारौ,
करो प्रभू अब निनवारौ।
पति की कही करों तो देवर, बिना मौत जाबैं मारौ।
जो पति आज्ञा ना पालों, धरम बिगर जाबैं सारौ।
इतै जाव तों कुआ उतै जाव पुखरी, कौ दल–दल है भारौ।

रानी के अंतिम निर्णय का वर्णन करते हुए कविवर घनश्यामदास जी पाण्डेय लिखते हैं–

पति की आज्ञा सिर पर धरी, पतिव्रता सी नार।
विषमय देवर के लिए, भोजन कर तैयार।
कूट–कूट कालकूट कंद औ कचौड़ियों में।
मालपुवा मोंदक में माहुर मिलाया था।
सागों और शक्कर में सान दिया शंखिया।
पूड़ी पय पापड़ों में पन्नगी पिलाया था।
विप्र घनश्याम बालूसाई में बच्छनाग।
हलुवे में हरताल हल्दिया मिलाया था।
सेवों में सिंधिया अमृतियों में अहीफेंन।
गंगाजल के गढ्ढवे में गरल गलाया था।

कविवर पाण्डेय जी ने विष मिश्रित करने की प्रक्रिया को प्रदर्शित करने के लिए अपना सारा पांडित्य एक ही साथ उड़ेलकर रख दिया, जिसमें कहीं भी संवेदना तत्त्व के दर्शन नहीं होते।

घर–घर में हो गओ शोर, लला हरदौल मरे विष खाकैं।
छायों शोर ओरछा भीतर।
मर गये सुनतन नौकर चाकर।
मरगओ मैंतर जूठन खाकर।
मरगओ श्वान शिकारी संगै, रये सब रुदन मचाकैं।

उनकी मृत्यु का समाचार पाते ही, उनकी सारी मित्र मंडली ने प्राण त्याग दिये।

मरे संग साथी बलवान,
तोता मैंना तजे प्रान,

प्रजा लगी हिय में बिलखान,
गज–घोड़ा मर गये थान पै गइयां मरीं रंमा कैं।

उस समय कितना संवेदना पूर्ण वातावरण रहा होगा, उनकी भाभी पार्वती अपनी भूल पर पछताने लगीं। आक्रोश में राजा बहुत बड़ा अपराध कर चुके थे। अब उन्हें भी पछतावा हो रहा था –

भावज सिर धुन–धुन पछताबैं।
नरपति जुझार सिंह दुख पाबैं।
बाहर आबैं भीतर जाबैं।
अपनी करनी पै पछताबैं।
जुगयानें सइयां दरवाजे, दई फिर चिता लगाकैं।
लाल चिता सेज पै सो गये।
मन कौ मैल सुजस के बो गये।
दास कहैं दई पंच नकरिया, उनके गुन गन गाकैं।
घर–घर में हो गओ शोर, लला हरदौल मरे विष खाकैं।

हरदौल की मृत्यु का समाचार जिसने सुना, वह वहीं खड़ा होकर रोने लगा। नौकर चाकरों ने आत्महत्या कर ली। पशु–पक्षी, हाथी–घोड़े सभी तड़प–तड़पकर मर गये। सारे नगर में हाहाकार मच गया। यहाँ तक कि इस कुकृत्य को करने वाले राजा जुझार सिंह का मन आत्म–ग्लानि से भर गया। हरदौल ने अपनी मान–मर्यादा और पवित्रता का प्रमाण जीवनदान देकर सारे संसार के सामने प्रस्तुत किया। वह राजा जुझार सिंह महान पापी और घोर कलंकी सिद्ध हुआ। ऐसे चरित्रवान व्यक्ति संसार में बिरले ही होते हैं। उसी महान चरित्र के कारण आज उन्हें सारे देश में देवता की तरह पूजा जाता है। उनके आदर्शों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

चित्र और वस्त्र परम्परा पर केन्द्रित पुस्तकें

जिरौती

मध्यप्रदेश के निमाड़ जनपद की चित्रकला-संकलन-वसंत निरगुणे, मूल्य-300/-

सुराँती

मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड जनपद की चित्रकला-संकलन-महेश कुमार मिश्र, मूल्य-300/-

कोहबर

मध्यप्रदेश के बघेलखण्ड जनपद की चित्रकला-संकलन-गोमती प्रसाद विकल, मूल्य-300/-

अंकन

वस्त्र छपाई एवं रंगाई पम्परा पर केन्द्रित-संकलन-चिन्मय मिश्र, मूल्य-300/-

सुसमन

वस्त्र बुनाई परम्परा पर केन्द्रित संकलन सम्पादित, मूल्य-200/-

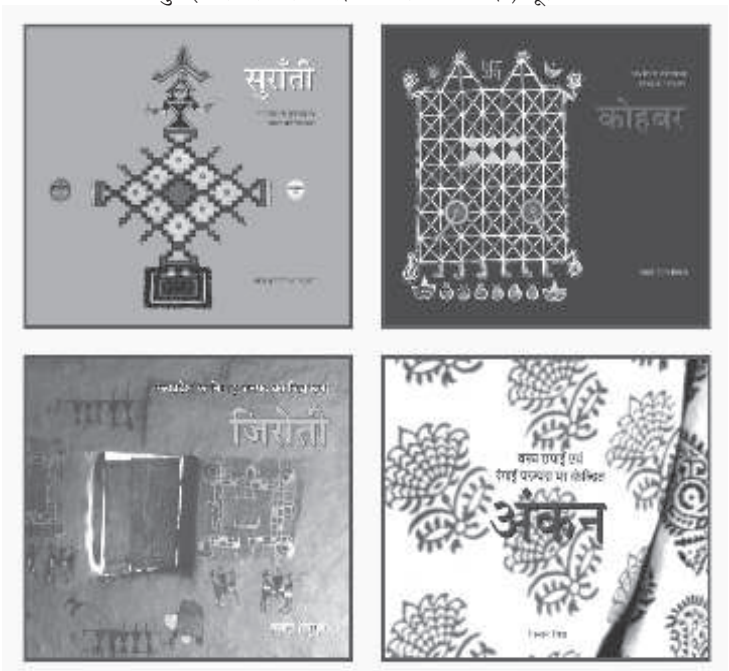

आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् के प्रकाशन

ऑडियो/ वीडियो सी.डी.

भोपाल की चारबेंत गायिकी की सीडी–सम्पादित, मूल्य–50/–
आदिवर्त संग्रहालय–खजुराहो–सम्पादित, मूल्य–50/–
सरमन गाथा की सीडी–सम्पादित, मूल्य–100/–
हरदौल गाथा की सीडी–सम्पादित, मूल्य–100/–
सरमन गाथा की सीडी–सम्पादित, मूल्य–100/–
मध्यप्रदेश के आदिवासी और लोकनृत्यों की सीडी–सम्पादित, मूल्य–200/–
भारत आदिवासी और लोकनृत्यों की सीडी–सम्पादित, मूल्य–200/–

आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् के प्रकाशन